वीतराग-विज्ञान

भाग – 3

छहढाला की तीसरी ढाल पर आध्यात्मिक सत्पुरुष
पूज्य श्रीकानजीस्वामी के प्रवचन

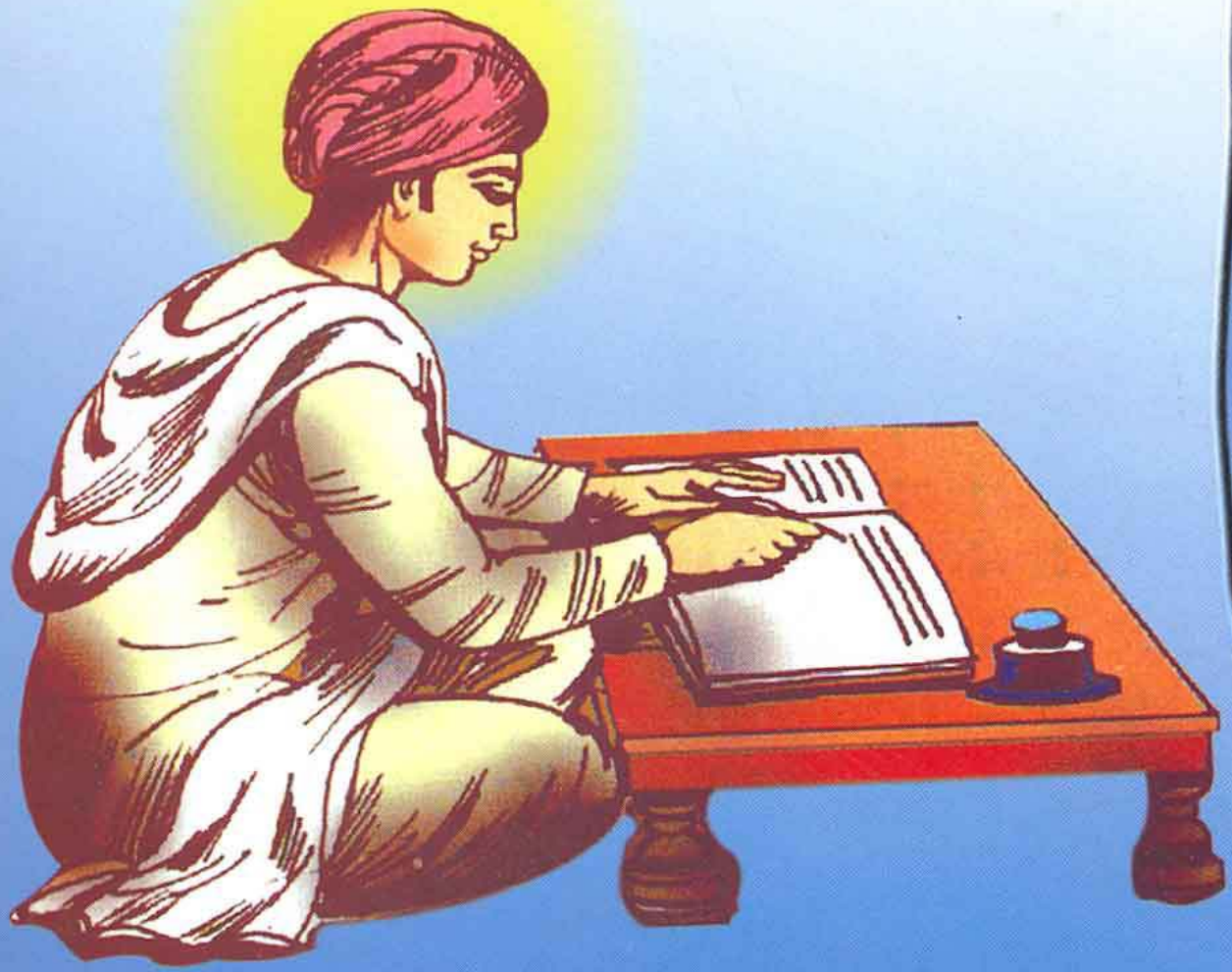

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतराग-विज्ञान

भाग-३

(कविवर पण्डित दौलतरामजी विरचित छहढाला की तीसरी ढाल पर
आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन)

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच.डी.

अनुवादक :
ब्र. हरिभाई

प्रकाशक :
पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट
ए-४, बापूनगर, जयपुर-१५ (राज.)
एवं
पूज्य श्री कानजी स्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

प्रथम संस्करण : ३ हजार
(२७ मई, २००१)
द्वितीय संस्करण : १ हजार
(२५ मार्च, २००८)
योग : ४ हजार

मूल्य : **१८ रुपये**

टाइपसैटिंग :
त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स
ए-४, बापूनगर, जयपुर-१५

मुद्रक :
प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड
बाईस गोदाम, जयपुर

Thanks & Our Request

This shastra has been kindly donated by Dakshaben Sanghvi, Geneva, Switzerland who has paid for it to be "electronised" and made available on the internet.

Our request to you:

1) Great care has been taken to ensure this electronic version of Chha Dhala Pravachan Part 3 (Hindi) is a faithful copy of the paper version. However if you find any errors please inform us on rajesh@AtmaDharma.com so that we can make this beautiful work even more accurate.

2) Keep checking the version number of the on-line shastra so that if corrections have been made you can replace your copy with the corrected one.

Version History

Version Number	Date	Changes
001	9 November 2009	First electronic version

प्रकाशकीय

पण्डितप्रवर श्री टोडरमलजी कृत छहढाला की तीसरी ढाल पर आध्यात्मिक-सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के प्रवचन प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है।

छहढाला दिगम्बर जैन समाज का सर्वाधिक लोकप्रिय, सरल एवं बोधगम्य ग्रन्थ है। अध्यात्मरस से भरपूर यह ग्रन्थ 'गागर में सागर' की उक्ति को चरितार्थ करता है। आज भी दिगम्बर जैन समाज में सैंकड़ों नर-नारियों को यह ग्रन्थ कंठस्थ है तथा दिगम्बर जैन समाज के सभी परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में यह सम्मिलित है।

समयसार आदि आध्यात्मिक ग्रन्थों की भांति छहढाला भी आध्यात्मिक-सत्पुरुष श्री स्वामीजी को अत्यन्त प्रिय था तथा इस पर उन्होंने प्रवचन करके इसका मर्म जन-जन तक पहुँचाया है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री स्वामीजी इस युग के सर्वाधिक चर्चित आध्यात्मिक क्रान्तिकारी महापुरुष हो गए हैं। वर्तमान में दृष्टिगोचर दिगम्बर जैनधर्म की अभूतपूर्व धर्मप्रभावना का श्रेय श्रीस्वामीजी को ही है। उनका कार्यकाल दिगम्बर जैनधर्म के प्रचार-प्रसार का स्वर्णयुग रहा है।

यद्यपि वे आज हमारे बीच नहीं हैं, तथापि उनके पुण्य प्रताप से निर्मित इकसठ दिगम्बर जिन मंदिर एवं लाखों की संख्या में प्रकाशित सत्साहित्य हमें हजारों वर्षों तक सत्य का दिग्दर्शन कराता रहेगा।

षट्खण्डागम भाग-१, समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, नियमसार, अष्टपाहुड़, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, बृहद् द्रव्यसंग्रह, मोक्षमार्गप्रकाशक, तत्त्वार्थसार, आत्मानुशासन, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, पद्मनन्दि पंचविंशतिका, समयसारकलश टीका, नाटक समयसार, छहढाला आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रवचनों के माध्यम से उन्होंने अनेकान्त, वस्तुस्वातन्त्र्य, कर्ता-कर्मसंबंध, क्रमबद्धपर्याय, निमित्त-उपादान आदि जैन दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों की आगम एवं युक्तिसंगत व्याख्या करके जिनशासन की अद्वितीय सेवा की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से जिनागम का प्रत्येक सैद्धान्तिक पहलू तथा जिनागम की प्रतिपादन शैली स्याद्वाद,

निश्चय-व्यवहार तथा प्रमाण-नय-निक्षेप आदि का स्वरूप भी जन-जन में चर्चित हो गया है।

अध्यात्म के गूढ रहस्यों का सांगोपांग विवेचन उनकी वाणी की महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है। उनके द्वारा प्रतिपादित स्वानुभूति का स्वरूप, विषय एवं उसके पुरुषार्थ का विवेचन चिरकाल पर्यन्त स्वानुभूति की प्रेरणा देता रहेगा।

स्वाध्याय के क्षेत्र में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री स्वामीजी ने अभूतपूर्व क्रान्ति की है। उनके प्रवचनों के प्रभाव से समाज में स्वाध्याय की प्रवृत्ति को यथार्थ दिशा मिली है। नय-विवक्षापूर्वक जिनवाणी का भावार्थ हृदयंगम करते हुए स्वाध्याय करने की परम्परा का विकास उन्हीं की देन है।

छहढाला ग्रन्थ पर आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री स्वामीजी ने गुजराती भाषा में प्रवचन किए थे, जिनका संकलन स्व. ब्र. हरिलालजी ने वीतराग-विज्ञान के नाम से प्रकाशित किया था। यह बाद में पृथक्-पृथक् भाग के रूप में सोनगढ़ से प्रकाशित किए गए थे।

अब प्रत्येक ढाल के प्रवचनों को एक ही टाइप व एक ही आकार में प्रकाशित करने का प्रयास किया गया है; यह विशेषता भी पाठकों को हम बताना चाहते हैं।

इस तीसरे भाग का गुजराती से हिन्दी अनुवाद ब्र. हरिभाई ने किया है तथा सम्पादन का महत्त्वपूर्ण कार्य डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने किया है। संस्था दोनों महानुभावों का हृदय से आभार मानती है।

प्रकाशन व्यवस्था सदा की भांति विभाग के प्रभारी श्री अखिल बंसल ने सम्हाली है; अत: वे धन्यवाद के पात्र हैं। जिन महानुभावों ने इस पुस्तक की कीमत कम करने में आर्थिक सहयोग प्रदान किया है, संस्था उनकी भी हार्दिक आभारी है।

आप सभी धर्म का मर्म समझकर अपना आत्मकल्याण करें, इसी भावना के साथ –

ब्र. यशपाल जैन एम.ए.

प्रकाशन मंत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

पण्डित दौलतरामजी कृत

छहढाला

तीसरी ढाल

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिए॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारन सो व्यवहारो॥१॥

परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान कला है॥
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक्चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष-मग सुनिये, हेतु नियत को होई॥२॥

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्ध रु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यों का त्यों सरधानो॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं, दृढ़ प्रतीति उर आनो॥३॥

बहिरातम अन्तर-आतम, परमातम जीव त्रिधा है।
देह-जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है॥
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुध-उपयोगी, मुनि उत्तम निजध्यानी॥४॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत समदृष्टी, तीनों शिव मगचारी॥
सकल-निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी॥५॥

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-मल, वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगें शर्म अनन्ता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर-आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, जो नित आनन्द पूजै।।६।।

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गन्ध दो, फरस वसू जाके हैं।।
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन मूर्ति निरूपी।।७।।

सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानों।
नियत वर्तना निस-दिन सो, व्यवहारकाल परमानों।।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा।।८।।

ये ही आतम को दुख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीव प्रदेश बँधे-विधि सौं, सो बन्धन कबहुँ न सजिये।।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये।।९।।

सकल कर्म तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इह विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो।।१०।।

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष बिना, संवेगादिक चित पागो।।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसौं, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये।।११।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जिन-वच में शंका न धार, वृष भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै॥
निज-गुण अरु पर-औगुण ढाँके, वा जिन धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज-पर को सुदिढ़ावै॥१२॥

धर्मी सों गौ-बच्छ प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप कौ, मद न ज्ञान कौ, धन-बल कौ मद भानै॥१३॥

तप कौ मद न मद जु प्रभुता कौ, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु कुदेव कुवृष सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै है।
जिन-मुनि जिन-श्रुत बिन कुगुरादिक, तिन्है न नमन करै है॥१४॥

दोष-रहित गुण-सहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजै हैं॥
गेही पै, गृह में न रचे ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर-नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥१५॥

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी॥
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी।
सकल धरम को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी॥१६॥

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान-चरित्रा।
सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारौ भव्य पवित्रा॥
'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मलिन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै॥१७॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आत्मा के हितरूप मोक्षमार्ग का उपदेश – 'हे जीव ! तू मोक्षमार्ग में लग।'

वीतराग-विज्ञान मंगलरूप है और तीनों लोक के जीवों को वही सारभूत है, उसी के द्वारा पंचपरमेष्ठी पद की प्राप्ति होती है। ऐसे वीतराग-विज्ञान को मंगलरूप से नमस्कार करके पण्डित श्री दौलतरामजी ने इस छहढाला ग्रन्थ का प्रारंभ किया है। जीव ने चार गति में कैसे-कैसे दुःख भोगे, यह पहली ढाल में दिखाया। उन दुःखों का कारण मिथ्याश्रद्धा, मिथ्याज्ञान और मिथ्या-आचरण है; अतः उसको पहचान कर उस मिथ्यात्वादि को शीघ्र छोड़ और आत्महित के सुपथ में लग – ऐसा दूसरी ढाल में कहा।

अब उस आत्महित का पथ क्या है – यह दिखाते हैं। आत्महित का पथ कहो या मोक्ष का मार्ग कहो, उसका वर्णन इस तीसरी ढाल में करते हैं, उसमें भी सम्यग्दर्शन का वर्णन मुख्य है।

मोक्षमार्ग की आराधना का उपदेश

(छन्द-जोगीरासा)

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता-बिन कहिए,
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिए।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव, मग सो द्विविध विचारो,
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।१।।

देखो, अब इसमें मोक्षमार्ग के वर्णन का प्रारंभ हो रहा है। इसमें संक्षेप में भी बहुत-सी बातें समझाई हैं; जीव को सुखी होने के लिए यह प्रयोजनभूत बात है।

आत्मा का हित क्या है ? सुख होना; वह सुख कैसा ? आकुलता से

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित अर्थात् निराकुलता ही सुख है। मोक्षदशा में आकुलता का अभाव है; अत: वही आत्मा को हितरूप है, इसलिए जीव को उस मोक्ष के मार्ग में लगना चाहिए।

मोक्ष का मार्ग क्या है ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग है, उस मार्ग का दो प्रकार से विचार करो अर्थात् ज्ञान करो। जो सत्यार्थरूप है, वह तो निश्चय मोक्षमार्ग है और उसमें जो कारणरूप या निमित्तरूप है, उसको व्यवहार जानो। देखो ! यहाँ दो प्रकार के मोक्षमार्ग विचारने के लिए कहा, परन्तु उनमें सत्यार्थरूप तो एक निश्चय को कहा है अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही सच्चा मोक्षमार्ग है और जो व्यवहार है, वह तो उपचार है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

मोक्ष के मार्ग दो नहीं, मोक्ष का मार्ग एक ही है। इस संबंध में पण्डित श्री टोडरमलजी ने मोक्षमार्ग प्रकाशक में बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। वे कहते हैं कि –

''शुद्ध आत्मा का अनुभव ही सच्चा मोक्षमार्ग है।

व्रत-तपादि कोई मोक्षमार्ग तो नहीं हैं, परन्तु निमित्तादि की अपेक्षा लेकर उपचार से उनको मोक्षमार्ग कहा जाता है, अत: उसे व्यवहार कहा है।

इसप्रकार भूतार्थ-अभूतार्थ मोक्षमार्गपने से उसको निश्चय-व्यवहार कहा है – ऐसा ही मानना अर्थात् भूतार्थ मोक्षमार्ग को तो निश्चय मोक्षमार्ग कहा और अभूतार्थ को व्यवहार कहा – ऐसा ही जानना; परन्तु ये दोनों ही सच्चे मोक्षमार्ग हैं और दोनों उपादेय हैं – ऐसा मानना, वह तो मिथ्याबुद्धि ही है।

तो क्या करना ? उसका समाधान करते हुए पण्डितजी जैनसिद्धान्त का रहस्य समझाते हैं कि 'निश्चयनय के द्वारा जो निरूपण किया हो, उसको तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना तथा व्यवहारनय के द्वारा जो निरूपण किया हो, उसको असत्यार्थ मानकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका श्रद्धान छोड़ना।' निश्चय के द्वारा शुद्ध ज्ञान घनस्वभाव की महिमा में लीन होना, सो मोक्ष का कारण है।''

यहाँ मोक्षमार्ग का दो प्रकार से विचार करने के लिए कहा, उसमें भी यह नियम समझ लेना चाहिए कि सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है। इसलिए यहाँ पहले ही छन्द में पण्डित श्री दौलतरामजी ने कहा – **'जो सत्यारथरूप सो निश्चय'** जो निश्चय मोक्षमार्ग है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है। पण्डित श्री टोडरमलजी ने भी यही कहा है कि 'मोक्षमार्ग तो दो नहीं हैं, किन्तु मोक्षमार्ग का निरूपण दो प्रकार से है। जहाँ सच्चे मोक्षमार्ग को मोक्षमार्गरूप से निरूपण किया है, वह निश्चय मोक्षमार्ग है तथा जहाँ पर जो मोक्षमार्ग तो नहीं है; परन्तु मोक्षमार्ग का निमित्त है अथवा सहकारी है, उसको उपचार से मोक्षमार्ग कहा जाये तो वह व्यवहार मोक्षमार्ग है। निश्चय-व्यवहार का सर्वत्र ऐसा ही लक्षण है अर्थात् जो सच्चा निरूपण है सो निश्चय और उपचार निरूपण है, सो व्यवहार।

इसप्रकार निरूपण की अपेक्षा से दो प्रकार जानना; परन्तु एक निश्चय मोक्षमार्ग है तथा एक व्यवहार मोक्षमार्ग है – ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। निरूपण दो प्रकार से है; परन्तु मार्ग तो एक ही है। निश्चय मोक्षमार्ग एक ही सच्चा मोक्षमार्ग है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने समयसार में जगह-जगह पर यह बात स्पष्ट समझायी है कि भूतार्थस्वभाव के आश्रय से ही जीव सम्यग्दृष्टि होता है; निश्चय के आश्रय से मुनिवर मोक्ष को साधते हैं। अहो, समयसार में तो आचार्यदेव ने मोक्ष का मार्ग खोलकर रखा है। हजारों शास्त्रों का भण्डार समयसार में भरा है।

वीतरागी देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा, नव तत्त्व का ज्ञान और व्रत समितिरूप चारित्र – ऐसा जो व्यवहार, उसे निश्चय का कारण कहा; परन्तु उसका अर्थ ऐसा न समझना कि निश्चय के ज्ञान बिना अकेला व्यवहार करते-करते वह निश्चय मोक्षमार्ग का कारण हो जायेगा। निश्चयरहित व्यवहार में तो कारण का उपचार भी नहीं आता। कार्य के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बिना कारण किसका ? निश्चयपूर्वक जो व्यवहार है, उसे उपचार से कारण कहा जाता है और शुद्ध आत्मा के आश्रय से जो सम्यक् रुचि, ज्ञान व लीनता हुई, वह सच्चा मोक्षमार्ग है। ऐसे मोक्षमार्ग को जानकर हे जीव ! उसकी आराधना में अपने आत्मा को जोड़। आत्मा के आश्रित जो रत्नत्रय है, उसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है, उसी में निराकुल सुख है और वही आत्मा का कल्याण है।

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः' उसका यह वर्णन है। मोक्ष क्या है ? और मोक्ष का उपाय क्या है ? ये दोनों बातें एक श्लोक में दिखा दी हैं। आत्मा का हित क्या है ? मोक्ष। सर्वार्थसिद्धि में पहले सूत्र के उपोद्घात में उसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है।

''जिसको अपने हित की भावना जागृत हुई है – ऐसा कोई निकट भव्य मुमुक्षु जीव रमणीय वन में गया और वहाँ निर्ग्रन्थ मुनिराज से विनयपूर्वक मोक्ष का मार्ग पूछा।

कैसे हैं मुनि ? जो आत्मा के ध्यान में बैठे हैं और बिना बोले वीतरागी मुद्रा से ही मानो मोक्ष का मार्ग दिखला रहे हैं – ऐसे मुनिराज के निकट जाकर शिष्य विनय से पूछता है – प्रभो ! आत्मा का हित क्या है ?

श्रीगुरु प्रसन्नता से उसे समझाते हैं कि हे वत्स ! आत्मा का हित मोक्ष है।

तब शिष्य फिर से पूछता है कि प्रभो ! उस मोक्ष का उपाय क्या है ?

उसके उत्तर में मोक्षशास्त्र का पहला सूत्र कहा है कि – **''सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।''**

इस तीसरी ढाल के पहले छन्द में भी यही बात की है कि –

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिवमाहिं न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिए॥

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा का जो निराकुल स्वभाव है, वही सुख है; आत्मा का पूर्ण अतीन्द्रियसुख उसका नाम मोक्ष और वही आत्मा का हित है। लोग बाह्य में जो सुख मानते हैं, वह सुख नहीं है; बाह्यपदार्थ की ओर वृत्ति, वह तो आकुलता है, दुःख है। पापराग (अशुभ राग) में आकुलता है एवं पुण्यराग (शुभ राग) में भी आकुलता ही है, अतएव दुःख ही है, उसमें सुख नहीं है। पाप और पुण्य दोनों प्रकार की आकुलता से रहित जो सहज ज्ञान-आनन्दमय आत्मस्वभाव है, उसमें एकाग्रता के द्वारा जो शांत-निराकुल-चेतनरस का अनुभव होता है, वह सुख है। ऐसे सुख की पूर्ण प्राप्ति वही मोक्ष है। उसको पहचानकर उसके मार्ग में लगना चाहिए।

वह मोक्ष का मार्ग क्या है ? तो कहते हैं कि –

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन शिव-मग सो द्विविध विचारो।
जो सत्यारथरूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो।।

पुण्य एवं पाप दोनों में आकुलता होने से उनको मोक्षमार्ग में से निकाल दिया है। सम्पूर्ण निराकुल सुख के अनुभवस्वरूप जो मोक्ष, उसकी प्राप्ति का मार्ग भी निराकुलभावरूप ही है। सच्चा मोक्षमार्ग निराकुल अर्थात् रागरहित ही है। उसके साथ जो रागसहित श्रद्धा-ज्ञान-आचरण हो, उसको मोक्षमार्ग का कारण कहना, सो व्यवहार है। जो व्यवहार-रत्नत्रय है, वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, नियमरूप मोक्षमार्ग वह नहीं है। राग से पार आत्मा के स्वभाव में प्रविष्ट होकर जो सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र हुआ, वह निश्चय मोक्षमार्ग है, वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग है, मोक्ष के लिए वह नियम से करने योग्य कार्य है; अतः कहा है कि **'शिवमग लाग्यो चाहिए।'** शुभराग में लगे रहने के लिए नहीं कहा, परन्तु आत्मा के सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप निश्चय मोक्षमार्ग में लगना कहा; उसी में आत्मा का हित व सुख है।

सुख तो आत्मा का स्वभाव है, राग आत्मा का स्वभाव नहीं है; अतः राग आत्मा के सुख का कारण नहीं हो सकता। सुख जिसका

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वभाव है, उसको जानने से – अनुभव में लेने से ही सुख होता है। जीव सुख चाहते हैं; परन्तु अपने सुखस्वभाव को भूलकर वह राग में या संयोग में सुख खोजते हैं। अरे भाई ! सुख राग में होता है ? कि वीतरागता में ? वीतरागता ही सुख है, उसको जीव ने कभी नहीं जाना। जिसने राग में या पुण्य में सुख माना, उसको मोक्ष की श्रद्धा नहीं है। इसलिए कहा कि सुख तो आकुलता से रहित है और ऐसे सुख के लिए शिवमार्ग में लगे रहना चाहिए। आत्मा के ऐसे अतीन्द्रियसुख को धर्मी जीव ही जानते हैं और स्व-पर के भेदज्ञानपूर्वक वीतराग-विज्ञान से ही वह सुख अनुभव में आता है।

पहली ढाल में चार गति के दु:ख दिखाये; दूसरी ढाल में उन दु:ख के कारणरूप मिथ्यात्वादि को छोड़कर आत्महित के पथ में लगने के लिए कहा। अब इस तीसरी ढाल में आत्महित का उपाय दिखाते हैं। पूर्वाचार्यों के कथन का सार लेकर पण्डितजी ने इस छहढालारूपी गागर में सागर भर दिया है। संस्कृत-व्याकरण आदि न आते हों तो भी जिज्ञासु जीव समझ सकें – ऐसी सुगम शैली से हिन्दी भाषा में प्रयोजनभूत कथन किया है।

आत्मा का कल्याण कहो, हित कहो या सच्चा सुख कहो, सब एक ही हैं। जिस भाव से अतीन्द्रियसुख हो, वही आत्महित है; इसके बिना और कहीं भी शरीर में, धन में या प्रतिष्ठा आदि में सुख नहीं है। उनके लक्ष्य में तो आकुलता है; परन्तु अज्ञानी उसमें सुख मानते हैं। पुण्य बँधने के भाव में आकुलता है और उस पुण्य के फल भोगने में भी आकुलता है; सुख उसमें कहीं भी नहीं है। बाह्य विषयों के बिना आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है। ऐसे चैतन्यस्वरूप आत्मा के अनुभव में जो वीतरागी निराकुलता है, वही सच्चा सुख है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतराग-विज्ञान के बिना ऐसा सुख किसी को नहीं होता। धर्मी जीव को इन्द्रपद के वैभव में भी प्रसन्नता नहीं, चैतन्य के आनन्द में ही प्रसन्नता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सुख अर्थात् निराकुलता; अतीन्द्रिय आनन्द का बड़ा पुंज आत्मा है। सुख अपने अन्तर में है; परन्तु उसको भूलकर बाहर में सुख मानकर जीव हैरान हो रहा है। अरे जीव ! तू बाहर में से सुख लेना चाहता है; परन्तु तेरे ही अन्तर में आत्मा का जो सच्चा सुख है, उसको तू भूल रहा है। अरे, यह बात तू जरा लक्ष्य में तो ले। मेरा सुख मेरे आत्मा में ही है – ऐसा लक्ष्य करते ही बाह्य विषयों में से (अशुभ में से एवं शुभ में से) सुख लेने की बुद्धि नहीं रहती और परिणति अन्तर में आत्मसन्मुख होकर अतीन्द्रियसुख अनुभव में आता है; ऐसा सुख, वही सच्चा सुख है। बाहर में सुख दिखता है, वह तो अज्ञानी की मात्र कल्पना ही है, मृगमरीचिका में जल जैसी वह कल्पना मिथ्या है।

जैसे हिरण मृगमरीचिका को पानी समझकर, उसे पीने को दौड़ता है...बहुत दौड़ता है तो भी उसे पानी नहीं मिलता। कहाँ से मिले ? वहाँ पानी हो, तब मिले न ? वहाँ पानी है ही नहीं, वहाँ तो गरमागरम रेत है। अरे मृग ! बहुत दूर-दूर तक दौड़ने पर भी पानी की शीतल हवा भी तुझे न मिली, तब तू सोच तो सही कि तेरे को जो दिख रहा है, वह सचमुच में पानी नहीं है; परन्तु तेरी कल्पना ही है, दृष्टिभ्रम है; परन्तु मृगजल के पीछे वेग से दौड़ने वाले मृग को इतना विचार करने का अवकाश ही कहाँ है ? उसीप्रकार मृगजल जैसे विषयों की और दृष्टिपात करने वाले (दौड़ने वाले) प्राणियों को इतना विचार भी नहीं आता कि अरे! अनादिकाल से अशुभ एवं शुभ विषयों के पीछे दौड़ते हुए भी मुझे जरा-सा भी सुख क्यों नहीं मिला ? सुख की शीतल हवा भी क्यों न आयी ? कहाँ से आवे ? उसमें सुख हो, तब आये न ? विषयों के वेदन में तो गरम रेत जैसी आकुलता ही है; उसमें जो सुख दिखता है, वह तो अज्ञानी की दृष्टि का भ्रम ही है।

बाह्य में अनुकूलता का होना, सो सुख और प्रतिकूलता का होना,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सो दु:ख – ऐसा नहीं है। धनवान सुखी और निर्धन दु:खी – ऐसा भी नहीं है; नीरोगता में सुख और रोग में दुख – ऐसा भी नहीं है। बाहर की दरिद्रता में न दु:ख है और न लाखों-अरबों रुपये के ढेर में सुख है। उन दोनों ओर के झुकाव में आकुलता से जीव दु:खी है। चैतन्यप्रभु आत्मा ही एक ऐसा है कि जिसमें देखते ही सुख हो। आत्मा ही सुख का भंडार है; परन्तु उसकी पहचान नहीं है। सुख तो आत्मा का अपना निजवैभव है, जड़वैभव में वह नहीं होता।

भाई ! तुम्हें सुखी होना है न ? हाँ; तो सुख कैसा होता है और उसकी प्राप्ति कैसे होती है – यह पहचानना चाहिए। आत्मा का जो सहज स्वभाव है, उसके बीच में यदि राग की आड़ न लगावे तो तेरा आत्मा स्वयमेव निराकुल सुखरूप से अनुभव में आयेगा। सुखस्वभाव तो आत्मा ही है। निराकुलता है, वह सुख है और वह आत्मा की मुक्तदशा है; अत: सुख के अभिलाषी को मोक्ष के मार्ग में लगना चाहिए। मोक्षमार्ग माने रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र। मोक्ष निराकुल है और उसका मार्ग भी निराकुल है, राग में तो आकुलता है, दुख है।

सिद्ध व अरिहन्त भगवंत बाहर के किसी भी साधन के बिना स्वयमेव अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करते हैं। अभी इस समय भी सीमंधर भगवान एवं अन्य लाखों अरिहंत भगवंत ऐसे अनन्त आनन्द में विराजमान हैं; सिद्ध भगवंत अनन्त हैं, वे लोक के शिखर पर विराज रहे हैं। प्रत्येक आत्मा ऐसे ही अतीन्द्रिय सुख से भरा है; उसको पहचानकर उसके ही आश्रय से मोक्षसुख साधने के उपाय में लगना चाहिए। श्री जिनदेव के द्वारा कथित वीतरागी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो कि आत्मशुद्धिरूप है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है। वीतरागी रत्नत्रय कहो या निश्चय रत्नत्रय कहो, वह मोक्ष के लिए नियम से कर्तव्य है, अत: उसे 'नियम' कहा है; उसमें राग का अभाव सूचित करने को 'सार' विशेषण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

लगाया है। ऐसे शुद्ध रत्नत्रयरूप जो नियमसार है, वही परमसुख का मार्ग है।

अब कहते हैं कि ऐसा जो मोक्षमार्ग है, उसका दो प्रकार से विचार करो; एक सत्यार्थरूप सच्चा मोक्षमार्ग है सो तो निश्चय से मोक्षमार्ग है और उसका जो कारण है – सच्चा कारण नहीं; परन्तु उपचारकारण है, सो व्यवहार है। जो निमित्तकारण है, वह स्वयं मोक्षमार्ग न होते हुए भी उपचार से उसको मोक्षमार्ग कहना; सो व्यवहार है। वह सत्यार्थ नहीं है, परन्तु असत्यार्थ है; अभूतार्थ है। जो सच्चा मोक्षमार्ग है, उसी को मोक्षमार्ग कहना वह सत्यार्थ है, वह निश्चय है।

यहाँ सत्यार्थ को ही निश्चय कहा है, यह महत्त्व की बात है। निश्चय को सत्यार्थ कहा, उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवहार असत्यार्थ है। निर्विकल्प शुद्ध आत्मा के आश्रय से जो रत्नत्रयरूप शुद्ध परिणति है, वह मोक्षमार्ग है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है – ऐसा समझना। आंशिक शुद्धता पूर्ण शुद्धता का कारण है। इसमें कारण और कार्य की एक जाति होने से यह निश्चय कारण है। परन्तु उसके साथ में जो अशुद्धता है (शुभराग है), वह तो शुद्धता का सच्चा कारण नहीं है; परन्तु शुद्धता के साथ में भूमिका के अनुसार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा; नव तत्त्व का ज्ञान और पंच महाव्रतादि के विकल्प होते हैं, उनको भी 'मोक्षमार्ग का सहकारी' जानकर (वे स्वयं मोक्षमार्ग नहीं हैं, परन्तु मोक्षमार्ग में साथ-साथ रहने वाले हैं, अतः सहकारी जानकर) उपचार से उनको भी मोक्षमार्ग कहते हैं; परन्तु वह सत्यार्थ मोक्षमार्ग नहीं है, अतः उनको व्यवहार कहा, गौण कहा और असत्यार्थ कहा; वे अशुद्ध हैं, पराश्रित हैं और शुद्ध आत्मा के आश्रय से रागरहित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो मोक्षमार्ग है, वह निश्चय है, मुख्य है, सत्यार्थ है, शुद्ध है और स्वाश्रित है।

इसप्रकार 'द्विविध' मार्ग कहा, उसमें एक ही सत्यार्थ है – **'जो**

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सत्यारथरूप सो निश्चय' एक निश्चय मोक्षमार्ग ही सच्चा है। इसप्रकार से मोक्षमार्ग के स्वरूप का जो विचार किया जाये, वह विचार सच्चा है; परन्तु जो व्यवहार को ही सच्चा मोक्षमार्ग समझकर उसमें ही लगा रहे और निश्चय मोक्षमार्ग को न पहचाने तो उसको मोक्षमार्ग का विचार भी सच्चा नहीं है; वह तो बंध के मार्ग को ही मोक्ष का मार्ग समझकर उसका सेवन कर रहा है।

निश्चय मोक्षमार्ग एक ही सच्चा मोक्षमार्ग है। निश्चय अर्थात् अकेले शुद्ध आत्मा में रुचि-ज्ञान-रमणता-एकाग्रता, सो यथार्थ वास्तविक शुद्ध उपादान से प्रगट हुआ सत्य मोक्षमार्ग है। वह नियम से मोक्षमार्ग है, इसके सेवन से मोक्ष अवश्य होता है – ऐसा नियम है और उसके कारणरूप (अर्थात् निमित्तकारण-रूप) सो व्यवहार है। ऐसे मोक्षमार्ग में दोनों प्रकार जैसे हैं, वैसे जानना चाहिए। दोनों को 'जानना' चाहिए, परन्तु दोनों को जानकर आदरणीय तो एक निश्चय सत्यार्थ मार्ग ही है – ऐसा समझे, तब ही दोनों का सच्चा ज्ञान होता है।

स्वभाव के आश्रय से शुद्ध रत्नत्रय के द्वारा मोक्ष को साधनेवाले साधक को अपनी भूमिका के अनुसार व्यवहार कैसा होता है, देव-गुरु-शास्त्र की तथा नव तत्त्व की पहचान कैसी होती है, उसे भी पहचानना चाहिए; उसको जो अन्यथा माने, उसने सच्चे मोक्षमार्ग को नहीं जाना। पर से विभक्त और स्वभाव से एकत्व – ऐसे शुद्धात्मा के आश्रय से जो रत्नत्रयरूप निर्मल पर्याय प्रगटी, वह निश्चय मोक्षमार्ग है। उसके साथ में जो व्यवहाररत्नत्रय है, वह स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है; परन्तु निमित्तरूप से उसको भी मोक्षमार्ग कहा जाता है; सो वह व्यवहार है, असत्यार्थ है – ऐसा समझना। उस समय की शुद्धता को मोक्षमार्ग जानना, सो अनुपचार है – सत्य है और उस समय के शुभराग को मोक्षमार्ग कहना, सो उपचार है – असत्य है। मोक्षमार्गी जीव को भूमिका के अनुसार दोनों प्रकार होते

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हैं, यह दिखाने के लिए 'द्विविध' कहा है। उनमें मोक्ष का सच्चा कारण एक ही है, दो नहीं। साधक को निश्चय सम्यक्त्व के साथ में जो वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र की पूजनादि का शुभ विकल्प होता है, वह बंध का कारण होने पर भी आरोप से उसको भी मोक्षमार्ग कहने में आता है। मोक्षमार्ग के निमित्त का ज्ञान कराने के लिए उसको व्यवहार कहा।

व्यवहार कारण है; परन्तु किसका ? कि निश्चय मोक्षमार्ग का; अतएव जहाँ सच्चा मोक्षमार्ग विद्यमान है, वहीं पर वह उसका कारण उपचार से है; परन्तु जहाँ सच्चा मोक्षमार्ग है ही नहीं, वहाँ कारण किसका कहना ? निश्चय का तो लक्ष्य भी न हो और अकेले व्यवहार के सेवन से मोक्षमार्ग प्रगट हो जाये – ऐसा तो कभी नहीं होता। अत: मोक्षार्थी जीवों को सच्चे मोक्षमार्ग को अच्छी तरह पहचान कर उसका उद्यम करना चाहिए।

आत्मा का पूर्ण आनन्द सो मोक्ष; उसकी प्राप्ति का जो उपाय, वह मोक्षमार्ग। मोक्ष का मार्ग, मोक्ष का उपाय, मोक्ष का कारण, मोक्ष का उद्यम, मोक्ष की क्रिया या मोक्ष की आराधना – ये सब एक ही हैं, वही धर्म है। आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान-लीनतारूप अन्तर्मुख शुद्धभाव से वह साधे जाते हैं। शुभभाव तो बहिर्मुखवृत्ति है, उसके द्वारा मोक्ष नहीं सधता। स्वाश्रित वीतरागभाव से निश्चय मोक्षमार्ग प्रगट होता है और ऐसे निश्चय सहित व्यवहार को उपचार कारण कहने में आता है। जो निश्चय है, वही मुख्य है, वही सत्य है; जो व्यवहार है, वह आरोप है, गौण है। परिणति अन्तर में झुककर ज्ञायक स्वभाव में मग्न होने से अतीन्द्रियसुख का वेदन होता है, वही सच्चा परमार्थ-निश्चय मोक्षमार्ग है और वही शुद्ध मार्ग है। ऐसे ही मार्ग के सेवन से तीर्थंकरादि महान पुरुषों ने मोक्षसुख प्राप्त किया है और मुमुक्षुओं को भी यही मार्ग दिखाया है।

मिथ्यादृष्टि का निश्चय या व्यवहार एक भी नय सच्चा नहीं होता; क्योंकि नय तो सच्चे ज्ञान का प्रकार है। शुद्ध आत्मा के ज्ञान के बिना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रमाण ज्ञान नहीं होता अर्थात् भावश्रुत नहीं होता और भावश्रुत प्रमाण के बिना निश्चय या व्यवहारनय नहीं होता। आत्मा का स्वानुभव होने पर मति-श्रुत दोनों ज्ञान एक साथ सम्यक् हो जाते हैं, उनमें से श्रुतज्ञान में अनन्त प्रकार के नय होते हैं। नय है सो सच्चे श्रुतज्ञान का प्रकार है; परन्तु ज्ञान ही जिसका मिथ्या हो, उसको नय कैसा ? अर्थात् उसको नय होता ही नहीं। अत: मिथ्यादृष्टि जिसको व्यवहार समझकर सेवन करता है, वह तो मोक्षमार्ग का सच्चा व्यवहार भी नहीं है। बिना निश्चय का व्यवहार तो मिथ्या है।

शुद्ध आत्मा जैसा है, वैसा जानकर प्रतीति में लिया, तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसके साथ चारित्र का भी अंश प्रगट हुआ – इसप्रकार मोक्षमार्ग का प्रारंभ हुआ। ऐसे जीव को निश्चय-व्यवहार सच्चा होता है। पहले अकेला व्यवहार हो और वह करते-करते निश्चय प्रगट हो जायेगा – ऐसा नहीं है। उपयोगस्वरूप शुद्धात्मा के आलम्बन से जो शुद्ध दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हुआ, वह शुद्ध मोक्षमार्ग है और उसके साथ जो रागादि हैं, वे अशुद्ध हैं, उनको मोक्षमार्ग का कारण कहना, सो उपचार है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यधातु है, उसने अपने अनंत आनन्द को अपने में धारण किया है – ऐसे चैतन्यसमुद्र में लीन होते ही मोक्ष के आनन्द का अनुभव होता है। ऐसे आनन्द का अनुभव हो तभी मोक्षमार्ग प्रगट हुआ – ऐसा समझना चाहिए। आत्मा तो रत्नों की बड़ी खान है; उसको खोदने से अर्थात् अंतर्मुख होकर अनुभव में लेने से महान रत्न निकलते हैं; अनन्त आनन्दमय रत्न उसमें भरे हैं।

– संसार के जड़रत्नों का तो धर्म में कोई मूल्य ही नहीं है।

– आत्मा में मोक्ष के कारणरूप तीन रत्न हैं – सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

– उसका फल केवलज्ञानादि चतुष्टय, सो महारत्न है।

– अनन्त केवलज्ञानपर्यायरूप होने की जिसमें ताकत है – ऐसा ज्ञानगुण, सो महा-महारत्न है।

– और अनन्त गुणरत्नों से भरा हुआ जो चैतन्यसमुद्र है, वह तो महामहारत्न अर्थात् चैतन्यरत्नाकर है।

भाई, ऐसे रत्नों की पूरी खान तुम ही हो; तुम अपने मति-श्रुतज्ञान को अन्तर्मुख करके तुम्हारे ही अंतर में चैतन्यरत्न के पहाड़ को देखो। जीव स्वयं आनन्द का बड़ा पहाड़ है; परन्तु दृष्टिदोष के कारण वह अपने को नहीं देखता। जैसे सामने ही रत्नों का बड़ा पहाड़ हो, परन्तु जिसकी आँख के आड़े तृण का आवरण है, वह मनुष्य पहाड़ को नहीं देखता; वैसे ही जीव स्वयं अनंत गुणरत्नों का बड़ा पहाड़ है, परन्तु राग में एकत्वभावनारूप जो तृण अर्थात् मिथ्यात्व का तुच्छ भाव, उसके आवरण के कारण अज्ञानी जीव अपने चैतन्यस्वभावरूप बड़े पहाड़ को भी नहीं देख सकता। वीतराग-विज्ञान के उपदेश के द्वारा ज्ञानी सन्त उसका भ्रम छुड़ाकर उसका सच्चा स्वरूप दिखाते हैं कि जिसकी महिमा मेरुपर्वत से भी महान है। अरिहंतों ने जो केवलज्ञान प्राप्त किया, वह कहाँ से आया ? क्या बाहर से आया ? नहीं; अन्दर आत्मा में ही था, वह प्रगट हुआ; वैसे ही प्रत्येक आत्मा अरिहंत भगवान जैसा ही सामर्थ्य वाला है। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे अपने आत्मा को तुम जानो।

द्रव्य-गुण-पर्याय से जो जानते अरिहंत को।
वे जानते निज आत्मा दृग मोह उनका नाश हो॥८०॥

केवलज्ञानी अरिहंत भगवान के द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों शुद्ध चैतन्यमय हैं और राग का उनमें सर्वथा अभाव है; उनको पहचानने से राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप अपना आत्मा अनुभव में आता है और सम्यग्दर्शन होता है। अपने आत्मा के शुद्धस्वभाव का निर्णय एवं अरिहंत

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के शुद्धात्मा का निर्णय, ये दोनों एक साथ ही होते हैं। राग से जो भिन्न है – ऐसी ज्ञानपर्याय ने अंतर में ढलकर जब आत्मा का अनुभव किया, तब उसके साथ में अरिहंत के व सिद्ध के शुद्धात्मा का निर्णय भी सच्चा हुआ। इसके पहले अरिहंत के शुद्ध आत्मा का निर्णय करने का जो लक्ष था, उसको उपचार से सम्यग्दर्शन का कारण कहा जाता है। जब परलक्ष छोड़कर अंतर में आया, तभी आत्मस्वरूप का सम्यक् निश्चय हुआ और तभी भूत नैगमनय से पूर्व के रागमिश्रित निर्णय को उसका कारण कहा। बिना निश्चय किसका व्यवहार कहना ?

निश्चय के लक्ष के बिना एकान्त परसन्मुखता से तो अनंतबार अरिहंतदेव का विचार किया, धारणा की, वह सम्यग्दर्शन का कारण क्यों न हुआ ? क्योंकि निश्चय का लक्ष नहीं था; निश्चय से रहित यह सब वास्तव में व्यवहाराभास ही है, अरिहंत का सच्चा निर्णय उनमें नहीं है। अत: अज्ञानी के शुभराग में मोक्षमार्ग का व्यवहार लागू नहीं होता; उसको मोक्षमार्ग हुआ ही नहीं है। राग के द्वारा मोक्षमार्ग का प्रारंभ नहीं होता। राग से दूर होकर (भिन्न होकर) ज्ञान जब अंतरस्वभाव में प्रवेश कर तन्मय हो जावे, तब शुद्धात्मा के अपूर्व अनुभव सहित मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।

ऐसा मोक्षमार्ग जिसको प्रगट हुआ, उसका निश्चय और व्यवहार कैसा होता है, उसकी यह बात है। मोक्षमार्ग जिसको हुआ हो, उसको दो बातें लागू होती हैं – जो रत्नत्रय की शुद्धता है, सो तो यथार्थ मोक्षमार्ग है और जो शुभराग भूमिका के अनुसार रहता है, वह उपचार से मोक्षमार्ग है। सच्चा मोक्षमार्ग जहाँ हो, वहाँ दूसरे में उसका उपचार लागू हो सकता है। शुद्ध आत्मा के आश्रय से होने वाला शुद्ध भावरूप निश्चयमोक्षमार्ग ही सच्चा मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है। वीतरागमार्ग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में ऐसी वस्तुस्थिति है; इसके बिना अन्य किसी प्रकार से मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता।

अहो, चैतन्य भगवान आत्मा ! जिसे लक्ष में लेते ही आत्मा में आनन्द सहित भावश्रुतरूपी अंकुर प्रगट होता है। भावश्रुत वह केवलज्ञानवृक्ष का अंकुर है; ज्ञान का यह अंकुर किसी राग के विकल्प में से नहीं आता। राग में से ज्ञान का अंकुर कभी नहीं हो सकता; आत्मा स्वयं बोधबीज स्वरूप है, उसी में से श्रुत का अंकुर आता है; उसके साथ जो शुद्ध दृष्टि है, वह सम्यग्दर्शन है और जितनी रागरहित स्थिरता हुई वह सम्यक्चारित्र है – ऐसा मोक्षमार्ग है। मोक्ष का मार्ग अर्थात् आनन्द का मार्ग। आतमराम निजपद में रमे, सो आनन्द का मार्ग है; परपद में रमे, सो मोक्षमार्ग नहीं है, उसमें आनंद नहीं है। रागादिक भाव तो परपद है, उसमें जो रमे अर्थात् उसमें जो सुख माने, उसको मोक्षमार्ग नहीं हो सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वपद में ही समाता है। काया और आत्मा की भिन्नता को जानकर निजस्वरूप में जो समाये-लीन हुए – ऐसे निर्ग्रन्थ मुनिवरों का मार्ग, वही भव के अन्त का उपाय है, उसी से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

मोक्ष के मार्ग में भावश्रुतज्ञान होता है, वह भी आनन्द के स्वाद से भरपूर है और स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष है। जैसे केवलज्ञान प्रमाण है, वैसे ही श्रुतज्ञान भी प्रमाण है, परोक्ष होने पर भी वह प्रमाण है और स्वसंवेदन में तो वह प्रत्यक्ष है। अपने आत्मा के अनुभव को साधक जीव स्वसंवेदनरूप प्रत्यक्ष प्रमाण से जानते हैं; उसमें उनको कोई संदेह नहीं। परोक्ष रूप प्रमाणज्ञान भी सन्देह से रहित होता है। जब केवलज्ञान की ही जाति का, स्वसंवेदन-प्रत्यक्षरूप भावश्रुतज्ञान हो, तभी मोक्षमार्ग होता है और उसी जीव को सच्चे निश्चय-व्यवहार नय होते हैं।

सम्यक्चारित्र सो मुख्य मोक्षमार्ग है।

चारित्र अर्थात् स्थिरता किसमें ? निजस्वरूप में। निजस्वरूप क्या है उसके ज्ञान के बिना स्थिरता नहीं होती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संसार के कारणरूप शुभाशुभराग से निवृत्त होकर अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में प्रवृत्ति होना, सो सम्यक्चारित्र है। आत्मज्ञानपूर्वक ही ऐसा चारित्र होता है, अज्ञानी को नहीं होता – यह सूचित करने के लिए उसको 'सम्यक्' कहा है।

आत्मा ज्ञानधातु का वीतरागी निधान है, राग उससे भिन्न है। रागादि विकल्प तो अचिद्धातु है। अरे, इस अचिद्धातु का आभास तो देखो ! अज्ञानी को ऐसा भ्रम होता है कि वह विकल्प ही आत्मा है। परन्तु हे भाई ! उस विकल्प में तो चेतना नहीं है, स्व-पर को जानने की जागृति उसमें नहीं है। तुम ही जागृत चेतना वाले शुद्ध चैतन्य भगवान हो, उसमें विकल्प का प्रवेश नहीं है। ऐसे आत्मा को पहचानकर अनुभव करो, इसके बाद ही उसमें एकाग्रतारूप सम्यक्चारित्र होगा। स्ववस्तु के श्रद्धा-ज्ञान के बिना एकाग्र होगा किसमें ? चौथे गुणस्थान में चैतन्य का श्रद्धा-ज्ञान एक साथ होता है, वहाँ स्वरूपाचरणदशा भी होती है; मुनिदशारूप चारित्र छठवें-सातवें गुणस्थान में होता है। इसप्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित चारित्र ही मोक्षमार्ग है। चौथे गुणस्थान से उसका प्रारंभ होता है।

धर्मी जीव को सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान दोनों एक साथ होते हैं। सम्यग्दर्शन के साथ में जो भाव श्रुत प्रमाण होता है, उसमें ही सच्चे नय होते हैं। मोक्षमार्ग का उद्यम करने वाले जीव को नव तत्त्व के निर्णय का विचार, सच्चे देव-गुरु-धर्म के स्वरूप का विचार इत्यादि शुभभाव होते हैं और भूत नैगमनय से उनको भी मोक्षमार्ग का कारण कहते हैं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान सहित की भूमिका में भी ऐसे शुभभाव होते हैं, परन्तु उनसे विरुद्ध (अर्थात् कुदेवादि को मानने का या जगत को किसी ने बनाया – ऐसे विपरीततत्त्व को मानने का) भाव उस भूमिका में नहीं होता ऐसा ज्ञान कराने के लिए उस भूमिका के शुभभावों को व्यवहार कारण कहने में आता है। वहाँ अकेला शुभराग ही नहीं है, अपितु सम्यक्ज्ञानपूर्वक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धता का अंश भी साथ में है। इसप्रकार की निश्चय-व्यवहार की संधि मोक्षमार्ग में रहती है। यहाँ निश्चय रहित व्यवहार की तो बात ही नहीं है और निश्चय सहित का जो व्यवहार है, वह भी मोक्ष का सच्चा कारण नहीं है, उपचार से ही उसको कारण कहते हैं। सच्चा मोक्ष का कारण तो निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही है और वह आत्मा के अनुभवरूप है।

मोक्षमार्ग में पहले सम्यग्दर्शन और बाद में सम्यक्ज्ञान ऐसा नहीं है एवं पहले सम्यक्ज्ञान व बाद में सम्यग्दर्शन ऐसा भी नहीं है; शुद्ध आत्मा के अवलंबन से दोनों एक साथ ही हो जाते हैं; तो भी दीपक और प्रकाश की तरह उनमें कारण-कार्यपना कहा जाता है; सम्यग्दर्शन को कारण और सम्यक्ज्ञान को कार्य कहा है; परन्तु वे आगे-पीछे नहीं हैं, दोनों साथ ही हैं। स्व-आत्मा को ज्ञेय बनाने वाले ज्ञान के साथ उसकी निर्विकल्प प्रतीति भी रहती ही है। जिसकी प्रतीति करते हैं, उसका सच्चा ज्ञान भी साथ में रहता ही है। बिना जानी हुई वस्तु की श्रद्धा तो गधे के सींग जैसी असत्य है।

सम्यग्दृष्टि के ज्ञान में ही निश्चय और व्यवहार ऐसे दो नय होते हैं, सम्यग्दृष्टि के ये दोनों नय सच्चे हैं। अज्ञानी का एक भी नय सच्चा नहीं होता। धर्मी के दो नयों में से जो निश्चयनय है, वह तो सत्य वस्तुरूप दिखाता है और व्यवहारनय तो निमित्त आदि का ज्ञान कराता है। श्रुतज्ञान में अनन्त नय समाते हैं; परन्तु साधक जीव उन अनन्त नयों को भेद करके नहीं जान सकता। प्रयोजन साधने के लिए संक्षेप से दो नय – एक स्वाश्रित स्वरूप को जानने वाला निश्चयनय और दूसरा पराश्रितभाव को जानने वाला व्यवहारनय; इनमें निश्चयनय के अनुसार जो वस्तुस्वरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव से मोक्षमार्ग सधता है, क्योंकि वह सत्यार्थ है।

देह से भिन्न केवल चैतन्य का ज्ञान हो, तब जीव को भावश्रुत-प्रमाणज्ञान होता है और वह निश्चय-व्यवहार दोनों को यथार्थ जानता

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है। जब तक शुद्धात्मा के अनुभवरूप भावश्रुत प्रगट नहीं होता और राग में तथा देह में एकत्वबुद्धि मिथ्यारुचि बनी रहती है, तब तक जीव का ज्ञान मोक्ष का साधक नहीं होता; परभावों से हटकर स्वद्रव्य के सम्मुख हो, तभी वह मोक्ष का साधक होता है। इसके बिना जितना भी शास्त्रज्ञान या शुभ आचरण हो, वह सब बहिर्मुख है। अंतर्मुख चैतन्यसत्ता दृष्टि में आये बिना मोक्ष का मार्ग नहीं खुलता और जहाँ मार्ग ही नहीं खुला, वहाँ **'यह निश्चयमोक्षमार्ग और यह व्यवहारमोक्षमार्ग'** – ऐसे विचार का अवकाश ही कहाँ है। 'मार्ग' हो, तभी उसमें निश्चय-व्यवहार लागू हो सकता है। अहा, अन्तर के सच्चे मार्ग को भूलकर संसार बाहर में रागादि को मार्ग मान रहा है; परन्तु श्रीगुरु कहते हैं कि हे भाई ! अनंतकाल से ऐसा भाव तो किया, फिर भी तुझे कुछ भी धर्म प्राप्ति क्यों न हुई ? अत: सोच और समझ कि वह मार्ग सच्चा नहीं है; सच्चा मार्ग उससे भिन्न ही है। वह मार्ग है – वीतराग-विज्ञान, जो कि जैन संत तुझे समझाते हैं।

दृष्टि ही जिसकी बंद है, ज्ञानचक्षु ही जिसके खुले नहीं, उसको नय कैसा ? जो केवल व्यवहार को ही देखते हैं, उनको तो राग में एकत्वबुद्धि हो गई है, राग ही उनको सर्वस्व हो गया है; यदि वह राग को ही सर्वस्व न मानता हो तो राग से भिन्न दूसरा स्वरूप कैसा है, उसका उसको लक्ष होना चाहिए अर्थात् निश्चय का लक्ष होना चाहिए और यदि निश्चय का लक्ष हो तो व्यवहार के आश्रय से कल्याण माने नहीं। निश्चय के लक्ष्य के बिना मोक्षमार्ग कैसा ? एकान्त व्यवहार का आश्रय तो संसार है – मिथ्यात्व है। बहिर्मुख दृष्टि वाले अज्ञानी को जो शुभ-विकल्प है, वह व्यवहार नहीं है, वह तो व्यवहाराभास है। यहाँ तो मोक्षमार्ग के साधने वाले साधक को निश्चय के साथ जो व्यवहार है, उसकी बात है। केवलज्ञान के पहले साधकदशा में जो व्यवहार है, उसको जो नहीं समझता, वह निश्चयाभासी है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनि को आत्मा के रत्नत्रय की शुद्धता कैसी होती है और उस भूमिका में पंचमहाव्रतादि कैसे होते हैं, इन दोनों प्रकार को पहचानना चाहिए; उसमें यदि विपरीतता माने तो मुनि की सच्ची पहचान नहीं होती। उसीप्रकार सम्यग्दर्शन की भूमिका में भी निश्चय और व्यवहार दोनों कैसे होते हैं – यह पहचानना चाहिए। जिस भूमिका में निश्चय-व्यवहार के जैसे प्रकार होते हैं, वैसे यथार्थ पहचानना चाहिए। भाई, यह तो सब तेरे आत्मा के ही भाव हैं, उनको तुम समझो। समझ माने ज्ञान; ज्ञान माने आत्मा; केवलज्ञान भी समझ का ही पिंड है; उसमें कहीं राग नहीं है। ज्ञान की जाति अपेक्षा से केवलज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों एक जाति के हैं।

जैसे रुई की गठरी में सर्वत्र रुई ही भरी है, वैसे आत्मा ज्ञान की बड़ी भारी गठरी है। ज्ञान ही उसमें भरा है। अरे, जीव स्वयं ज्ञान का ही पिंड होते हुए भी वह ऐसा कहे कि मेरा स्वरूप मेरी समझ में नहीं आता – यह कैसी बात ? मीठे जल के समुद्र में रहने वाली मछली ऐसा कहे कि मैं प्यासी हूँ, उसके जैसी यह बात है। भाई! राग से ममत्व छोड़कर शुद्धात्मा को तुम्हारी दृष्टि में लो तो तुम्हें आत्मशुद्धिरूप सम्यग्दर्शन होगा, उसके साथ ही सम्यग्ज्ञान होगा; सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर ही स्वरूप में निश्चलतारूप चारित्र होगा – इसप्रकार मोक्षमार्ग होगा; वही सुख है और वही जीव का हित है, उसी को धर्म कहते हैं।

आत्मा ही स्वयं सुखस्वरूप है, अत: आत्मा में उपयोग लगाने से सुख का अनुभव होता है। आत्मा का सुख कहीं बाहर में नहीं है, अत: बाह्य पदार्थ के आश्रय से सुख नहीं होता। सुख जहाँ हो, उसी में उपयोग जोड़ने से सुख होता है अर्थात् निश्चय के आश्रय से सुख होता है और पर के – व्यवहार के राग के आश्रय से सुख नहीं होता, अत: निश्चय का आश्रय करना चाहिए और व्यवहार का आश्रय छोड़ना चाहिए।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

श्रीमद् राजचन्द्रजी (जो कि ववाणीया ग्राम सौराष्ट्र में हुए थे) १७ साल से भी छोटी उम्र में यह बात बहुत अच्छे शब्दों में लिख गये हैं –

१. स्वद्रव्य और परद्रव्य को भिन्न देखो।
२. स्वद्रव्य के रक्षक शीघ्र बनो।
३. स्वद्रव्य में व्यापक शीघ्र बनो।
४. स्वद्रव्य के धारक शीघ्र बनो।
५. स्वद्रव्य में रमक शीघ्र बनो।
६. स्वद्रव्य के ग्राहक शीघ्र बनो।
७. स्वद्रव्य की रक्षा का लक्ष्य रखो।
८. परद्रव्य की धारकता शीघ्र तजो।
९. परद्रव्य में रमणता शीघ्र तजो।
१०. परद्रव्य की ग्राहकता शीघ्र तजो।

इनमें प्रारंभ के सात बोलों के द्वारा स्वद्रव्य का आश्रय करने का मार्ग दिखाया है और पीछे के तीन बोलों के द्वारा परद्रव्य का आश्रय छोड़ने को कहा है। इसप्रकार दस बोलों के द्वारा जैन सिद्धान्त का सारा रहस्य बतलाया है; थोड़े शब्दों में बड़ी गम्भीर बात की है।

चैतन्यवस्तु रागादि आस्रव से रहित है और अजीवकर्म से भिन्न है, ऐसी अपनी चैतन्यवस्तु को अनुभव में लेकर जब सम्यग्दर्शन हो, तब निश्चय के साथ के राग में आरोप करके उसको व्यवहार कह सकते हैं; परन्तु जो राग से भिन्न स्वतत्त्व को नहीं जानता और राग में एकत्व मानता है, उसको तो व्यवहार कहाँ रहा ? उसको तो राग ही निश्चय हो गया, अतएव मिथ्यात्व हो गया। पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहते हैं कि अज्ञानी को समझाने के लिए मुनीश्वर अभूतार्थ ऐसे व्यवहार का भी उपदेश देते हैं; परन्तु जो जीव अकेले व्यवहार को ही परमार्थरूप समझ लेता है, वह सच्चे उपदेश को नहीं समझता; अतएव उसको देशना फलीभूत नहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

होती। भाई ! तुझे परमार्थस्वरूप दिखाने के लिए व्यवहार कहा था, न कि व्यवहार को ही पकड़कर रुकने के लिए।

जैसा सर्वज्ञदेव ने कहा है, वैसे स्वतत्त्व को पहचानकर श्रद्धा में व अनुभव में लेना, सो निश्चयमार्ग है; उसके साथ में जो नवतत्त्व का ज्ञान, सच्चे देव-गुरु की पहचान आदि होते हैं, वह व्यवहारमार्ग है। अपने सर्वज्ञस्वभाव की श्रद्धा, सो निश्चयसम्यग्दर्शन और अपने से भिन्न सर्वज्ञपरमात्मा की श्रद्धा, सो व्यवहारसम्यग्दर्शन है। धर्मी को ऐसे निश्चय-व्यवहार की संधि होती है। निजस्वरूप में वीतरागी लीनता, सो निश्चयचारित्र है वह स्वद्रव्याश्रित है और पंच महाव्रतादि शुभराग, सो व्यवहारचारित्र है, वह परद्रव्याश्रित है। स्वद्रव्याश्रित शुद्धता तो मोक्ष का कारण है और परद्रव्याश्रित रागादि भाव बंध का कारण है।

जैसे अरिहंत भगवान हैं, वैसा मैं हूँ – ऐसा निर्णय करने वाले को अरिहंत भगवान के संबंध में जो विकल्प था, उससे दूर जाकर जब अपने ज्ञानस्वभाव की अनुभूति की, तब वास्तविक सम्यग्दर्शन हुआ और उसमें निमित्तरूप अरिहंत की श्रद्धा के भाव को भी सम्यग्दर्शन कहा, सो व्यवहार है अर्थात् वास्तविक सम्यग्दर्शन वह नहीं है; परन्तु सच्चे सम्यग्दर्शन का उसमें आरोप करके उसे भी सम्यग्दर्शन कहा है। जो स्वसन्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्रगट नहीं करता, उसको न तो निश्चय होता है, न व्यवहार। सम्यक्त्व सन्मुख जीव अरिहंत देव के प्रति लक्ष के समय में उस विकल्प में अटकना नहीं चाहता था, परन्तु अन्तर में अपने सच्चे स्वरूप का निर्णय करके अंतर्मुख होना चाहता था – ऐसे लक्ष्य के कारण अरिहंत की श्रद्धा को भी सम्यग्दर्शन कह दिया, परन्तु अपने अन्तरस्वभाव की ओर जो नहीं आता, उसको तो ऐसा व्यवहार भी लागू नहीं होता।

यह छहढाला तो जैनधर्म का तत्त्वज्ञान कराने वाली पाठ्य पुस्तक है, बड़े या छोटे सभी को पढ़ने योग्य है, यह सुगम एवं सभी को समझ

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में आ जाये - ऐसी है और प्रयोजनभूत वीतराग-विज्ञान का स्वरूप इसमें समझाया है। अहो, वीतराग-विज्ञान का ऐसा शिक्षण तो प्रत्येक घर में करना चाहिए, इसके अतिरिक्त लौकिक पढ़ाई में तो कुछ भी हित नहीं है। यह तो भगवान सर्वज्ञदेव का पढ़ाया हुआ वीतरागी शिक्षण है, यही शिक्षण सभी जीवों के लिए अपूर्व हितकर है।

जिनके ज्ञानादि गुणों का पूरा विकास हो चुका है और रागादि दोषों का सर्वथा अभाव हो चुका है – ऐसे सर्वज्ञ वीतराग ही सच्चे देव हैं, भेदज्ञान के द्वारा ऐसी दशा को जो साध रहे हैं – ऐसे शुद्धोपयोगी संत सच्चे गुरु हैं और ऐसे देव-गुरु से प्रतिपादित तत्त्व सो शास्त्र है, सम्यग्दर्शन की भूमिका में ऐसे सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा होती है, सो व्यवहार है; इसके विरुद्ध किसी भी देव-गुरु-शास्त्र की मान्यता व्यवहार में भी नहीं होती। देव-गुरु-शास्त्र का स्वरूप जो विपरीत मानते हैं, उनके तो निश्चय या व्यवहार एक भी सच्चा नहीं होता। सम्यग्दर्शन के सहचररूप से सच्चे देव-गुरु-शास्त्र के आदर का विकल्प होता है, विरुद्ध नहीं होता अर्थात् कुदेवादि की मान्यता का विकल्प वहाँ नहीं होता। मोक्षमार्ग में निश्चय-व्यवहार की ऐसी ही स्थिति है, परन्तु उसमें मोक्षमार्ग तो शुद्धात्मा के आश्रित जो सम्यग्दर्शनादि हुआ वह है, उसके साथ का विकल्प मोक्षमार्ग नहीं है। भाई, तुम्हारे भाव में, मोक्ष का सच्चा कारण क्या है, उसको तुम पहचानो।

एक तो सम्यग्दर्शन की तैयारी वाले जीव को सम्यग्दर्शन होने के पूर्व निश्चय के लक्ष्यसहित जो विकल्प था, उसको सम्यग्दर्शन का कारण कहा, सो व्यवहार है और दूसरे प्रकार में, सम्यग्दर्शन के साथ में सहचारीरूप से विद्यमान देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा आदि के विकल्प को भी सम्यग्दर्शन कहा, सो व्यवहार है; इन दोनों में विकल्प से पार शुद्धात्मा की दृष्टि ही सच्चा सम्यग्दर्शन है, वह निश्चय है, वह सत्य है, वह मोक्ष का सच्चा कारण है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र तो आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव सिद्ध करते हैं; सर्वज्ञता और वीतरागता ही उनका तात्पर्य है और वह तात्पर्य निजस्वरूप के श्रद्धा-ज्ञान-आचरण से ही सिद्ध होता है, पर-सन्मुखता से (अर्थात् व्यवहार से) वह सिद्ध नहीं होता। अत: व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग मानने वाले लोग वीतराग शासन में नहीं हैं, उन्होंने सच्चे मोक्षमार्ग को नहीं जाना। ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुमार्ग की श्रद्धा का विकल्प वह सम्यग्दर्शन का कारण तो नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन के सहकारीरूप से भी वह नहीं होता; वह तो सम्यग्दर्शन से विरुद्ध है। सच्चे देव-गुरु की श्रद्धा का विकल्प जो कि सम्यग्दर्शन का सहकारी है, वह भी मोक्ष का सत्य कारण नहीं है। सत्य कारण तो भूतार्थस्वभाव के आश्रय से होनेवाली शुद्धात्मा की श्रद्धा ही है; उसे ही 'सत्यार्थ' कहते हैं। निश्चय कहो या सत्यार्थ कहो, वह मुख्य है और दूसरा व्यवहार है, वह गौण है, वह सत्यार्थ नहीं है; परन्तु आरोप है, उपचार है।

आत्मा जैसा सर्वज्ञस्वभाव है, वैसे वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वभाव है; आत्मा स्वयं ही आनन्दरूप है, राग में उसका आनन्द नहीं है, अत: राग के आश्रय से सुख या आनन्द नहीं होता। उसीप्रकार इस आत्मा का आनन्दस्वभाव कोई देव-गुरु-शास्त्र आदि दूसरों के पास नहीं है, अत: दूसरों के आश्रय से वह प्रगट नहीं होता। जहाँ अपना आनन्द भरा है, उसी में एकता के द्वारा आनन्द का अनुभव होता है। अपना आनन्द अपने में ही भरा है, आनन्दरूप स्वयं आप ही हैं और अपने में दृष्टि करने से उसका अनुभव होता है। जैसे ज्ञानस्वभाव आत्मा में है, अत: आत्मा के आश्रय से सर्वज्ञता होती है, उसमें अन्य किसी का आश्रय नहीं है; राग या देह के आश्रय से सर्वज्ञत्व नहीं होता; क्योंकि उसमें वह नहीं है। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिंड है, उसके आनन्द में अन्य किसी का आश्रय नहीं है; राग के या देह के आश्रय से आनन्द नहीं होता; क्योंकि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसमें आनन्द नहीं है। ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है, उसके ही आश्रय से वह प्रगट होता है; परन्तु जिसके स्वभाव में ज्ञान और आनन्द नहीं है, उसके आश्रय से वह प्रगट नहीं होता।

मोक्ष अर्थात् पूर्ण आनन्द; उसके कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र वे भी अतीन्द्रिय आनन्द के ही अंश हैं, आत्मा के आश्रय से वे होते हैं। आनन्द के समान जातिवाले वे अंश ही पूर्ण आनन्द के कारण होते हैं। जो राग है, सो आनन्द का तो अंश नहीं है, अत: वह आनन्द का कारण भी नहीं हो सकता; तो उसको मोक्षमार्ग कौन मानेगा ? जिनमें अंशमात्र भी आनन्द नहीं है, अपितु आकुलता है, वैसे रागादिभाव पूर्ण आनन्दरूप मोक्ष के देने वाले कैसे हो सकते हैं ? नहीं हो सकते। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों आनंदरूप हैं, रागरहित हैं और आत्मा के ही आधीन हैं, वही पूर्ण आनन्दरूप मोक्ष के देने वाले हैं। सुखरूप पर्याय पूर्ण सुख को साधती है; परन्तु दु:खपर्याय सुख को नहीं साध सकती। शुभराग के द्वारा वीतरागमार्ग नहीं सधता, रागके अभावरूप आंशिक वीतरागता के ही द्वारा वीतरागमार्ग सधता है। पुण्य-पाप के राग में आनंद है ही कहाँ/कि वह आनन्द को दे ? आनन्द कहो या मोक्ष का मार्ग कहो, उसका कोई भी अंश राग में नहीं है और न आनन्द में राग है; अतएव वे एक-दूसरे का कारण भी नहीं हैं। इसप्रकार राग मोक्षमार्ग नहीं है, व्यवहार के आश्रित मोक्षमार्ग नहीं है; रागरहित जो शुद्धस्वभाव उसके आश्रय से मोक्षमार्ग है – यह जैनधर्म का सिद्धान्त है, यह तीर्थंकरों का मार्ग है।

जैनसिद्धान्त का हार्द यह है कि आत्मा स्वयं ज्ञान आनन्दरूप भगवान है, उसको अपने अनुभव में लेना। ऐसे अनुभव को ही जैनशासन कहा है और वही तीर्थंकरों का मार्ग है। ज्ञान आनन्दस्वरूप में दृष्टि करके एकाग्र होने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और उसकी पूर्णता होने पर मोक्षदशा होती है। अंश और अंशी एक ही जाति के होते हैं; अंशी का अंश उसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाति का होता है; सच्चे कारण-कार्य एक जाति के होते हैं; अंश अपनी जाति के अंशी के आश्रय से प्रगट होता है; परन्तु विजाति के आश्रय से नहीं होता। सच्चे ज्ञान का अंश ज्ञान के ही आश्रय से प्रगट होता है, राग के आश्रय से प्रगट नहीं होता। राग के सेवन से तो रागका ही कार्य होगा परन्तु ज्ञान नहीं होगा। अंशी के साथ में एकता करके जो अंश प्रगट हुआ, वही सच्चा अंश है। (पूर्णता के लक्ष से प्रारंभ, वही सच्चा प्रारंभ है।) पूर्णता का लक्ष कहो या सम्यग्दर्शन कहो, वही मोक्षमार्ग का प्रारंभ है। सारा आत्मा आनन्दस्वभाव है, उसके अनुभव से आनन्द ही होता है। राग के आश्रय से आनंद का अनुभव कभी नहीं होता; क्योंकि जो आनन्द है, वह राग का ही अंश नहीं है। उसीप्रकार ज्ञान और श्रद्धान भी राग के आश्रय से नहीं होते; क्योंकि वे ज्ञानादि राग के तो अंश नहीं हैं। राग के आश्रय से तो राग होगा, मोक्षमार्ग नहीं होगा। मोक्षमार्ग रागरूप नहीं है।

देखो जी, यह सत्यार्थ मोक्षमार्ग ! सच्चा मोक्षमार्ग राग से रहित है। आत्मा का ज्ञान व आनन्द राग से रहित है। ज्ञान और आनन्द आत्मा के मुख्य गुण हैं। **'चिदानंदाय नमः'** इत्यादि मन्त्र आत्मा के स्वभाव को ही सूचित करते हैं, उसमें श्रद्धा, वीर्य आदि अनन्तगुण भी समाविष्ट हो जाते हैं। जिस गुण की मुख्यता से देखा जाये उसी गुणस्वरूप पूरा आत्मा दिखता है। आनन्द की मुख्यता से देखने पर सारा आत्मा आनन्दस्वरूप है, ज्ञान की मुख्यता से देखने पर आत्मा ज्ञानस्वरूप है; इसीतरह श्रद्धा आदि अनन्त गुणस्वरूप अखंड आत्मा है; उसके लक्ष से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनन्द होता है।

आत्मा के लक्ष से राग नहीं होता, उसका तो अभाव हो जाता है। राग वह आत्मगुण नहीं है; अतः राग के आश्रय से आत्मा को कोई गुण (सम्यग्दर्शनादि) प्रगट नहीं होते। सभी गुणों की निर्मलदशा आत्मा के ही आश्रय से परिणमित होती है; अपने ज्ञानादि गुण पर्यायों को धारण करने वाली वस्तु आत्मा ही है। जिसमें जो गुण नहीं होता, उसके आश्रय से उस

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

गुण का कार्य भी नहीं होता; गुण जिसमें होता है, उसी के आश्रय से उनका कार्य होता है। जिसमें ज्ञान हो, उसी के आश्रय से केवलज्ञान होता है, जिसमें आनन्द हो उसी के आश्रय से आनन्द होता है। जिसमें ज्ञान या आनन्द है ही नहीं, उसमें से वह कैसे मिलेगा? अत: हे जीव ! तुम पर का आश्रय छोड़ो और स्वद्रव्य के सन्मुख होकर उसका ही आश्रय करो...यह कार्य शीघ्र करो, आत्महित के इस कार्य में विलंब न करो।

आत्मा की अवस्था में अनादिकाल से जो दु:ख का अनुभव है, वह कैसे मिटे ? और अनाकुलतारूप सच्चे आत्मसुख का अनुभव कैसे हो ? उसकी रीति वीतरागी सन्तों ने दिखायी है; अपने हित के लिए उसको लक्ष में लेकर विचार करना चाहिए। बाहर के दूसरे विचार तो बहुत करते हो, तब यह तो तुम्हारे हित की बात है, इसका भी थोड़ा विचार तो करो। संसार के विचार करके तुम दु:खी हो रहे हो, अब एक बार आत्मा के सुख का विचार करो। जो दु:ख है, उतना तो आत्मा नहीं है; उसके पीछे जो आनन्द का सारा समुद्र भरा है, उसको देखो, तो तुममें आनन्द की तरंग उल्लसित होगी और दुख मिट जायेगा। आनन्द की विकृति सो दु:ख, लकड़ी में दुख नहीं होता; क्योंकि उसमें आनन्दस्वभाव नहीं है। आनन्दस्वभाव जहाँ न हो, वहाँ उसकी विकृतिरूप दु:ख भी नहीं होता। दु:ख तो विकृत क्षणिक कृत्रिमभाव है; उसी समय आनंद स्वभाव सहज अकृत्रिम शाश्वत है। अपने आनन्दस्वभाव को भूलकर अज्ञान से जीव दु:खी हो रहा है; आनन्दस्वभाव का अनुभव करने से दु:ख मिट जाता है। दु:ख संयोग में नहीं है एवं स्वभाव में भी नहीं है, वह तो क्षणिक विकृति है; किसकी विकृति ? आत्मा के अंदर जो आनन्दस्वभाव भरा पड़ा है, उसकी पर्याय में विकृति, वह दु:ख है। आनंदस्वभाव के अनुभव से विकृतदशा छूटकर आनंद दशा प्रगट होती है। अरे, दु:ख क्या है, उसका भी जीव को भान नहीं है। दु:ख का सच्चा स्वरूप पहचाने तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अपना सारा आनन्दस्वभाव सिद्ध हो जाता है; जब आनन्दस्वभाव को जाने, तभी दु:ख का भी स्वरूप पहचानने में आवे।

अब दु:ख की तरह कषाय की बात समझाते हैं। कषाय भी दु:ख ही है। अन्तर में आत्मा शांतरस से भरा हुआ अकषायस्वरूप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप अकषायभाव की उत्पत्ति होती है, वह मोक्षमार्ग है। उस अकषायभाव का आधार कोई रागादि विकल्प नहीं है। राग-द्वेष स्वयं कषाय है, वह अकषायभाव का कारण नहीं होता और शांत अकषायस्वभाव की सन्मुखता से कषाय की उत्पत्ति नहीं होती। कषाय क्षणिक विकृतभाव है, अकषायस्वभाव त्रिकाल है; इन दोनों को पहचानने से अकषाय चैतन्यस्वभाव का अनुभव होता है और कषाय का अभाव होता है – यही मोक्षमार्ग है। क्षणिक कषाय को त्रिकाली स्वभाव का आधार नहीं है; त्रिकाली स्वभाव में तो कषाय है ही नहीं; ऐसे स्वभाव को लक्ष में लेने से कषायभाव दूर हो जाता है।

उसीप्रकार श्रद्धास्वभावी आत्मा है, उसकी सन्मुखता वह सम्यग्दर्शन है। मिथ्यात्वरूप विकृति तो एक क्षण की ही है, उसको स्वभाव का आधार नहीं है। जो श्रद्धास्वभाव त्रिकाल है, उसका स्वीकार करने पर मिथ्यात्व नहीं रहता। सम्यक्त्व प्रगट करने के लिए ऐसा आत्मस्वभाव ही आधाररूप है, रागादि विकल्पों के आधार से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

उसीप्रकार सम्यक् पुरुषार्थरूप वीर्य आत्मा का स्वभाव है; उसके आश्रय से रत्नत्रय के पुरुषार्थरूप वीर्यबल प्रगट होता है; विकल्प में ऐसा सामर्थ्य नहीं है कि रत्नत्रय को प्रगट करे। बलवंत वीर्यवान् आत्मा है, जो कि स्वबल से रत्नत्रय प्रगट करता है। 'बल' नाम की एक औषधि होती है, वैसे आत्मा में वीर्यबलरूप ऐसा औषध है कि जो सर्व कषाय रोगों को नष्ट करके अविकारी रत्नत्रय का और केवलज्ञानादि चतुष्टय का अनन्त बल देता है। किसी भी राग में ऐसा बल नहीं है कि वह रत्नत्रय दे। अनन्तगुणरूप जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मस्वभाव है, उसी के आश्रय से मोक्षमार्ग एवं मोक्ष होता है। ऐसे सच्चे मोक्षमार्ग का विचार कर उसका आराधन करना चाहिए।

निश्चय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकतारूप एक ही मोक्षमार्ग है; दो मोक्षमार्ग नहीं हैं। 'एक होत तीन काल में, परमारथ का पंथ।' एक निश्चयमोक्षमार्ग और एक व्यवहारमोक्षमार्ग – ऐसे दो मोक्षमार्ग मानना मिथ्या है। यह बात पं. टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में बहुत अच्छे ढंग से समझायी है। निश्चय मोक्षमार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी को मोक्षमार्ग कहना, सो सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है, परन्तु मात्र उपचार है – ऐसा जानना। शुद्ध आत्मतत्त्व को जानकर, उसकी श्रद्धा कर, उसके अनुभव से ही मोक्ष होता है, मोक्ष का अन्य कोई मार्ग नहीं है, नहीं है। **(न खलु न खलु यस्माद् अन्यथा साध्यसिद्धिः।)**

प्रवचनसार में कहते हैं कि जो अतीतकाल में क्रमशः हुए, उन सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने एक ही प्रकार से कर्मांशों का क्षय किया, क्योंकि अन्य प्रकार का अभाव होने से मोक्षमार्ग में द्वैत का संभव ही नहीं है, एक ही मार्ग है। इसप्रकार शुद्धात्मा के अनुभव द्वारा समस्त कर्मों का क्षय करके सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने तीनों काल के मुमुक्षुओं के लिए भी उसीप्रकार का उपदेश दिया और बाद में मोक्ष की प्राप्ति की। अतः निश्चित होता है कि निर्वाण का कोई अन्य मार्ग नहीं है। ऐसे एक ही प्रकार के सम्यक् मार्ग का निर्णय करके आचार्यदेव कहते हैं कि अहा, ऐसे स्वाश्रित मोक्षमार्ग का उपदेश देने वाले भगवन्तों को नमस्कार हो। हमने ऐसे मोक्षमार्ग का निर्णय किया है और उसकी साधना का कार्य चल रहा है।

शुद्धात्म अनुभूतिरूप जो निश्चयरत्नत्रय इसके सिवाय दूसरा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इन तीनों स्वरूप एक मोक्षमार्ग है, परन्तु जुदे-जुदे तीन मोक्षमार्ग नहीं हैं। जहाँ सम्यग्दर्शन हो, वहाँ सम्यग्ज्ञान भी साथ में होता ही है और वहाँ अनन्तानुबंधी कषाय के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अभावरूप चारित्र का अंश भी होता है। इसप्रकार शुद्ध रत्नत्रयरूप एक ही मोक्षमार्ग है; हाँ, उस रत्नत्रय की शुद्धि में तारतम्यरूप से अनेक प्रकार पड़ते हैं तो भी उनकी जाति एक-सी ही है; रत्नत्रय की जितनी शुद्धता है, उतना ही मोक्षमार्ग है, दूसरा कोई मोक्षमार्ग नहीं है।

प्रश्न – अनेक जगह निश्चय और व्यवहार ऐसे दो प्रकार का मोक्षमार्ग कहा है और आप तो मोक्षमार्ग एक ही कहते हो, तो क्या इसमें विरोध नहीं आता ?

उत्तर – ना; सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है और दूसरा कोई सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है – ऐसा निर्णय करके सच्चे मोक्षमार्ग को ही मोक्षमार्गरूप से ग्रहण करना, यही अविरुद्धता है, परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग भी मार्ग है और व्यवहार-मोक्षमार्ग भी मार्ग है – ऐसा दोनों को सच्चा मानकर अंगीकार करने से तो विरोध आता है। एक निश्चयमोक्षमार्ग ही सच्चा मार्ग है; और दूसरा मार्ग कहना, सो तो मात्र उपचार है, वह सच्चा मार्ग नहीं है – ऐसी पहचान करने से ही सच्चे मोक्षमार्ग का ज्ञान होता है और उसमें ही दोनों नयों के सच्चे अर्थ का स्वीकार होता है।

आत्मा के शुद्ध स्वभाव की अनुभूतिस्वरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो शुद्ध वीतराग परिणाम है, वह तो सच्चा मोक्षमार्ग है अर्थात् निश्चय से वास्तविक मोक्षमार्ग वह है और वहीं पर, जो सच्चा मोक्षमार्ग तो नहीं है; परन्तु मोक्षमार्ग के साथ में निमित्तरूप से विद्यमान है, उसको भी मोक्षमार्ग कहना, सो व्यवहार है।

'कारण सो ववहारो' – व्यवहार को निश्चयमोक्षमार्ग का कारण कहना, सो भी उपचार है अर्थात् निमित्तरूप है – ऐसा समझना। जैसे बिना उपादान का निमित्त वह वास्तव में निमित्त नहीं है, वैसे निश्चय की अपेक्षा से रहित व्यवहार वह वास्तविक व्यवहार नहीं है। निश्चय के बिना अकेला व्यवहार होता ही नहीं; अत: पहले अकेला व्यवहार हो और उसके द्वारा निश्चय की प्राप्ति हो जाये – यह बात सच्ची नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसप्रकार निश्चय और व्यवहार दोनों साथ में रहते हैं, तथापि उनमें सत्य मोक्षमार्ग तो एक ही है, दो नहीं।

मोक्षमार्ग का सच्चा निर्णय करने के लिए यह बात प्रयोजनभूत होने से विस्तार से कही गई है। साधक की एक पर्याय में निश्चय-व्यवहार दोनों साथ में रहते हैं, उनमें निश्चयरत्नत्रय तो सत्यार्थ मोक्षमार्ग है और उसके अनुकूल जो श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का शुभ विकल्प है, उसमें मोक्षमार्ग का व्यवहार करना, सो वह उपचार है, वह सत्यार्थ नहीं है। एक ही सत्य मोक्षमार्ग और दूसरा सत्य नहीं; परन्तु उपचार – ऐसे मोक्षमार्ग के स्वरूप का निर्धार करना चाहिए। निश्चय और व्यवहार दोनों मिलकर एक मोक्षमार्ग है – ऐसा नहीं है। जो निश्चय है, वह एक ही मोक्षमार्ग है।

– शुद्ध आत्मा का श्रद्धान, वह एक ही सम्यग्दर्शन है;

– शुद्ध आत्मा का ज्ञान, वह एक ही सम्यग्ज्ञान है;

– शुद्ध आत्मा में लीनता, वह एक ही सम्यक्चारित्र है;

– ऐसा शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एक ही मोक्षमार्ग है;

– व्यवहार के विकल्पों का – राग का उसमें अभाव है।

निश्चय की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है, उसका स्वीकार है; परन्तु उसे सत्य मोक्षमार्गरूप से ज्ञानी नहीं स्वीकारते।

प्रश्न – जो व्यवहार रत्नत्रय है, वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है, तो फिर उपचार से उसको मोक्षमार्ग क्यों कहा ?

उत्तर – क्योंकि, निश्चय के साथ में उस भूमिका में ऐसा ही व्यवहार निमित्तरूप से होता है, विपरीत नहीं होता – ऐसा उस भूमिका का ज्ञान कराने के लिए उसमें मोक्षमार्ग का उपचार है। जैसे बिल्ली में बाघ का उपचार यह सूचित करता है कि बिल्ली स्वयं सच्चा बाघ नहीं है, सच्चा बाघ उससे भिन्न है; वैसे व्यवहार में मोक्षमार्ग का उपचार यह सूचित करता है कि व्यवहार स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है, सच्चा मोक्षमार्ग उससे दूसरा है। 'ज्ञानस्वरूप आत्मा है' इतने गुण गुणीभेद के विकल्परूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व्यवहार भी मोक्ष का साधन नहीं हो सकता, तब फिर अन्य स्थूल बाह्यलक्ष्यी राग की तो क्या बात ?

मोक्षमार्ग दो नहीं, एक ही है; उसीप्रकार –

– मोक्षमार्ग में जो सम्यग्दर्शन है, वह दो नहीं, एक ही है;

– मोक्षमार्ग में जो सम्यग्ज्ञान है, वह दो नहीं, एक ही है;

– मोक्षमार्ग में जो सम्यक्चारित्र है, वह दो नहीं, एक ही है।

यद्यपि सम्यग्दर्शन के तीन भेद हैं, सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं और सम्यक्चारित्र के पाँच भेद हैं, तथापि उन सबमें स्वद्रव्य के आश्रय का प्रकार एक ही है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कोई भी अंश परद्रव्य के आश्रित नहीं है और उसमें कहीं भी राग नहीं है।

भगवान आत्मा महान पदार्थ है, उसमें अंतर्मुख श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है; उससे भिन्न और कोई मोक्षमार्ग कहना, वह तो वचन का विलास है, उसका वाच्य तो निमित्त या राग है; परन्तु मोक्षमार्ग का सत्य स्वरूप वह नहीं है। सत्य मोक्षमार्ग शुद्ध आत्मा की अनुभूति में ही समाता है, वह निर्विकल्प है, उसमें कोई विकल्प नहीं – राग नहीं। ऐसे मोक्षमार्ग का प्रारम्भ चौथे गुणस्थान से होता है। श्री समन्तभद्रस्वामी ने 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो'... ऐसा कहकर सम्यग्दृष्टि-गृहस्थ को भी मोक्षमार्ग में स्वीकार किया है। अत: यदि कोई ऐसा कहे कि चौथे-पाँचवे-छठवें गुणस्थान में एकान्त व्यवहार मोक्षमार्ग ही होता है और बाद में सातवें गुणस्थान से अकेला निश्चय-मोक्षमार्ग होता है, तो यह बात सत्य नहीं है। चौथे गुणस्थान से ही दोनों एक साथ हैं। उनमें शुद्धता का जितना अंश है, वह सच्चा मोक्षमार्ग है और जो रागादि है, वह मोक्षमार्ग नहीं है। ऐसे सभी प्रकार से पहचान कर सत्य मोक्षमार्ग को अंगीकार करना चाहिए।

अहो ! ऐसा सरस-सुन्दर-स्वाधीन मोक्षमार्ग, वही महान सुख का कारण है – ऐसा जानकर बहुमानपूर्वक उसका सेवन करो। ●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

निश्चय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का व्याख्यान

निराकुल सुखरूप जो मोक्ष वह आत्मा का हित है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका मार्ग है; जीव को अपने हित के लिए ऐसे मोक्षमार्ग में लगना चाहिए – ऐसा पहली गाथा में कहा, अब दूसरी गाथा में उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का व्याख्यान करते हैं –

(गाथा)

परद्रव्यनतैं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है;
आपरूप को जानपनो सो सम्यक्ज्ञान कला है।
आपरूप में लीन रहे थिर सम्यक्चारित सोई;
अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियत को होई॥२॥

आत्मा के हित के लिए सच्चे मोक्षमार्ग का यह वर्णन है; उसमें प्रथम जो निश्चय सम्यग्दर्शन है, वह पर से भिन्न अपने शुद्धात्मा की रुचिरूप है; आत्मा की रुचिरूप वह सम्यग्दर्शन भला है, श्रेष्ठ है और आत्मा के यथार्थस्वरूप का जानपना (ज्ञान) सो सम्यग्ज्ञानरूप वीतरागी कला है; आत्मस्वरूप को जानने वाला यह ज्ञान मोक्ष का कारण होता है और वह स्वयं निराकुल आनन्दरूप है। इसप्रकार अपने आत्मा की रुचि व ज्ञान करके उसमें लीन होकर स्थिर रहना सो सम्यक्चारित्र है। देखो ! इसमें कहीं राग नहीं आया। मोक्षमार्ग के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों राग से रहित हैं। ऐसे मोक्षमार्ग को पहचान कर उसके उद्यम में निरन्तर लगे रहना चाहिए। यह निश्चयमोक्षमार्ग कहा। अब व्यवहारमोक्षमार्ग जो कि निश्चयमोक्षमार्ग का निमित्तरूप हेतु है, उसका कथन आगे के श्लोक में करेंगे।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परद्रव्यों से भिन्न, परसन्मुख रागादिभावों से भिन्न और अपने स्वभावों से अभिन्न ऐसे अपने आत्मा की श्रद्धा (रुचि) सो सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दृष्टि जीव गृहस्थदशा में हो, व्यापार-धंधा, राजपाट में हो, शुभाशुभभाव होते हों, तो भी अन्तर की दृष्टि में वह अपने आत्मा को उन सबसे भिन्न शुद्ध चैतन्यभावरूप ही देखता है। वह परद्रव्य में नहीं रहा, उसका संबंध होते हुए भी उससे भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ – इसप्रकार वह स्वद्रव्य की श्रद्धा करता है; यह सम्यक्त्व भला है-हितरूप है-कल्याणरूप है। निश्चय सम्यग्दर्शन को भला कहा है, वही सत्यार्थ है, वही सच्चा मोक्षमार्ग है।

आत्मा की रुचि को सम्यक्त्व कहा अर्थात् निश्चय सम्यग्दर्शन का विषय अकेला स्वतत्त्व है। पर से भिन्न अपने स्वतत्त्व को लक्ष में लेने से, राग से भी भिन्न अनुभव होता है। ऐसे अनुभवपूर्वक आत्मा की श्रद्धा, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है; इसमें अकेले स्वतत्त्व में दृष्टि (एकत्वबुद्धि, तन्मयता) है। स्व में लक्ष करते ही परद्रव्य और परभावों के साथ एकत्वबुद्धि छूट जाती है। इसप्रकार स्व में स्वबुद्धिरूप आत्मरुचि, वही सम्यग्दर्शन है।

'आप में रुचि' – आप अर्थात् अपना आत्मा, उसका स्वरूप पहचानकर, निर्विकल्प स्वसंवेदन सहित उसकी श्रद्धा करना चाहिए। बाह्यदृष्टि से संयोग और राग में 'यह मैं' ऐसी मिथ्याबुद्धि थी, उसको छोड़कर अंतर में 'यह मैं' ऐसी निजस्वभाव की प्रतीति करने पर सम्यक्त्व हुआ, अपना आत्मा जैसा है, वैसा पहचान में आ गया। अकेले शुद्ध स्वभाव में ही रुचि का प्रवेश हुआ, तब कोई विकल्प में रुचि न रही, या उसके अवलम्बन से धर्म का कुछ लाभ होगा – ऐसी बुद्धि न रही। पर से भिन्न और विकल्प से भिन्न शुद्धात्मरूप होकर परिणमा; ऐसा सम्यक् परिणमन भला है, शुद्ध है, निश्चय मोक्षमार्ग का अंग है और मोक्ष के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधने की यह कला है। 'रुचि सम्यक्त्व भला है और सम्यक्ज्ञान कला है।' आत्मा की रुचि व आत्मा का ज्ञान, वह मोक्ष के साधने की उत्तम कला है। पर का जानपना या शास्त्र का जानपना – वह नहीं, परन्तु आपरूप अर्थात् आत्मा का स्वरूप उसको पर से भिन्न जानना ही सच्ची ज्ञानकला है। बाहर की अनेक कला जीव ने सीख ली; परन्तु आत्मज्ञान की कला उसने पूर्व में कभी नहीं जानी। जब ज्ञान आत्मस्वभाव की ओर सन्मुख हुआ, तब सम्यक्ज्ञान की कला खिली, आत्मज्ञान हुआ और मोक्षमार्ग खुल गया। आत्मा का ज्ञान होने पर नवतत्त्व आदि का व्यवहार जानपना (ज्ञान) गौण हो गया। 'जिसने आत्मा को जाना, उसने सब कुछ जान लिया' उसको ज्ञान की कला खिल गई, अब वृद्धिगत होकर केवलज्ञानरूपी पूर्णिमा होगी। केवलज्ञान प्रगट करने के लिए यह सम्यग्ज्ञानकला है, वह केवलज्ञान के साथ आनन्द की केलि करते हैं, आनन्द की क्रीड़ा करती हुई वह केवलज्ञान को साधती है। अहा, चौथे गुणस्थान वाले गृहस्थ का सम्यग्ज्ञान भी केवलज्ञान की जाति का ही है। पूर्ण चन्द्र का अंश भी चन्द्रमा की जाति का ही होता है, वैसे सम्यक् मति-श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान की जाति का ही है, वह राग की जाति का नहीं है। अहा, शुद्ध चैतन्यस्वरूप का ज्ञान होते ही केवलज्ञान की एक कला खिली। ऐसी भेदज्ञानकला मोक्ष को साधने वाली है।

परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि सम्यक्त्व भला है।
आपरूप को जानपनो सो सम्यग्ज्ञान कला है॥

हे जीव! मोक्षसुख के लिए तू ऐसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग में उद्यमी हो। अपने आत्मा के सन्मुख होकर आत्मा की रुचि सो सम्यग्दर्शन है, आत्मा का ज्ञान, सो सम्यग्ज्ञान है और सम्यक्चारित्र कैसा है ? कि –

आपरूप में लीन रहे थिर सम्यक्चारित सोई।

पर से भिन्न अपना जो स्वरूप रुचि में और ज्ञान में लिया, उसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निजस्वरूप में स्थिरता-लीनतारूप वीतरागभाव, सो सम्यक्चारित्र है। देखो, भगवान ने निजस्वरूप में लीनता को चारित्र व मोक्षमार्ग कहा है, शुभराग को चारित्र या मोक्षमार्ग नहीं कहा। शुभाशुभ क्रियाएँ कर्म के आस्रव का हेतु हैं; उनसे निवृत्ति और शुद्ध ज्ञानस्वरूप में प्रवृत्ति, वह मोक्षमार्ग का चारित्र है; ऐसे सम्यक्चारित्र में सदा लगने को कहा है। अरे, बहुत जीवों को तो यह भी मालूम नहीं है कि सच्चा चारित्र क्या है ? सच्चे श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप यहाँ संक्षेप में दिखाया है। मोक्षमार्गरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ये तीनों भाव आत्मा में समाते हैं, कोई राग में या शरीर की क्रिया में वे नहीं रहते।

सहज एक ज्ञायकभावरूप शुद्ध आत्मा, जो शुभाशुभ रागादि परभावरूप कभी नहीं हुआ, उसकी अंतरंग अनुभूति में 'यही मैं' – ऐसी जो निर्विकल्प प्रतीति, सो सम्यग्दर्शन है। आत्मा जैसा है, वैसा अच्छी तरह जानकर उसकी श्रद्धा होती है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् अनुभूति – तीनों एक साथ होते हैं। जिस वस्तु का ज्ञान ही न हो, उसकी श्रद्धा कैसे करेगा ? वस्तु के ज्ञान से रहित श्रद्धा सच्ची नहीं होती, वह तो गधे के सींग की श्रद्धा करने जैसी मिथ्या श्रद्धा है। श्रद्धा किसकी ? जो वस्तु सत् हो, उसकी।

सत् ऐसा जो ज्ञायकस्वभाव उसको दृष्टि में व ज्ञान में लिया, तब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ; उसके साथ आनन्द का अनुभव भी है। ऐसे आनन्दस्वरूप आत्मा का ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है, वही शुद्ध ज्ञान की कला है, वही मोक्ष को साधने वाली वीतरागी विद्या है। मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह 'बीज-ज्ञान' है। जो ज्ञान की बीज (दूज) ऊगी, वह बढ़कर पूनम होगी।

बाहर के अप्रयोजनभूत तत्त्व का जानपना हो, उसमें आत्मा का कोई हित नहीं है; उस बाह्यज्ञान के द्वारा मोक्ष नहीं साधा जाता; परलक्ष शास्त्रज्ञान भी मोक्ष को नहीं साध सकता। जो ज्ञान आत्मा के मोक्ष का

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साधन न हो, जो आनन्द का अनुभव न दे, उसको ज्ञान कौन कहे ? शुद्धात्मा की ओर झुका हुआ ज्ञान वही सच्चा ज्ञान है, वही मोक्ष को साधने वाला है और वही आनन्द का दाता है। अंतर में शुद्धात्मा के ऐसे ज्ञानसहित शास्त्रज्ञान आदि हो, उसको व्यवहार से मोक्ष का कारण कहा जाता है। शुद्धात्मा की सम्यक्श्रद्धा सहित नवतत्त्व की प्रतीति को व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में तो शुद्धात्मा की स्वसत्ता का ही अवलंबन है, उसमें पर का अवलंबन किंचित् मात्र नहीं है। ऐसा स्वाधीन आत्माश्रित निश्चय-मोक्षमार्ग है।

पर से भिन्न आत्मा का वास्तविक स्वरूप क्या है, उसके श्रद्धा-ज्ञान के बाद ही उसमें लीनता हो सकती है; निजस्वरूप में लीनता के द्वारा जितनी वीतरागी शुद्धता हुई, इतना सम्यक्चारित्र है। व्रत संबंधी जो शुभ विकल्प है, वह चारित्र नहीं है, वह तो चारित्रदशा के साथ में निमित्तरूप है। वीतरागता ही चारित्र है, राग तो आस्रव का ही कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

अहा, ऐसा स्पष्ट वीतरागी मार्ग ! उसको भूलकर अज्ञानी लोगों ने राग में मोक्षमार्ग मान लिया है। राग में मोक्षमार्ग मानना वह तो काँच के टुकड़े में अति मूल्यवान चैतन्यहीरा मानने जैसी बात है। जो राग से मोक्ष की प्राप्ति होना मानता है, उसने तो राग जितना ही मोक्ष का मूल्य समझा है, वीतरागी आनन्दरूप मोक्ष की उसे पहचान नहीं है। भाई, पूर्ण आनन्दमय मोक्षपद ऐसा नहीं है कि वह तुझे राग में मिल जाये। वीतरागी आनन्दरूप मोक्ष को प्राप्त करने का मूल्य भी कोई अलौकिक है। अखंड चैतन्यस्वभाव को स्वीकार करके उसके श्रद्धा-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव से ही मोक्ष सधता है, इससे जुदा दूसरा कोई साधन नहीं है।

अहा, ज्ञान आनन्द के अनन्त किरणों से चमचमाता हुआ चैतन्य हीरा... वह तो वीतरागता का ही पुंज है, उसमें लीनतारूप वीतरागता ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सच्चा चारित्र है। ऐसे चारित्र को भगवान ने परम धर्म कहा है। उसको छोड़कर जो पर में और रागादि व्यवहार भावों में लीन होकर उसको चारित्रधर्म मान लेता है, वह मिथ्यादृष्टि है, उसको तो व्यवहारचारित्र भी नहीं होता। (लीन भयो व्यवहार में, मुक्ति कहाँ सो होय?) पहले चारित्र ले लो बाद में सम्यग्दर्शन होगा – ऐसा जो मानता है, वह न तो सम्यग्दर्शन को जानता है और न चारित्र को। अरे भाई! श्रद्धा के बिना चारित्र कैसा ? आत्मा को जाने बिना तू लीन किसमें होगा? चारित्र का मूल कारण तो सम्यग्दर्शन और ज्ञान है, उसको अंगीकार न करके तूने शुभरागरूप चारित्र को फिर सम्यग्दर्शन का कारण माना; अत: तेरे अभिप्राय से तो सारा मोक्षमार्ग रागरूप ही हुआ, उसमें कहीं वीतरागता या शुद्धात्मा का आश्रय करने का तो आया ही नहीं। स्वद्रव्य के आश्रयरूप वीतरागता के बिना मोक्षमार्ग कैसा ? शुद्धात्मा के आश्रित ही सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है और वही मोक्षमार्ग है।

समयसार गाथा २७६-२७७ में कहते हैं कि – शुद्धात्मा ही ज्ञान है; क्योंकि वह ज्ञान का आश्रय है, शुद्धात्मा ही दर्शन है; क्योंकि वह दर्शन का आश्रय है और शुद्धात्मा ही चारित्र है; क्योंकि वह चारित्र का आश्रय है – इसप्रकार निश्चय है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र शुद्ध आत्मा के ही आश्रित है; अत: अभेदरूप से इन तीनों को शुद्ध आत्मा ही कह दिया।

शास्त्रों का ज्ञान, नवपदार्थों की श्रद्धा और पंचमहाव्रत के शुभभावरूप चारित्र सो व्यवहार है; क्योंकि उनके होने पर भी यदि शुद्धात्मा का आश्रय न हो तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र नहीं होते।

अत: पराश्रित ऐसा व्यवहार मोक्षमार्ग में निषेध्य है और स्वाश्रित ऐसा निश्चय, वही मोक्षमार्ग में उपादेय है, यह सिद्धान्त है।

पंडितजी ने समयसारादि शास्त्रों के अनुसार इस छहढाला की रचना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की है; संस्कृत-व्याकरण के पढ़े बिना भी समझ में आ सके – ऐसी सरल यह पुस्तक है और छोटे-बड़े सभी के लिए यह उपयोगी है। इसकी दूसरी गाथा में निश्चयरत्नत्रय का कथन किया, अब तीसरी गाथा से लेकर व्यवहार सम्यग्दर्शन का और उसके विषयरूप जीव-अजीवादि तत्त्वों का कथन करेंगे।

देखो, पहले निश्चयमोक्षमार्ग दिखाकर बाद में कहा कि अब व्यवहार-मोक्षमार्ग सुनो। जहाँ निश्चय हो, वहाँ व्यवहार कैसा होता है, इसका ज्ञान कराते हैं। जिसको निश्चय का लक्ष नहीं, उसको व्यवहार कैसा ? व्यवहार को नियत का हेतु कहा, परन्तु वह व्यवहार कौन-सा ? वही कि जो निश्चय साथ में हो। जहाँ निश्चय हो, वहाँ ऐसा व्यवहार हो, उसे ही व्यवहार कहते हैं। निश्चय न हो और अकेला व्यवहार हो, उसको हेतु नहीं कहा जाता। इसप्रकार व्यवहार को हेतु कहा, वह 'धर्मास्तिकायवत्' जानना। जैसे धर्मास्तिकाय गमन में हेतु है, परन्तु किसको? कि जो स्वयं गति करते हैं उनको; वैसे व्यवहार है सो निश्चय का हेतु है, परन्तु किसको ? कि जो स्वाश्रय से निश्चय धर्म प्रगट करते हैं, उनको। किसी ने पंचमहाव्रतादि व्यवहार का तो पालन किया, परन्तु स्वाश्रय से निश्चय-सम्यग्दर्शनादि प्रगट न किया तो उसके लिए वह व्यवहार हेतु भी न हुआ। (जैसे स्वयं गति नहीं करने वाले को धर्मास्तिकाय हेतु भी नहीं होता, वैसे)।

यदि अकेला व्यवहार भी निश्चय का हेतु होता हो तो –

'मुनिव्रत धार अनंतबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।'

पंचमहाव्रतादि व्यवहार अनन्त बार किया तो भी जीव को वह निश्चय श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का हेतु क्यों न हुआ ? उपादान के बिना निमित्त क्या करे ? उपादान-निमित्त के दोहे में पं. भगवतीदासजी भी कहते हैं कि –

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उपादान निज बल जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेदज्ञान-परवान-विधि, विरला बूझे कोय॥

आत्मा परद्रव्यों से सदा भिन्न है; ऐसे अपने आत्मा का अटल विश्वास, सो सम्यग्दर्शन है। अटल अर्थात् जो कभी नहीं मिटता, आत्मा से कभी भिन्न नहीं होता, सिद्धदशा में भी आत्मा के साथ सदैव रहता है, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन तो सदैव विकल्परूप है, पर के आश्रित है, सिद्धदशा में वह नहीं रहता। वह आत्मारूप नहीं, परन्तु विकल्परूप है; अत: वीतरागदशा होने पर वह विकल्प छूट जाता है। निश्चय सम्यग्दर्शन तो आत्मारूप है, वह सिद्धदशा में भी सदा काल रहता है। उसीप्रकार निश्चय सम्यग्ज्ञान को तथा निश्चय सम्यक्चारित्र को भी आत्मारूप जानना; विकल्प से वे भिन्न हैं।

विकल्परूप व्यवहारभावों से आत्मा भिन्न होने पर भी उनके साथ आत्मा को एकमेक मानना, वह अज्ञानी जीवों का मिथ्या प्रतिभास है और उसका फल संसार है। समस्त परभावों से भिन्न आत्मा को देखना-जानना-अनुभव करना, यह मोक्ष का मार्ग है।

भव्यजीवों को ऐसे मोक्षमार्ग का सदा सेवन करना चाहिए। शुभराग के काल में भी धर्मी उस राग को मोक्षमार्ग नहीं समझते; परन्तु उस समय भी स्वभाव के आश्रय से रत्नत्रय की जितनी शुद्धता हुई, उसी को वे मोक्षमार्ग समझते हैं।

इसप्रकार सच्चा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही मोक्षमार्ग है; सच्चा अर्थात् निश्चय; **'जो सत्यारथरूप सो निश्चय'** और उस निश्चय के साथ भूमिका के योग्य व्यवहार होता है, उसका कथन आगे की गाथा में कहते हैं।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

व्यवहार सम्यग्दर्शन का वर्णन

जहाँ अपने शुद्धात्मा की श्रद्धारूप निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ हो, वहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन कैसा होता है ? यह कहते हैं –

(गाथा)

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव बंध रु संवर जानों।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिनको ज्यों का त्यों सरधानों॥
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानों।
तिनको सुन सामान्य-विशेषैं दिढ़ प्रतीति उर आनों॥३॥

जिनवर भगवान ने जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष - ये सात तत्त्व जैसे कहे हैं; उसीप्रकार श्रद्धा करना, सो वह व्यवहार सम्यग्दर्शन है। सामान्य से और विशेष से उन सात तत्त्वों का स्वरूप कहेंगे, उसको सुनकर अंतर में उसकी दृढ प्रतीति करना चाहिए।

दूसरी ढाल में यह दिखाया था कि मिथ्यादृष्टि जीव सात तत्त्व की श्रद्धा के विषय में कैसी भूल करता है और उसको छोड़ने का उपदेश दिया था; अब इस तीसरी ढाल में यह दिखाते हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर सात तत्त्व की कैसी श्रद्धा हुई। सात तत्त्व का यथार्थस्वरूप अरिहंत परमात्मा के बिना अन्य किसी के मत में नहीं होता, अत: सम्यग्दृष्टि जीव अरिहंत परमात्मा के वीतरागमार्ग से भिन्न किसी भी कुमार्ग की श्रद्धा स्वप्न में भी नहीं करता। यह बात तो कुदेव का सेवन छोड़ने के उपदेश में आ गई। यहाँ तो आत्मा की पहिचान करके जो जीव सम्यग्दृष्टि हुआ उसको व्यवहार में भी तत्त्वश्रद्धा कैसी होती है - इसका वर्णन है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नव तत्त्व की श्रद्धा तभी सच्ची हुई जबकि परद्रव्य से भिन्न और रागादि आस्रवों से भिन्न अपने शुद्धात्मा की रुचि करके निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट किया; और तभी भूतार्थ से नवतत्त्वों को जाना। धर्म का प्रारंभ ऐसे सम्यग्दर्शन से होता है। निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो शुद्ध परिणति है, वह संवर-निर्जरा है, और व्यवहार सम्यग्दर्शनादि में शुभराग है, वह आस्रव है। अंतर अनुभव सहित ज्ञायक आत्मा की प्रतीतिरूप जो शुद्ध परिणति हुई वह तो सिद्धदशा में भी रहती है; चतुर्थ गुणस्थान से उसका प्रारंभ हो जाता है। ऐसे सम्यग्दर्शन के साथ में नवतत्त्व की विपरीतता नहीं रह सकती। वह पुण्य-आस्रव को संवर-निर्जरा या मोक्ष का कारण नहीं मानता; वह अजीवतत्त्व के भाव को जीव का नहीं मानता। सभी तत्त्वों को, जैसे है वैसे ही जानता है।

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष - ये सात तत्त्व सर्वज्ञ भगवान ने देखे हैं और जिनवाणी में उनका उपदेश है।

जीव तत्त्व

जगत् में अनन्त जीव हैं। स्वभाव से सभी जीव भिन्न-भिन्न एक समान हैं। परन्तु अवस्था की अपेक्षा से जीवों के तीन प्रकार होते हैं - बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा। बाहर में शरीर को ही आत्मा मानने वाला बहिरात्मा हैं, ऐसे जीव अनन्त हैं। अंतर में देह से भिन्न आत्मा को देखने वाला अंतरात्मा है, उसके अनेक प्रकार हैं, ऐसे अंतरात्मा जीव असंख्यात हैं। परम सर्वज्ञपद जिसने प्राप्त कर लिया है वे परमात्मा हैं; उनके दो प्रकार हैं – अरिहन्त व सिद्ध; सिद्ध परमात्मा अनन्त हैं, अरिहन्त परमात्मा लाखों हैं। ऐसे भेद वाला जीव तत्त्व व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय है। निश्चय सम्यग्दर्शन में अपने शुद्ध जीव की निर्विकल्प प्रतीति है, उसमें कोई भेद नहीं है। भेद को जानते समय भी समकिती जीव अकेले भेद में ही नहीं रुकते, अभेद शुद्धात्मा को लक्ष में रखकर भेद को जानते हैं। केवलज्ञानादि

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर्याय होने का सामर्थ्य शुद्धात्मा में भरा है, अतः शुद्धात्मा की प्रतीति में वे सब समा जाते हैं। शुद्धात्मा की प्रतीति में परमात्मा की प्रतीति भी आ गई। जब आत्मा का शुद्ध स्वभाव अनुभव में लिया तब अरिहन्त भगवान और सिद्ध भगवान को भी पहचान लिया।

अजीव तत्त्व

अजीव के मुख्य पाँच प्रकार हैं - पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल। उनमें पुद्गलपरमाणु अनंत हैं। यह शरीरादि जितने भी पदार्थ इन्द्रियगम्य हैं वे सब अजीव-पुद्गल की रचना हैं, जीव की रचना वे नहीं हैं। अन्य चार अजीव तत्त्व सूक्ष्म-अरूपी हैं। जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व को भिन्न भिन्न जानना चाहिए; अजीव के किसी प्रकार को जीव में न मिलाना, और जीव के किसी प्रकार को अजीव में न मिलाना। ज्ञान है, सो जीव का गुण है, वह इन्द्रिय का गुण नहीं है; जड़ इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता। इतना तो व्यवहार श्रद्धा में आ जाता है। इसमें भी जिसको विपरीतता हो, उसे तो व्यवहार श्रद्धा भी सच्ची नहीं होती। जीव-अजीव आदि तत्त्व कैसे हैं, वैसे जाने बिना वीतराग-विज्ञान नहीं होता और मोक्षमार्ग नहीं मिलता। अरे, अकेले व्यवहार तत्त्व के प्रकारों को जानने से भी मोक्षमार्ग नहीं मिलता। शुद्ध नय से अपने अन्तर में अखंड चेतनारूप शुद्ध आत्मा को स्व-विषय बनाये बिना पर-विषयों का सच्चा ज्ञान नहीं होता अर्थात् सच्चा व्यवहार नहीं होता।

स्व के ज्ञान से रहित पर के ज्ञान को व्यवहार भी नहीं कहते। मोक्षमार्ग में निश्चय सहित है, व्यवहार की यह बात है; अतः स्व का सच्चा ज्ञान साथ में रखकर पर के ज्ञान की बात है। स्व को जाने बिना अकेले पर को जानना चाहे तो पर में एकत्वबुद्धिरूप मिथ्यात्व हो जायेगा, क्योंकि पर से भिन्न जो अपना अस्तित्व है, वह तो उसके ज्ञान में या प्रतीति में आया ही नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आस्रव तथा बंध तत्त्व

मिथ्यात्वादि भावों से कर्म का आस्रव तथा बंध होता है; पाप और पुण्य का भी आस्रव तथा बंध में समावेश होता है। पुण्य-पाप आदि आस्रव हैं, उनको आस्रवरूप जानना, परन्तु उनको संवर में न मिलाना, यह आस्रव तत्त्व की श्रद्धा है। आस्रव का कोई भी प्रकार जीव के लिए हितरूप नहीं है या मोक्ष का कारण नहीं है – ऐसा जानना चाहिए। जो किसी प्रकार के भी आस्रव को हितरूप माने, उस जीव को आस्रव तत्त्व की सच्ची श्रद्धा नहीं है। शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के बन्धन छोड़ने योग्य हैं, उनमें से एक भी भला नहीं है। शुभभाव भी जीव को बन्ध का ही साधन है, वह मोक्ष का साधन नहीं है। जो नवतत्त्व की सच्ची पहिचान करे, उसे पुण्य में हितबुद्धि नहीं रहती; पुण्य को भी वह त्याज्य समझता है, चैतन्य से भिन्न समझता है।

संवर तत्त्व

कर्मों का संवर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव से होता है; आत्मा की शुद्धता होने पर अशुद्धता तथा कर्म का आना बंद हो जाता है। किस भूमिका में कितना संवर होता है और वहाँ कैसा निमित्त होता है तथा कैसा निमित्त छूट जाता है, यह भी पहचानना चाहिए, उसमें विपरीतता नहीं होनी चाहिए। जैसे कि मुनिदशा में वीतरागभाव से इतना अधिक संवर हो गया कि वहाँ वस्त्र के परिग्रह की वृत्ति जितना आस्रवभाव नहीं रहता और निमित्त रूप से वस्त्र ग्रहणादि भी नहीं होता। जो इससे विपरीत माने, उसे मुनि के संवर की पहचान नहीं है, संवर दशावाले मुनि को उसने नहीं पहचाना। उसीप्रकार जहाँ सम्यग्दर्शन हो, वहाँ मांसाहारादि जैसी पापप्रवृत्ति होती ही नहीं। अतः ऐसा पापास्रव भी वहाँ नहीं होता; ऐसी संवरदशा होती है।

निर्जरा तत्त्व

धर्मी का उपयोग जैसे-जैसे स्वरूप में एकाग्र होता जाता है, वैसे-वैसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

शुद्धता बढ़ती जाती है और उतनी अशुद्धता तथा कर्म खिर जाते हैं, उसका नाम निर्जरा है। जीव की शुद्धता से निर्जरा होती है, देह की क्रिया से निर्जरा नहीं होती। शरीर का कृश होना या उसमें कष्ट लगना - यह निर्जरा का कारण नहीं है, अतएव वह धर्म नहीं है। चैतन्य की विशुद्धतारूप जो तप उससे सच्ची निर्जरा होती है और वह धर्म है। कर्म की स्थिति पक कर जो सविपाक निर्जरा होती है, वह तो सभी जीवों के होती है, उसके साथ धर्म का संबंध नहीं है और वह निर्जरा मोक्ष का कारण नहीं है।

मोक्ष तत्त्व

जहाँ संपूर्ण निराकुल सुख व ज्ञान है और जिसमें कर्म का, राग का या दु:ख का सर्वथा अभाव है – ऐसी मोक्षदशा है। मोक्ष क्या है और उसका उपाय क्या है – यह पहचानना चाहिए। राग के सर्वथा अभावरूप जो मोक्ष उसका उपाय भी रागरहित ही है। मोक्ष के उपायरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों ही रागरहित हैं। राग मोक्ष का उपाय नहीं है। राग को जो मोक्ष का साधन मानता है, उसको मोक्षतत्त्व की पहचान नहीं है।

मोक्ष का कारण और बन्ध का कारण भिन्न-भिन्न है, उनको भिन्नरूप जानना चाहिए। जो बन्ध का कारण हो, वह मोक्ष का भी कारण नहीं होता और जो मोक्ष का कारण हो, वह बन्ध का भी कारण नहीं होता। ऐसे सात तत्त्वों की पहचान से तो सबका स्पष्टीकरण हो जाता है। सर्वज्ञ भगवान के श्रीमुख से सात तत्त्व का जो स्वरूप निकला, उसको जानने से सारे विश्व के तत्त्वों का ज्ञान हो जाता है। जीव क्या है ? अजीव क्या है? कैसे भाव से जीव को सुख होगा ? कैसे भाव से जीव को दु:ख होता है ? उनके ज्ञान के बिना जीव को धर्म या सुख का उपाय नहीं हो सकता। जो आत्मा मोक्षदशारूप हुए हैं, वे देव हैं, जो आत्मा संवर-निर्जरारूप हुए हैं, वे गुरु हैं – ऐसे सच्चे देव-गुरु की पहचान भी नवतत्त्व के ज्ञान में आ जाती है और नवतत्त्वों के विकल्पों से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पार होकर ज्ञान अनुभूति सहित शुद्ध आत्मा की प्रतीति करना, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। अहो, यह तो वीतराग-जैनधर्म की प्रथम भूमिका की बात है; धर्म का यह मूल है।

वीतराग जैनधर्म के सिवाय अन्य मत में तो सच्चे तत्त्व होते ही नहीं, क्योंकि उनमें सर्वज्ञता ही नहीं है। जिनमत में सर्वज्ञ भगवान ने अतीन्द्रियज्ञान से जानकर नवतत्त्व जिसप्रकार कहे हैं; उसीप्रकार अच्छी तरह पहचानकर श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन व्यवहार से है, उसमें भेद और विकल्प हैं; अत: उसे व्यवहार कहा; और उसी समय साथ में अपने शुद्ध आत्मा की जो रागरहित निर्विकल्प प्रतीति है, सो सम्यग्दर्शन निश्चय से है; यह निश्चय सम्यग्दर्शन मोक्ष का सच्चा कारण है।

देखो भाई ! अपने आत्मा के सच्चे स्वरूप की पहचान करने के लिए, सर्वज्ञकथित तत्त्वों का श्रवण करके अंतर में उसका विचार-विवेक और अनुभव करके दृढ़ निर्णय करना चाहिए; तत्त्व में कहीं भी थोड़ी-सी भी विपरीतता न रहे – इस तरह सर्वप्रकार से स्पष्ट निर्णय करना चाहिए। सर्वज्ञ वीतरागदेव अरिहन्त परमात्मा ने जो धर्म कहा और जीव का जैसा स्वरूप कहा, उसकी पहचान के बिना अन्य प्रकार से धर्म मान लेने से तो जीव को कुछ धर्म नहीं होगा; वह तो शुभ-अशुभ में घूमकर वहीं का वहीं रहेगा; कहाँ? कि संसार में ही।

सम्यग्दर्शन के बिना राग में या देह की क्रिया में जो सामायिकादि धर्म मान लेते हैं, उनको तो जीव-अजीव की भिन्नता का भी भान नहीं है। राग से भिन्न आत्मा का भान ही जिसको नहीं है, उसको राग के अभावरूप सामायिक कैसी होगी ?

प्रश्न – शक्कर तो जब भी खावे, तब मीठी ही लगे, अँधेरे में भी वह मीठी लगे; वैसे ही सामायिक से तो धर्म ही होता है, सामायिक करने वाला अज्ञानी भी हो ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर – अच्छी बात है भाई, शक्कर मीठी ही लगे, परन्तु होनी तो शक्कर चाहिए न ! शक्कर के बदले में पत्थर के टुकड़े को शक्कर मानकर खायेगा तो क्या होगा ? वैसे सामायिक से धर्म होता है, यह बात सच्ची है; परन्तु होनी तो वह सामायिक चाहिए न ? सामायिक के बदले में यदि राग-द्वेष-अज्ञानभावों को सामायिक मान लेगा तो उसको धर्म तो कुछ नहीं होगा, परन्तु अज्ञान की पुष्टि होगी। सामायिक के नाम पर राग का सेवन करने से तो कुछ धर्म नहीं होता।

राग रहित समभावी-ज्ञानस्वरूपी आत्मा कैसा है, जिसे उसकी पहचान हो और ऐसे आत्मा के ध्यान में एकाग्रता के उद्यम से राग-द्वेष के विषमभाव उत्पन्न ही न हों और वीतरागी समभाव रहे, उसी का नाम है सामयिक धर्म और वही मोक्ष का कारण है। ऐसी सामायिक को जो पहचाने भी नहीं, राग से भिन्न आत्मा को जाने भी नहीं – ऐसे अज्ञानी को कभी सामायिक नहीं होती।

जैसे कोई खाता हो फिटकरी और माने कि मैं शक्कर खा रहा हूँ तो वह मूर्ख ही गिना जायेगा, वैसा अज्ञानी करता है शुभराग और मानता है कि मैं सामायिक धर्म कर रहा हूँ – ऐसे अज्ञान के कारण जीव संसार की चार गतियों में दुःख भोग रहा है, उनमें से छुटकारा पाने की यह बात है। सम्यग्दर्शनपूर्वक वीतरागस्वरूप में स्थिरता को भगवान ने सामायिक कहा है और वही मोक्षमार्ग है। दो घड़ी की सामायिक मोक्ष देती है – ऐसी उसकी महिमा है, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना सामायिक या मोक्षमार्ग कभी होता ही नहीं।

प्रश्न – जीव अनन्त बार नववें ग्रैवेयेक तक गया, तब उसने नवतत्त्व की श्रद्धा तो की थी, फिर भी वह संसार में क्यों रुला ?

उत्तर – क्योंकि उसने अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा की अनुभूति या श्रद्धा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

न की, अकेले नवतत्त्व के भेद के विकल्प में ही वह रुक गया; अत: निश्चय के लक्ष से रहित अकेले व्यवहार के पक्ष से नवतत्त्व को शास्त्रानुसार माना और उसके विकल्प को ही सम्यग्दर्शन समझकर उसमें रुक गया, इसकारण वह संसार में ही रुला। यहाँ उसकी बात नहीं है; यहाँ तो मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन सहित तत्त्वश्रद्धा कैसी होती है, उसकी बात है; निश्चयसहित व्यवहार की बात है। अज्ञानी अकेली व्यवहार श्रद्धा तो करता है, परन्तु निश्चय सहित का व्यवहार उसको नहीं होता।

यद्यपि जो व्यवहार तत्त्वश्रद्धा है, वह स्वयं सम्यग्दर्शन नहीं है, परन्तु उसके साथ में शुद्ध आत्मा की जो निश्चय श्रद्धा है, वह सच्चा सम्यग्दर्शन है और साथ के व्यवहार में उसका उपचार आता है। यदि सच्ची वस्तु हो, तब दूसरे में उसका उपचार हो सकता है; परन्तु सत्य के बिना उपचार किसका ? उसके तो उपचार ही सत्य हो गया। जो व्यवहारसम्यग्दर्शन है, वह श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है, वह तो विकल्प सहित ज्ञान की दशा है। जो निश्चयसम्यग्दर्शन है, वह श्रद्धागुण की सम्यक्पर्याय है, वह विकल्प से रहित है। श्रद्धा में विकल्प नहीं होता, वह तो निर्विकल्प ही होती है।

मोक्षशास्त्र के पहले ही सूत्र में मोक्षमार्गरूप से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कथन किया है, ये तीनों निश्चय हैं। जिस तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा, उसके साथ में भूतार्थदृष्टिरूप अपने शुद्धात्मा की श्रद्धा भी है, अत: वह निश्चयसम्यग्दर्शन है और वह मोक्षमार्ग का अवयव है। व्यवहार तत्त्व के भेदों का लक्ष या विकल्प वह मोक्षमार्ग नहीं है; परन्तु निश्चय के साथ वाले व्यवहार सम्यग्दर्शन में भेदरूप तत्त्वों का जानपना होता है, उसका यहाँ वर्णन है। उनमें से जीव तत्त्व और उसके भेदों का वर्णन आगे की तीन गाथाओं में करते हैं।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

जीवतत्त्व और उसके भेद

व्यवहार सम्यग्दर्शन में जीवादि सात तत्त्वों का श्रद्धान करने को कहा; अब उन तत्त्वों का वर्णन करते हैं। उनमें प्रथम जीव तत्त्व का वर्णन तीन श्लोकों के द्वारा करते हैं –

(श्लोक ४-५-६)

बहिरातम, अंतरआतम परमातम, जीव त्रिधा हैं।
देह-जीव को एक गिनें बहिरातम तत्त्वमुधा है।।
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के अन्तर-आतम ज्ञानी।
द्विविध संगबिन शुध उपयोगी मुनि उत्तम निज ध्यानी।।४।।
मध्यम अंतर-आतम हैं जे देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टि, तीनों शिवमगचारी।।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिनमें घाति निवारी।
श्री अरिहंत सकल परमातम, लोकालोक निहारी।।५।।
ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनंता।।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजै।।६।।

निश्चय सम्यग्दर्शन में तो, ऐसे शुद्ध जीव की अभेद श्रद्धा है कि जो एक अखंड ज्ञायकभावरूप है और जो शुभाशुभभावरूप भी नहीं होता; उसमें भेद नहीं पड़ते। यहाँ व्यवहार सम्यग्दर्शन के विषयरूप सात तत्त्वों का कथन होने से इसमें जीव की अवस्था के प्रकार भी दिखाये हैं। निश्चय से सभी जीव एक-से ज्ञानस्वभावी हैं; अवस्था की अपेक्षा से जीवों के तीन प्रकार हैं – १. बहिरात्मा; २. अंतरात्मा, ३. परमात्मा।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ये तीनों जीव की पर्यायें हैं और द्रव्यस्वभाव से सभी जीव परमात्म स्वरूप परिपूर्ण हैं; ऐसे स्वभाव का भान करके उसमें एकाग्र होने से पर्याय में से बहिरात्मपना छूटकर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा होता है। परमात्मा होने के बाद वह जीव फिर कभी बहिरात्मा नहीं होता, परन्तु बहिरात्मा जीव सम्यक्त्वादि के द्वारा परमात्मा हो सकता है। अहा, प्रत्येक जीव में परमात्मा होने की स्वाधीन ताकत है – यह बात जैनशासन ही दिखाता है।

विश्व में भिन्न-भिन्न अनंत जीव हैं; प्रत्येक जीव का लक्षण ज्ञानचेतना है। अवस्था में वे जीव तीन प्रकाररूप से परिणमन करते हैं, उनका स्वरूप यहाँ दिखाया जा रहा है –

बहिरात्मा का स्वरूप

जो अपने अंतरंग चेतनस्वरूप को भूलकर बाह्य में शरीर और जीव को एक मान रहा है, वह मिथ्यादृष्टि बहिरात्मा है; वह तत्त्वों में मूढ़ है। ऐसे बहिरात्म जीव अनन्त हैं; जगत् के जीवों में से बहुत भाग मिथ्यादृष्टि-बहिरात्मा हैं; परन्तु यह बहिरात्मपना जीव का सच्चा स्वरूप नहीं है, अत: उसे छोड़कर जीव स्वयं अंतरात्मा तथा परमात्मा हो सकता है।

अंतरात्मा का स्वरूप

अंतर में देह से भिन्न आत्मस्वरूप को जो जानता है, वह अंतरात्मा है। नरक में भी जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं, वे अंतरात्मा हैं। मेंढक, सिंह, बन्दर, हाथी इत्यादि तिर्यंच में भी जो जीव देह से भिन्न आत्मा का अंतर में अनुभव करते हैं, वे अंतरात्मा हैं। ऐसे अंतरात्मा असंख्यात हैं। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के जीव अंतरात्मा हैं, उनमें जो द्विविध परिग्रह से रहित हैं, अंतर में मिथ्यात्वादि मोह से रहित हैं, बाहर में वस्त्रादि से रहित हैं और शुद्धोपयोग से निजस्वरूप के ध्यान में एकाग्र हैं – ऐसे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुनिवर तो उत्तम अंतरात्मा हैं अर्थात् सातवें गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक के जीव उत्तम अंतरात्मा हैं।

अंतर में आत्मा के अनुभव सहित जो देशव्रती श्रावक हैं या महाव्रती-मुनि हैं, वे मध्यम अंतरात्मा हैं अर्थात् पाँचवें व छठवें गुणस्थान वाले जीव मध्यम-अंतरात्मा हैं और जो अविरत सम्यग्दृष्टि हैं, जिनके व्रतादिक न होने पर भी अंतर में देह से भिन्न शुद्ध आत्मा के अनुभवरूप सम्यग्दर्शन हुआ है, वे जीव जघन्य अंतरात्मा हैं। इसप्रकार उत्तम, मध्यम और जघन्य – ऐसे तीन प्रकार के अंतरात्मा जानो। चौथे से बारहवें गुणस्थान तक के सभी अन्तरात्मा जीव आत्मा के जानने वाले हैं और मोक्षमार्ग में चलनेवाले हैं। बारह अंग के जाननेवाले गणधर भगवान और छोटा-सा एक सम्यग्दृष्टि मेंढक – ये दोनों अन्तरात्मा हैं, दोनों 'शिवमगचारी' हैं – मोक्षमार्गी हैं। देखो, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ को भी मोक्षमार्गी कहा है। समन्तभद्र महाराज ने भी कहा है कि – **'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो...।'** (रत्नकरण्ड श्रावकाचार)

परमात्मा का स्वरूप

जिन्होंने शुद्धात्मा के ध्यानरूप शुद्धोपयोग के द्वारा घातिकर्मों को दूर करके, केवलज्ञानरूप परमपद प्रगट किया है, वे परमात्मा हैं, वे लोकालोक को प्रत्यक्ष जानने वाले हैं। ऐसे परमात्मा के दो प्रकार – अरिहंत परमात्मा और सिद्ध परमात्मा हैं। अरिहंत परमात्मा शरीरसहित होने से 'सकल' परमात्मा कहलाते हैं। ऐसे लाखों अरिहंत भगवंत विदेहक्षेत्र में इस समय विद्यमान हैं और सदैव होते रहते हैं। सिद्ध परमात्मा को शरीर नहीं होता, अतः वे निकलपरमात्मा कहलाते हैं, वे ज्ञानशरीरी हैं, अष्टकर्मों से रहित हैं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में विराजमान परमात्मा अरिहंतदेव हैं और गुणस्थानों से पार देहातीत सिद्ध परमात्मा हैं। चारों गति से मुक्तजीव ऐसे सिद्धपरमात्मा अनंत हैं और अरिहंत और सिद्ध परमात्मा आत्मा के अनंतसुख का अनुभव करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे तीन प्रकार में से बहिरात्मरूप को हेय जानकर छोड़ना; अंतर में देह से भिन्न शुद्ध परम स्वरूप को पहचानकर अंतरात्मा होना और निरंतर उसी के ध्यान से परमात्मा होकर नित्य अनंत आनन्द का अनुभव करना। प्रत्येक जीव में ऐसे परमात्मा होने की ताकत है।

कोई कहता है – हम तो छोटे से कस्बे में रहने वाले, व्यापार-धंधा या नौकरी में जीवन बिताने वाले हैं तो ऐसे परमात्मा होने की इतनी बड़ी बात हमारी समझ में कैसे आवे ?

तो कहते हैं कि – सुन भाई ! तू कस्बे में नहीं रहा, तू तो तेरे अनन्तगुण के बड़े वैभव में रहा है। दु:ख से छूटने के लिए आत्मा की दरकार करके जो समझना चाहे, उन सभी को समझ में आ जाये – ऐसी यह बात है। तेरे स्वरूप में जो है, वही तेरे को दिखता है, इससे अधिक कुछ नहीं कहते। भाई ! जीवन में यह चीज लक्ष में लेने योग्य है, इसके बिना दूसरी सब बातें थोथी हैं – निष्फल हैं, उनमें आत्मा का कुछ भी हित नहीं है। धन कमाने के लिए दिन-रात परिश्रम करके जीवन खो देते हो, परन्तु उस धन में या महल-मोटर में कहीं सुख की एक बूँद भी नहीं है। अरे ! स्वर्ग में भी सुख नहीं है, तब मनुष्य लोक के वैभव की क्या बात ? सुख तो आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ही है, उसके अतिरिक्त किसी भी बाह्य पदार्थ के लक्ष से तो आकुलता और दु:ख ही है। अत: आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र करना चाहिए।

भाई ! विचार तो कर कि रुपया, महल, मोटर, रेडियो आदि पदार्थ क्या जीव तत्त्व हैं ? कि अजीव हैं ? वे तो अजीव हैं। तो क्या अजीव में कभी सुख होता है ? न; अजीव में सुख कभी नहीं होता, तब वे तुझे सुख कहाँ से देंगे? अत: अजीव में पर में सुख की कल्पना को छोड़।

अब उस अजीव के सन्मुख झुका हुआ जो तेरा बाह्य भाव (चाहे वह अशुभ हो या शुभ) उसमें भी आकुलता और दु:ख ही है, उसमें चैतन्य के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द का वेदन कुछ भी नहीं है; अत: उस परलक्षी शुभाशुभभाव में भी सुख की कल्पना को छोड़ दे। सुख से भरपूर जो तेरा आत्मस्वभाव है, उसमें उपयोग लगाते ही स्वलक्ष में परम आनन्द की अनुभूति होती है।

देखो, सात तत्त्व के जानने में यह बात आ जाती है –

ज्ञान और आनन्द जिसमें है, वह जीव तत्त्व है;

उसकी सम्मुखता से आनन्द का जो अनुभव हुआ, उसमें संवर-निर्जरा-मोक्ष आ गये।

ज्ञान और सुख जिसमें नहीं है, वह अजीव तत्त्व है;

उसकी सम्मुखता से आकुलता का जो अनुभव होता है, वह पुण्य-पाप-आस्रव-बंध में आता है।

इसप्रकार तत्त्व का पृथक्करण करके समझे तो मोक्षमार्ग का सच्चा निर्णय अवश्य होता है। गागर में सागर की तरह इस छहढाला जैसी छोटी पुस्तक में अनेक शास्त्रों का सार भर दिया है। इसमें पंडितजी ने पूर्वाचार्यों के उपदेश के अनुसार कथन किया है।

सात तत्त्व में जीव तत्त्व कैसा है – उसका कथन चल रहा है। विदेह क्षेत्र में देह सहित अरिहंत भगवंत सदैव विराजते हैं। यहाँ भरतक्षेत्र में भी ढाई हजार वर्ष पहले अरिहंत भगवान महावीर साक्षात् विचरते थे; उन भगवंतों ने जीवादि तत्त्वों का जैसा स्वरूप कहा, वैसा ज्ञानी सन्तों ने झेलकर स्वयं अनुभव किया और शास्त्र में कहा; वही यहाँ कहा जाता है।

संस्कृत भाषा में सिद्धान्तसूत्रों की सबसे प्रथम रचना करने वाले श्री उमास्वामी आचार्य वीतरागता में झूलने वाले परम दिगम्बर सन्त थे और कुन्दकुन्दाचार्य के वे शिष्य थे, उनके द्वारा रचित तत्त्वार्थसूत्र जैनसिद्धान्त की गीता जैसा है, उसके ऊपर 'सर्वार्थसिद्धि' 'राजवार्तिक' 'श्लोकवार्तिक' जैसी बड़ी-बड़ी टीकायें श्री पूज्यपादस्वामी, अकलंकस्वामी और विद्यानन्दिस्वामी जैसे बड़े-बड़े आचार्यों ने की हैं; उस तत्त्वार्थसूत्र में मोक्षमार्ग, सात तत्त्व आदि अनेक विषयों का वर्णन किया है। पहले ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सूत्र में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को मोक्षमार्ग कहा, उसमें निश्चय सम्यग्दर्शनादि की बात है। यद्यपि उसमें सात तत्त्व की बात की है, परन्तु उन सात तत्त्वों को जानकर, उनमें से शुद्धनय के विषयरूप शुद्धात्मा को लक्ष में लेकर, उसके सन्मुख होकर निर्विकल्प प्रतीति करे – ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन सहित की यह बात है।

जैसे समयसार की १३वीं गाथा में आचार्यदेव ने कहा कि 'जीवादि नवतत्त्वों को भूतार्थ से जानना, सो सम्यग्दर्शन है।' वहाँ भूतार्थदृष्टि करते ही उसमें शुद्ध आत्मा की प्रतीति आ गई और नवतत्त्व के विकल्प छूट गये। शुद्ध दृष्टि में नव भेद नहीं हैं, उसमें तो अकेला शुद्ध आत्मभगवान ही आनन्द सहित प्रकाशमान है और ऐसे आत्मा की दृष्टिपूर्वक नवतत्त्व की प्रतीति का यह वर्णन है। कोई जीव मात्र नवतत्त्व का रटन किया करे और उनके विकल्प का ही अनुभव किया करे; परन्तु जब तक विकल्पों से पार होकर शुद्ध आत्मा को दृष्टि में न ले, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होता, वह तो बहिरात्मा ही बना रहता है। यहाँ तो जो जीव अन्तरात्मा हुआ है, वह विकल्पों से भिन्न रहकर नवतत्त्व को जैसे हैं, वैसे जानता है, उसकी बात है, उसे व्यवहार सम्यग्दर्शन कहा है; अन्तर में शुद्धात्मा में ही स्वामित्वबुद्धि रहती है, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। जहाँ जो विवक्षा हो, वह समझना चाहिए।

निश्चय श्रद्धा के विषय में नव भेद नहीं आते, उसमें अकेले निजरूप की श्रद्धा है। जैसे राजा के साथ में अन्य लोगों को देखकर उन्हें भी 'यह राजा आया' ऐसा उपचार से कहा जाता है, सच्चा राजा तो वे नहीं, दूसरा है। वैसे शुद्ध आत्मा की दृष्टिरूप निश्चय सम्यक्त्व वह तो मोक्षमार्ग में राजा के समान है, परन्तु उसके साथ में नवतत्त्व की प्रतीति को देखकर उसको भी 'सम्यग्दर्शन है' – ऐसा उपचार से कहा जाता है, सच्चा सम्यग्दर्शन तो वह नहीं, दूसरा है; परन्तु उसके साथ में नवतत्त्व के जो विकल्प होते हैं, वे जैसे व्यवहार में दिखाये, वैसे ही होते हैं; उनसे विरुद्ध

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होते। व्यवहार में भी जो तत्त्व सर्वज्ञदेव ने दिखाये हैं, इनसे विपरीत मान्यता धर्मी को नहीं होती। अहो, यह तो निश्चय-व्यवहार की संधि सहित अलौकिक जिनमार्ग है – वीतराग भगवंत जिस मार्ग पर चले, उसी मार्ग में चलने की यह बात है। वीतरागी दृष्टि से ही उसका प्रारंभ होता है, राग से उसका प्रारंभ नहीं होता। जिसने अपने श्रद्धा ज्ञान में पूर्ण ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को झेला है, अनुभूति के द्वारा अन्तर में अपने परमात्मस्वरूप का अनुभव किया है, वह अन्तरात्मा मोक्षमार्ग में चलने वाला है, वह अपनी पर्याय को भी जानता है। पहले अज्ञानदशा में बहिरात्मपना था, तब मैं एकान्त दुखी था; उस दशा को छोड़कर अब अन्तरात्मपना हुआ है और आत्मिकसुख का अंश अनुभव में आया है; अब शुद्धात्मा के ही ध्यान से पूर्ण सुखस्वरूप परमात्मदशा अल्पकाल में होगी।

इसप्रकार बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा – ऐसे तीन भेद से जीव को पहचानना, सो व्यवहारश्रद्धा है। यहाँ संक्षेप से प्रयोजनरूप ये तीन प्रकार कहे, वैसे तो चौदह गुणस्थान के अनेक प्रकार हैं, एकेन्द्रियादि मार्गणा की अपेक्षा अनेक प्रकार हैं, ऐसे अनेक प्रकार के पर्यायभेद से जीव को पहचानने का व्यवहार है, परमार्थ में तो अपने द्रव्य-गुण-पर्याय से अभेद एकाकार शुद्ध जीव है, उसमें कोई भेद-विकल्प नहीं होते।

यहाँ जीव के अंतरात्मा आदि मुख्य तीन भेद कहे, असंख्य प्रकार हैं, वे कैसे कहे जायें ? और इन तीन भेद का स्वरूप अच्छी तरह पहचानने से अन्तर में हेय-उपादेय का विवेक होकर भेदज्ञान प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, इन तीन भेद को जानने वाला जीव बहिरात्मपना छोड़कर अंतरात्मा होकर परमात्मा को ध्याता है।

देह से भिन्न चेतनारूप अपना अस्तित्व है, उसे न देखकर, 'देह ही मैं हूँ' ऐसा मानकर अथवा देहाश्रित रागादिभावरूप ही अपने को समझकर उन बाह्य भावों में ही जो वर्तता है, वह बहिरात्मा है, आप कौन ? और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पर कौन ? उसका भी जिसको विवेक नहीं, वह तत्त्व में विमूढ़ है। रागादि परभाव कहीं अंतरस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं होते, अत: वे जीव के अंतरंग भाव नहीं हैं, वे बाह्यवस्तु के आश्रय से होने वाले बहिर्भाव हैं। जीव का अंतरस्वभाव तो ज्ञान-आनंदमय शुद्ध है, उसके आश्रय से होनेवाले सम्यग्दर्शनादि भाव वे अंतरंग भाव हैं; उनका अनुभव करने वाला अन्तरात्मा हैं और जो बहिर्भावों का ही अनुभव करता है वह बहिरात्मा है। पर में – बाह्य में आत्मत्व मानने वाला बहिरात्मा, अन्तर में पर से भिन्न आत्मा को देखने वाला अंतरात्मा; परम-उत्कृष्ट, चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया, वह परमात्मा है।

जो बहिरात्मा है, वह भी ज्ञानस्वरूपी आत्मा ही है, परन्तु अज्ञान से वह बहिरात्मभावरूप हुआ है, सम्यग्दृष्टि ने आत्मा को जैसा है, वैसा जानकर बहिरात्मभाव छोड़ा है और परमात्मभाव को वह साध रहा है।

देहादि की क्रिया को आत्मा की मानने वाला बहिरात्मा है, जिसको देह से भिन्न आत्मा का भान नहीं है, ऐसे बहिरात्मा जीवों को सम्यग्दर्शन नहीं होता एवं श्रावकधर्म या साधुधर्म भी उनको नहीं होता। शरीर की दशाओं से आत्मा को धर्म-अधर्म होने का जो मानते हैं, उनको स्पष्ट बहिरात्मा समझना। देखो, दूसरे जीवों की भी ऐसी पहचान हो सकती है। परमात्मा कैसा होता है ? अंतरात्मा कैसा होता है ? और बहिरात्मा कैसा होता है ? उनका स्वरूप पहचाना जा सकता है। उनको पहचानकर क्या करना ? कि बहिरात्मपना छोड़ना; अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप आत्मा को ध्याना।

शरीर तो जड़ अजीव है, जीव का कोई धर्म उसमें घुस नहीं गया। जीव की पर्याय अजीव में नहीं जाती। बहिरात्मदशा भी जीव की पर्याय में है, वह शरीर में नहीं है। अज्ञान से वह मानता है कि मैं शरीर में हूँ, परन्तु वह मान्यता भी जीव ने अपनी पर्याय में की है। अरे, शरीर से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा की भिन्नता को जो न जाने, उसको तो शास्त्रकारों ने तत्त्वमूढ़ कहा है; चाहे वह बी.ए., एम.ए. इत्यादि बहुत लौकिक पढ़ाई पढ़ा हो तो भी जीव-अजीव के भेदज्ञानरूप आत्मविद्या में तो वह मूढ़ है; उसकी लौकिक पढ़ाई आत्महित के लिए कुछ भी काम की नहीं है। आत्महित के लिए तो जीव-अजीव का भेदज्ञान कराने वाली यह वीतराग विद्या ही पढ़ने योग्य है।

अब, प्रश्न होगा कि वीतराग विद्या को जानने वाला अंतरात्मा कैसा है ? तो समयसार में कहते हैं कि वे ज्ञानी अंतरात्मा अपनी ज्ञानचेतना के अतिरिक्त अन्य किसी भाव को किंचित् भी अपना नहीं मानते, सदैव अपने को ज्ञानचेतनारूप ही देखते हैं – अनुभव करते हैं। जीव स्वयं भेदज्ञान करके जब अंतरात्मा हो, तभी वह ऐसे अंतरात्मा की सच्ची पहचान कर सकता है। अपने में आत्मा का स्वसंवेदन किये बिना अकेले अनुमान के द्वारा दूसरे ज्ञानी धर्मात्मा को भी नहीं पहचाना जाता। अत: आत्मा-अनात्मा का भेदज्ञान करके स्वयं अंतरात्मा होने की यह बात है।

आत्मा के स्वरूप को जो यथार्थ जानता है, वही अंतरात्मा है। आत्मा का स्वरूप राग से व देह से भिन्न है। राग का और देह का नाश होने पर भी आत्मा तो अपने चैतन्यस्वभाव से सदैव जीवंत है, उसके किसी भी स्वभाव-धर्म का कभी नाश नहीं होता। ऐसे अपने शुद्ध आत्मा का अनुभव करने वाला अन्तरात्मा, वह तो परमात्मा का पड़ौसी है; उसने बहिरात्मपना छोड़कर परमात्मा के साथ संधान किया है। बहिरात्मपना छोड़कर अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप के ध्यान से जीव परमात्मा बन जाता है। अत: पूज्यपाद-स्वामी समाधिशतक में कहते हैं कि –

त्रिविध आत्म को जानकर, तज बहिरातम भाव।
होकर अन्तर आतमा, ध्या परमात्मस्वभाव।।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अन्तरात्मा को किसी को राग भी होता है; (सभी को नहीं होता, क्योंकि बारहवें गुणस्थान में भी अन्तरात्मा है, वह तो वीतराग है;) नीचे की भूमिका में राग होने पर भी अन्तरात्मा उससे भिन्न अपने चेतनस्वरूप को जानने वाला है, वह राग को मोक्षमार्ग नहीं मानते। उनमें सातवें से बारहवें गुणस्थान तक के उत्तम अन्तरात्मा तो शुद्धोपयोगी होकर अपने निर्विकल्प आनन्द का ही अनुभव कर रहे हैं, परमात्मदशा उन्हें अतीव निकट है। शुद्धोपयोगी होकर अन्तर में चैतन्यपिंड का साक्षात् अनुभव कर रहे हैं। शेष अन्तरात्माओं को भी ऐसे आत्मा का भान तो है, निर्विकल्प ध्यान कभी-कभी होता है।

अरे, अन्तरात्मा की पहचान भी बहुत सूक्ष्म है, उसको पहचानने से अपने को भी जीव-अजीव का भेदज्ञान हो जाता है।

- देहादि बाह्य को आत्मा माने, सो बहिरात्मा।

- पर से भिन्न अन्तर में आत्मस्वरूप को जाने, सो अन्तरात्मा।

- उत्कृष्ट-परम ज्ञान-आनन्ददशा को प्राप्त, सो परमात्मा।

आत्मा की ऐसी तीन दशा को पहचानकर, बहिरात्मपने को छोड़ना और अन्तरात्मा होकर परमात्मपद को साधना। परमात्मा की पहचान अन्तरात्मा को ही होती है, बहिरात्मा उसे नहीं पहचान सकता; बहिरात्मा तो शरीर को ही देखता है।

शरीर और मैं भिन्न हूँ – ऐसी शरीर से भिन्नता भी जिसको नहीं दिखती, वह राग से भिन्न होनेरूप मोक्षमार्ग में कैसे आयेगा ? अन्तर में चैतन्यभाव राग से भिन्न है – ऐसा भान किये बिना मोक्षमार्ग नहीं होता।

मोक्षमार्ग में वर्तने वाले मुनियों में भी शुद्धोपयोगी मुनियों को उत्तम अन्तरात्मा कहा और शुभोपयोगी मुनियों को मध्यम अन्तरात्मा कहा; अन्तर में आत्मा का ज्ञान तो दोनों को है; तदुपरान्त जो निर्विकल्प

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनुभूति में लीन हैं, उनको उत्तम कहा। शुभोपयोग वालों को उत्तम नहीं कहा, यद्यपि वे भी तो पंचपरमेष्ठी हैं; अत: उत्तम हैं। 'साहू लोगुत्तमा' में वे भी आ जाते हैं; परन्तु शुद्धोपयोगी की अपेक्षा से उनको मध्यम कहा; तब फिर शुद्धात्मा का जिसको भान ही नहीं – ऐसे अज्ञानी के शुभ की तो क्या बात ? वह तो शुभराग के समय भी बहिरात्मा है और भेदज्ञानी जीव अशुभभाव के समय भी अन्तरात्मा है। परमात्मा को तो शुभ-अशुभभाव होते ही नहीं।

अज्ञानी चाहे शुभभाव करे, अकेले व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र का पालन करे तो भी उसका स्थान जघन्य अन्तरात्मा से भी नीचा है अर्थात् वह बहिरात्मा ही है। जघन्य अन्तरात्मा का स्थान तो मोक्षमार्ग में है, परन्तु बहिरात्मा का स्थान मोक्षमार्ग में नहीं है। निर्विकल्प अनुभूतिपूर्वक शुद्ध आत्मा की अन्तर्दृष्टि के बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन के बिना अन्तरात्मपना नहीं होता। जघन्य अर्थात् सबसे छोटा अन्तरात्मा भी अन्तर में निश्चय श्रद्धा-ज्ञान सहित ही होता है। श्रद्धा की अपेक्षा उसका जघन्यपना नहीं है, चारित्र की अपेक्षा से जघन्यपना है।

देखो, अन्तरात्मा चाहे उत्तम हो, मध्यम हो या जघन्य हो, वे तीनों प्रकार के अन्तरात्मा मोक्षमार्गी हैं – तीनों शिवमगचारी हैं। चौथे गुणस्थानवाला जघन्य अन्तरात्मा भी मोक्षमार्गी है, शिवमगचारी है। चौथे से बारहवें तक के सभी अंतरात्मा मोक्षमार्ग में चलनेवाले हैं। निश्चयसम्यग्दर्शन हुआ, उसके प्रताप से मोक्षमार्ग का प्रारम्भ हो गया। जिसको निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं – ऐसा जीव व्रतादि करे या द्रव्यलिंग धारे तो भी अन्तरात्मा की कक्षा में वह नहीं आता, वह तो बहिरात्मा ही है। व्रतरहित, किन्तु सम्यक्त्व सहित ऐसा जीव तो मोक्षमार्गी है, परन्तु सम्यक्त्वरहित और व्रतसहित – ऐसा जीव मोक्षमार्ग में नहीं है। कोई जीव भले द्रव्यलिंगी होकर पंचमहाव्रत का पालन भी करता हो तो भी जो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यादृष्टि है, उसको चारित्र के लेश का भी सद्भाव नहीं कहा; जबकि अव्रती होते हुए भी सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा के चारित्रमोह की चार प्रकृतियों का (अनंतानुबंधी क्रोधादिक का) तो अभाव हुआ है और उतने अंश में चारित्रगुण व्यक्त हुआ है। अहा, सम्यग्दृष्टि जीवों की अन्तरदशा कोई अनोखी है। इस छहढाला के कर्ता पं. दौलतरामजी एक ही भजन में सम्यग्दृष्टि की अद्भुत दशा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि –

चिन्मूरत दृग्धारी की मोहि, रीति लगत है अटापटी।।टेक।।
बाहिर नारकि कृत दुख भोगै, अन्तर सुखरस गटागटी।
रमत अनेक सुरनि संग पै तिस, परनतितैं नित हटाहटी।।चिन्मूरत।।
ज्ञान-विराग शक्तितैं विधिफल, भोगतपैं विधि छटापटी।
सदन निवासी तदपि उदासी, तातैं आस्रव छटाछटी।।चिन्मूरत।।
जे भव हेतु अबुध के ते तस, करत बंध की झटाझटी।
नारक पशु तिय षँड विकलत्रय, प्रकृतिन की ह्वै कटाकटी।।चिन्मूरत।।
संयम धर न सकै पै संयम, धारन की उर चटाचटी।
तासु सुयश गुन की 'दौलत' के लगी रहै नित रटारटी।।चिन्मूरत।।

अहो, चैतन्यमूर्ति आत्मा की दृष्टि के धारक सम्यग्दृष्टि जीवों की दशा कोई अटपटी आश्चर्यकारक लगती है। कोई जीव नरक में सम्यग्दृष्टि हो, बाहर में तो उसे नारकियों के द्वारा घोर दुःख हो रहा हो, परन्तु अंतर में उसी समय भिन्न चेतना में उसे आत्मा के सुखरस की गटागटी चलती है। जैसे गन्ने का रस गटक-गटक पीवे, वैसे अन्तर की चेतना में उसे सुखरस की गटागटी चलती है – ऐसी सम्यग्दृष्टि की परिणति अटपटी है।

कोई जीव स्वर्ग में सम्यग्दृष्टि हो, वहाँ बाह्य में तो अनेक देवियों के साथ वह क्रीड़ा करता हो, उसप्रकार का राग भी होता हो, किन्तु उस परिणति से उसको सदा हटाहटी है अर्थात् धर्मी की चेतना उससे अलग ही अलग रहती है। ऐसी धर्मी की विचित्र परिणति है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अनेक प्रकार के कर्मफल भोगते हुए भी ज्ञान-वैराग्यशक्ति के बल से उसे कर्म सदैव घटते ही रहते हैं; सदन-निवासी अर्थात् गृहवासी होते हुए भी अंतरंग में उससे उदासीनता है, इसकारण आस्रव की उसको छटाछटी है, आस्रव छूटते ही जाते हैं। जो क्रिया अज्ञानी के भव के हेतु होती है, वही क्रिया चैतन्य की अंतर्दृष्टि के कारण सम्यग्दृष्टि को बंध की झटाझटी करती है अर्थात् उसे निर्जरा ही होती है।

नरकगति, तिर्यंचगति, स्त्रीपर्याय, नपुंसकपर्याय, विकलत्रय आदि ४१ प्रकृतियों की तो सम्यग्दृष्टि को निरंतर कटाकटी हो गई है अर्थात् यह ४१ प्रकृतियाँ उसे बँधती नहीं हैं।

वह अविरत सम्यग्दृष्टि यद्यपि संयम को धारण नहीं कर सकता, तथापि उसके अंतर में संयम धारण करने की चटापटी रहती है; निरन्तर संयमभावना रहती है।

अहो, सम्यग्दृष्टि के ऐसे प्रशंसनीय गुणों का खजाना, उसका दौलतरामजी को सदैव रटन रहता है!

अहा, चैतन्यमूर्ति आत्मा की दृष्टि के धारक अंतरात्मा-सम्यग्दृष्टि जीवों की दशा कोई अद्भुत अचिंत्य है। उसकी पहचान करने से भी अपने आत्मस्वरूप की अचिंत्य महिमा लक्ष में आ जाती है।

वह अंतरात्मा उत्कृष्ट हो, मध्यम हो या सबसे छोटा जघन्य हो, परन्तु शुद्धात्मा की प्रतीतिरूप सम्यग्दर्शन सभी के समान है; प्रतीति में फर्क नहीं है। सभी अंतरात्मा भूतार्थदृष्टिवंत हैं, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि के धारक हैं। राग होने पर भी राग से पार उनकी ज्ञानचेतना है, जिसे कोई विरले ही पहचानते हैं।

भावलिंगी मुनियों में भी जो निर्विकल्प ध्यान में लीन हैं – ऐसे शुद्धोपयोगी को तो उत्तम अंतरात्मा में गिने और शुभोपयोगी मुनि को मध्यम अंतरात्मा में गिने। अरे, महाव्रतादि की कोई शुभवृत्ति आवे, वह भी अंतरात्मा में नहीं टिकती, तब दूसरे राग की क्या बात ? प्रवचनसार में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भी कहा है कि मोक्षमार्ग में शुद्धोपयोगी मुनि मुख्य है – अग्रसर है और शुभोपयोगी मुनि को तो उनके पीछे-पीछे लिया है। ये दोनों मोक्षमार्गी-परमेष्ठी; उनमें शुभवाले मुनि भी भावलिंगी हैं, उनकी बात है। जिसे सम्यग्दर्शन नहीं है, उसको तो मोक्षमार्ग गिना ही नहीं, वह तो बंधमार्ग में चलने वाला बहिरात्मा है।

बहिरात्मा-अंतरात्मा-परमात्मा – इन तीन प्रकारों में जगत के सभी जीव आ जाते हैं। जीवतत्त्व की श्रद्धा में उनकी पहचान समा जाती है। जो स्वयं शुद्धोपयोग में लीन हैं, उसको तो दूसरे जीव का विचार ही उस समय नहीं है एवं तीन भेद का लक्ष्य भी नहीं है; किन्तु जो सविकल्प दशा में है, वह व्यवहार जीव की श्रद्धा में ऐसे त्रिविध आत्मा का स्वरूप विचारता है। ऐसा यथार्थ विचार करने वाला अंतरात्मा है। बहिरात्मा के या परमात्मा के ऐसा विचार नहीं होता; क्योंकि बहिरात्मा तो उसका सच्चा स्वरूप नहीं जानता और परमात्मा को कोई विकल्प नहीं है। यह तो साधक के निश्चय सहित व्यवहार कैसा होता है, उसकी बात है।

अंतरात्मा की परमार्थदृष्टि में अर्थात् शुद्धनय में तो एक अखंड ज्ञायकभावरूप ही आत्मा का अनुभव है, तीन प्रकार की पर्याय के भेद उसमें नहीं आते हैं। जो शुद्धदृष्टि से अंतरात्मा हुआ, वह व्यवहार में जीव की पर्याय के प्रकारों को भी जैसे हैं, वैसे जानता है। जीव स्वयं अंतरात्मा होकर तीन भेदों को जानता है; परन्तु स्वयं बहिरात्मा रहकर तीन प्रकार के आत्मा का सच्चा ज्ञान नहीं हो सकता।

छठवें-सातवें गुणस्थान वाले भावलिंगी मोक्षमार्गी मुनि ऐसा जानते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव भी मोक्षमार्गी है। जैसे मैं मोक्षमार्गी हूँ, वैसे वह भी मोक्षमार्गी है; भले अल्प हो (जघन्य हो) तो भी वह है तो मोक्ष के मार्ग में। श्री कुन्दकुन्दस्वामी ने मोक्षप्राभृत में उसको धन्य कहा है। अहा! छठवें गुणस्थानवर्ती परमेष्ठी मुनि चौथे गुणस्थान वाले गृहस्थ को मोक्षमार्ग में स्वीकार करते हैं 'ये तीनों शिवमगचारी'। तीनों प्रकार के

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अंतरात्मा मोक्षमार्ग में केलि करने वाले हैं – **'केलि करें शिवमारग में, जगमांहिं जिनेश्वर के लघुनंदन।'**

इसप्रकार अंतरात्मा की बात की; अब परमात्मा कैसा है? सो कहते हैं; परमात्मा के दो प्रकार – एक सिद्ध परमात्मा, दूसरा अरिहंत परमात्मा। सिद्ध भगवान तो अशरीरी, चैतन्यबिंब सिद्धालय में अनन्त विराज रहे हैं, उन्हें शरीर न होने से 'निकल परमात्मा' कहते हैं और अरहंत भगवान ढाई द्वीप संबंधी मनुष्यलोक में तेरहवें-चौदहवें गुणस्थान में शरीरसहित विचरते हैं, उनको सकल परमात्मा कहा जाता है। (कल=शरीर, उससे सहित, सो सकल; उससे रहित, सो निकल) केवलज्ञानादि गुण तो दोनों परमात्मा के समान हैं। अहा, जिनकी पहचान से आत्मा के सच्चे स्वरूप की पहचान हो जाये – ऐसे परमात्मा की महिमा की क्या बात!

परमात्मपद के साधने वाले मुनियों की दशा भी अद्भुत होती है...मानो छोटे-से सिद्ध ही हैं। मुनि की सौम्यमुद्रा में वीतरागता की झलक दिखती है, उपशम रस में उनका आत्मा झूल रहा है। छठवें गुणस्थान के समय उनको मध्यम-अन्तरात्मा कहा, परन्तु जब वे मुनि हुए; तब प्रथम उनको शुद्धोपयोग में सप्तम गुणस्थान हुआ था, अतएव उत्तम-अन्तरात्मादशा हुई थी; बाद में शुभोपयोग होने पर उनको मध्यम कहा; परन्तु शुभराग को जो मोक्षमार्ग समझता है अर्थात् रागादि विभावों को ही निजस्वभाव मानता है, ऐसा सम्यग्दर्शन सहित जीव तो बंधमार्ग में ही है, मोक्ष के मार्ग को वह नहीं जानता। वह बहिरात्मा मोक्ष के मार्ग से बाहर है।

सम्यग्दृष्टि ने सर्वज्ञ परमात्मा को श्रद्धा में लिया है। सर्वज्ञता वाले जीव जगत् में हैं और मेरा आत्मा भी ऐसी ताकत वाला है – ऐसा धर्मी जानते हैं। परम उत्कृष्ट पर्यायरूप परिणत आत्मा ही परमात्मा है। ऐसे परमात्मा इस समय इस भरतक्षेत्र में नहीं होते, परन्तु विदेहक्षेत्र में सीमंधर भगवान आदि लाखों जीव ऐसे परमात्मपद में इस समय भी साक्षात्

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विद्यमान हैं। ऐसे सर्वज्ञपद की पहचान यहाँ रहकर भी हो सकती है। सर्वज्ञपद की जिसको श्रद्धा नहीं है, वह तो बहिरात्मा है।

'जो जो देखी वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे' – ऐसा निर्णय करने में भी सर्वज्ञपद का स्वीकार आ जाता है। कोई सर्वज्ञ की पहचान के बिना बात करे तो वह सत्य नहीं है।

अहा, जिनको आत्मा का संपूर्ण ज्ञान है, संपूर्ण सुख है और राग का संपूर्ण अभाव है – ऐसी उत्कृष्टदशा वाले सर्वज्ञ भगवान हैं, उनका स्वीकार सम्यग्दृष्टि ही करते हैं। बाह्यदृष्टि वाले जीव को (रागदृष्टि वाले जीव को) परमात्मा की पहचान नहीं होती। सर्वज्ञ का स्वीकार वह तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, वह धर्म का मूल है। सर्वज्ञता कहो या आत्मा का ज्ञानस्वभाव कहो, उसकी पहचान के बिना धर्म का प्रारंभ नहीं होता।

सात तत्त्व में से एक जीव तत्त्व की अच्छी तरह पहचान करने से उसकी पर्याय के सभी प्रकार भी समझ में आ जाते हैं। 'सर्वज्ञ' अर्थात् एक साथ सभी को अतीन्द्रियज्ञान से प्रत्यक्ष जानने वाले तो भी जिनको राग-द्वेष नहीं, कोई संकल्प-विकल्प नहीं, जानने में थकान नहीं, निराकुल आनंद ही है। अहा ! ऐसा परमात्मपद...वह आत्मा की ही एक दशा है।

प्रश्न – शरीर रहते हुए भी सर्वज्ञपद हो सकता है क्या ?

उत्तर – हाँ, शरीर शरीर में है, भगवान को उसका कुछ भी ममत्व नहीं है। जैसे शरीर का संयोग होते हुए भी शरीर से भिन्न आत्मा का अनुभव होता है, वैसे सर्वज्ञता भी हो सकती है। जगत में ऐसे सर्वज्ञपरमात्मा हैं और मेरे आत्मा में भी ऐसा सामर्थ्य है – ऐसा सम्यग्दृष्टि अच्छी तरह (स्वानुभवपूर्वक) जानते हैं। सर्वज्ञ के अस्तित्व का जिसको विश्वास नहीं, उसको आत्मा के ज्ञानस्वभाव का ही विश्वास नहीं है।

निश्चय सम्यग्दर्शन में धर्मी जीव निर्विकल्परूप से शुद्ध आत्मतत्त्व में ही 'अहं' (मैं) ऐसी प्रतीति करता है और उस सम्यग्दर्शन के साथ की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानपर्याय में इतनी ताकत है कि सर्वज्ञपरमात्मा को भी वह अपने निर्णय में ले लेती है। अंतर में अपना शुद्धात्मा तो निर्णय में लिया है और उसकी उत्कृष्ट पर्यायरूप से परिणत परमात्मा कैसा है – यह भी निर्णय में आ गया है। शुद्ध द्रव्य की जो श्रद्धा करे, उसके सामर्थ्य की तो क्या बात ? परन्तु उसके साथ का ज्ञान, जो कि राग से भिन्न हुआ है, उस ज्ञान के व्यवहार में भी इतनी ताकत है कि परमात्मा को भी वह जान लेता है, बहिरात्मा, अंतरात्मा व परमात्मा जीवों को जान लेता है। द्रव्यरूप, शुद्ध ज्ञानमय आत्मा और उसकी पर्यायरूप त्रिविध आत्मा, उसका स्वरूप जैसा है, वैसा सम्यग्दृष्टि जानता है। समस्त लोकालोक की तीनों काल की पर्याय सहित एक समय में ज्ञान का ज्ञेय बनावे – ऐसा महान अचिंत्य सामर्थ्य केवलज्ञान में है; यहाँ पूरा ज्ञान है तो सामने समस्त ज्ञेय एक साथ निमित्त है। बस, ज्ञान में सर्व ज्ञेय मानो स्थिर हो गये, ज्ञान ज्ञान में स्थिर रह गया, कहीं कर्तृत्वबुद्धि या आगे-पीछे कर देने की वृत्ति न रही। ऐसी दशा वाले सर्वज्ञ को सम्यग्दृष्टि जानते हैं – इतनी तो उसकी व्यवहार श्रद्धा में ताकत है, परमार्थश्रद्धा निर्विकल्प है, उसकी ताकत का तो क्या कहना? जब ऐसी श्रद्धा करे, तब ही जीव का मोक्ष का मार्ग खुलता है।

देखो, सच्ची श्रद्धा करने के लिए जीवतत्त्व का यह वर्णन चल रहा है। निश्चय से ज्ञायकतत्त्व एक अखंड शुद्ध है, वह जीव है, व्यवहार में उसके तीन प्रकार हैं। शास्त्र-स्वाध्याय में ऐसे तत्त्वों का मनन करते-करते, ज्ञान को एकाग्र करते-करते ज्ञान में विशेष स्पष्टता होती जाती है, अतः वीतरागमार्ग में कहे हुए तत्त्वों का बारम्बार मनन करना चाहिए।

सिद्ध परमात्मा जिनको न शरीर है, न मन है, न इन्द्रियाँ हैं, न राग है, उन सबके न होने पर भी केवलज्ञान है; ऐसे सिद्ध परमात्मा की पहचान करने से ऐसा निर्णय होता है कि शरीर-मन-इन्द्रियाँ या राग के आधीन आत्मा का ज्ञान नहीं है। सिद्ध परमात्मा ज्ञानशरीरी है; ज्ञान ही आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का अंग है, जो आत्मा से कभी भिन्न नहीं होता। इसलिए कहा है कि –

ज्ञानशरीरी त्रिविध-कर्ममलवर्जित सिद्धमहन्ता।
ते हैं निकल-अमल-परमातम भोगें शर्म अनन्ता।।

ज्ञानशरीरी चैतन्यमय सिद्ध भगवंत सदाकाल अनंत आत्मिक सुख को भोगते हैं। ऐसे सिद्ध को लक्ष में लेकर साधक कहते हैं कि –

'चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदा पद मेरो।'

ऐसे अपने आत्मतत्त्व की प्रतीति सहित परमात्मा को जानते हैं। जो अकेले परलक्ष से जाने, वह सच्चा ज्ञान नहीं।

इस जगत में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध भगवंत हैं; वे आत्मा के अनन्त आनन्द को भोगते हैं, अखिल विश्व को जानते हैं; उन्हें औदारिकादि पुद्गल शरीर नहीं है, अत: वे देहातीत अशरीरी हैं, परन्तु अपने ज्ञानादि अनन्तगुणों में तन्मय होने से वे ज्ञानशरीरी हैं। ज्ञान ही आत्मा का जीवन है; आत्मा शरीर के संयोग के बिना, आयुकर्म के बिना, अपने ज्ञान से ही शाश्वत जीने वाला है। ऐसा जीवन जीने वाले सिद्ध भगवंत महन्त हैं, भव का अंत करके वे महंत हुए हैं और अनन्त सुख को भोगते हैं। महान आत्मा के जानने वाले सम्यग्दृष्टि जीवों को भी महंत-महात्मा कहा जाता है, परन्तु ये सिद्ध भगवान तो जगत में सबसे बड़े महंत हैं।

इसप्रकार श्लोक ४-५-६ में त्रिविध आत्मा का स्वरूप दिखाकर कहते हैं कि –

बहिरातमता हेय जानि तजि अंतर आतम हूजे।
परमातम को ध्याय निरंतर जो नित आनंद पूजे।।

आत्मा के तीन प्रकार को जानकर बहिरात्मपने का त्याग करना। सम्यग्दृष्टि ने तो बहिरात्मपने को छोड़ ही दिया है, परन्तु अन्य जो जिज्ञासु जीव हैं, वे भी इस उपदेश के द्वारा आत्मा का स्वरूप पहचानकर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

बहिरात्मपने को छोड़कर और अंतरात्मा होकर परमात्मस्वरूप का ध्यान करो, जो सदा आनन्दकारी है।

जो देह को आत्मा माने, इन्द्रियविषयों में सुख माने, पुण्य-राग को धर्म माने या बाह्य वस्तु से अपना कुछ हित-अहित होने का मानें, वे सब बहिरात्मा हैं – ऐसा पहचान कर उसप्रकार की विपरीत मान्यता को छोड़ना एवं ऐसी विपरीत मान्यता के पोषक जीवों का संग छोड़ना। देह से और परभावों से भिन्न, शुद्ध ज्ञानमय स्वतत्त्व को पहचान कर स्वयं अंतरात्मा होना एवं ऐसे अन्य साधर्मी-अंतरात्मा को आदरणीय जानना। अंतरात्मा क्या करते हैं ? कि परमात्मा को ध्याते हैं। सम्यग्दृष्टि ने अंतर में अपने शुद्धात्मा को निश्चय ध्येय बनाया है और व्यवहार में अरिहन्त तथा सिद्धपरमात्मा को ध्याते हैं, आदर करते हैं। विकल्प को या राग को वे नहीं ध्याते, परन्तु सर्वज्ञतारूप व पूर्ण आनन्दरूप ऐसे परमात्मा को ही ध्याते हैं। निश्चय में अपना परम स्वभाव ध्येय है और व्यवहार में अरिहन्त-सिद्धपरमात्मा ध्येय हैं। वे अनन्त आनन्द को प्राप्त परमात्मा के ध्यान के द्वारा अपने स्वभाव में एकाग्रता का उग्र प्रयत्न करते हैं और विकल्प तोड़कर अनन्त आनन्द का अनुभव करते हैं।

इसप्रकार शुद्ध आत्मा के ध्यान से अनन्त आनन्द (काल से भी अनन्त और भाव से भी अनन्त) प्राप्त होता है। शुद्ध आत्मा के ध्यान के बिना अन्यत्र जगत् में कहीं भी आनन्द नहीं है। परमात्मा का सच्चा ध्यान अपने ज्ञानस्वभाव में एकाग्रता से ही होता है, यह बात समयसार की ३१वीं गाथा में दिखायी है। इसप्रकार शुद्ध जीवतत्त्व को पहिचान करके, उसकी श्रद्धा से अन्तरात्मा होना और पीछे उसी के ध्यान से परमात्मा होना – यह जीवतत्त्व की पहचान का फल है।

इसप्रकार सात तत्त्वों में से जीवतत्त्व की बात की; अब अगले छन्द में अजीव के प्रकार कहते हैं। ●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

अजीवतत्त्व का वर्णन

मोक्षसुख का उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है; उसमें सम्यग्दर्शन के साथ में सात तत्त्व की पहचान कैसी होती है, यह बात चल रही है। प्रथम जीवतत्त्व के तीन प्रकार दिखाकर यह कहा कि बहिरात्मपना दु:खदायक होने से उसको छोड़ना और शुद्धात्मा के ज्ञान से अंतरात्मा होकर पूर्ण आनन्दरूप परमात्मदशा की प्राप्ति का उद्यम करना। इसतरह जीवतत्त्व के प्रकार दिखाकर अब अजीवतत्त्व के प्रकारों का कथन करते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन-रस, गंध-दो फरस वसू जाके हैं॥
जिय पुद्गल को चलन सहाई, धर्मद्रव्य अनरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन-मूर्ति निरूपी॥७॥
सकल द्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निश-दिन सो, व्यवहारकाल परिमानो॥

चेतनवंत तत्त्व तो जीव है और चेतनता से रहित तत्त्व, सो अजीव है। अजीव के भेद पाँच हैं –

पुद्गल – यह रूपीद्रव्य है, अतएव वर्ण-गंध-रस-स्पर्श वाला है। छह द्रव्यों में एक पुद्गल ही रूपी है, मूर्त है। हरा, पीला, लाल, सफेद व काला ये पांच रंग, सुगंध और दुर्गन्ध, खट्टा, मीठा, चरपरा, कड़ुवा व कषायला – ये पाँच रस तथा हलका-भारी, रूखा-चिकना, मुलायम-कर्कश, शीत-उष्ण – ये आठ स्पर्श, यह सब पुद्गल की रचना है, पुद्गल की पर्याय है। शब्द भी अजीव पुद्गलों की अवस्था हैं, वह कुछ

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जीवों का कार्य नहीं है। ये सब अजीव पुद्गल के प्रकार होने से अचेतन हैं, जीव से वे भिन्न हैं – ऐसा जानना।

धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य – ऐसे दो अजीवद्रव्य सर्वज्ञदेव ने देखे हैं, वे अति सूक्ष्म हैं और सारे लोक में व्यापक हैं; एक जीव के प्रदेश जितने असंख्यप्रदेश उनके प्रत्येक के हैं। जीव और पुद्गल जब गति करते हैं, तब उनका सहायक-निमित्त धर्मद्रव्य है और वे गतिमान जीव-पुद्गल जब स्थिर होते हैं, तब उनका सहायक-निमित्त अधर्मद्रव्य हैं, ये दोनों द्रव्य अरूपी और अचेतन हैं।

आकाशद्रव्य – ऊपर जो बादल दिखता है, वह तो पुद्गल की रचना है, वह आकाशद्रव्य नहीं है। आकाशद्रव्य तो अरूपी है; वह सर्वव्यापी है, ऊपर-नीचे चारों तरफ सर्वत्र आकाश है। आकाश अर्थात् क्षेत्र-जगह। जीव-अजीव सभी द्रव्यों का आकाश में वास है। आकाश इतना बड़ा (अनंत) है कि उसके एक छोटे से (अनंतवें) भाग में शेष सब जीव-अजीव तत्त्व रहे हुए हैं। अनंत आकाश का कहीं पार नहीं तो भी ज्ञान तो उसको भी पूर्णतया जान लेता है...ज्ञान का तो कोई अचिंत्य महान सामर्थ्य है। धर्मी जीव ऐसे आकाशद्रव्य को और उसको जानने वाले ज्ञान की श्रद्धा करते हैं।

कालद्रव्य – यह भी अजीव है। उसमें समय-समय की वर्तनारूप जो अरूपी कालाणु है, सो निश्चयकाल है, वे असंख्यात हैं और घटिका-मुहूर्त-दिन-मास-वर्ष-सागरोपम आदि जो प्रमाण हैं, सो व्यवहारकाल है। पदार्थ के परिणमन स्वभाव में यह निमित्त है। यह कालद्रव्य भी अरूपी एवं अजीव है।

ऐसे अजीवतत्त्व के पाँच प्रकार कहे, धर्मी जीव ऐसे तत्त्व की श्रद्धा करते हैं।

एक जीव और पाँच अजीव – ऐसे छह जाति के द्रव्य हैं।

उनमें एक चेतन और पाँच अचेतन;

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

एक मूर्त-रूपी और पाँच अमूर्त-अरूपी;

एक सर्वव्यापी और पाँच असर्वव्यापी;

चेतना वाला जीव और चेतनारहित अजीव – ऐसी संक्षिप्त व्याख्या करके जीव-अजीव की भिन्नता समझायी है।

प्रश्न – अजीव तत्त्व चेतना से रहित है, अत: उसमें ज्ञान नहीं है – यह ठीक है, किन्तु वह जानने में जीव का सहायक तो है न ?

उत्तर – ना; जीव का ज्ञानस्वभाव दूसरों की (इन्द्रियादि की) सहायता से रहित है। इन्द्रियादि का निमित्त तो पराधीन ऐसे इन्द्रियज्ञान में है और उसमें भी ज्ञान तो स्वयं जीव से – अपने से होता है, कहीं इन्द्रियों से नहीं होता। केवलज्ञान वगैरह में तो इन्द्रियादि का निमित्त भी नहीं है। ज्ञान का आधार आत्मा है, ज्ञान का आधार जड़ इन्द्रियाँ नहीं हैं।

केवलज्ञान में ज्ञेयरूप से सारा विश्व निमित्त है; परन्तु उसमें से कुछ ज्ञान नहीं आता। आत्मा का ज्ञान कोई अचेतन वस्तु में नहीं है एवं कोई अचेतन वस्तु ज्ञान में नहीं है; इसप्रकार ज्ञान को पर से अत्यन्त भिन्न जानना। सात तत्त्वों का ज्ञान करने से जड़-चेतन की ऐसी भिन्नता का ज्ञान भी हो जाता है।

अहा, मेरा ज्ञान मेरे में ही है, कहीं अजीव में मेरा ज्ञान नहीं। मेरा ज्ञान अजीव के पास में से नहीं आता। ऐसा समझकर ज्ञान को अपने आत्मा के सन्मुख करने से अपूर्व आनन्द का अनुभव होता है।

यहाँ धर्म-अधर्म आदि सूक्ष्म द्रव्यों की पहचान गति-स्थिति आदि में उनका निमित्तपना दिखाकर कराई। धर्मास्तिकाय स्वयं स्थिर द्रव्य है, वह तो किसी पदार्थ को गति नहीं कराता, परन्तु स्वयं गतिमान द्रव्यों को वह गति में निमित्त है। वैसे जगत् के कार्यों में जो कोई निमित्त कहा जाये, वे सब निमित्त भी धर्मास्तिकायवत् अकर्ता ही हैं। एक पदार्थ अपने ही स्वभाव से स्वकार्यरूप परिणमन करे और उस समय अन्य पदार्थ निमित्तरूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो, उससे कहीं किसी की पराधीनता नहीं हो जाती। जैसे केवलज्ञान के सामने ज्ञेयरूप से जगत् निमित्त है, तो क्या इससे केवलज्ञान ज्ञेयों के आधीन हो गया ? ना, वह तो स्वाधीन है; वैसे सभी पदार्थों का परिणमन स्वाधीन है।

चल करके थकित हुए मनुष्य को कहीं वृक्ष ऐसा नहीं कहता कि तू यहाँ ठहर! पानी कहीं मछली को ऐसा नहीं कहता कि तू चल ! पदार्थ कहीं ज्ञान को ऐसा नहीं कहता कि तू मुझे जान! पदार्थ स्वाधीनता से ही अपनी-अपनी गति-स्थिति या ज्ञानादि परिणतिरूप हो रहे हैं। अज्ञान में से ज्ञानरूप परिणमन करने वाले शिष्य के लिए ज्ञानी गुरु निमित्त हैं, परन्तु वे गुरु कुछ उसकी ज्ञानपरिणति के कर्ता नहीं हैं। अहा! सर्वज्ञ मार्ग का वीतराग-विज्ञान अलौकिक है। पदार्थ का स्वाधीन स्वरूप वह दिखाता है – ऐसे स्वाधीन तत्त्व का उपदेश, वही इष्ट उपदेश है। ऐसे ही उपदेश से भेदज्ञान व वीतरागता होकर जीव का हित होता है।

किसी वस्तु का स्वयं का स्वरूप क्या है, उसको लक्ष में लेकर समझना प्रारम्भ करना चाहिए; क्योंकि स्व के ज्ञानपूर्वक पर का सच्चा ज्ञान होता है। जैसे कि जगत् में धर्मास्ति-अधर्मास्ति दोनों एक साथ सर्वत्र विद्यमान हैं, उनमें से किसको निमित्त कहना, उसका निर्णय तो पदार्थ के कार्य के अनुसार ही होगा। पदार्थ गमनक्रिया करे, तब धर्मास्ति को निमित्त कहा, अधर्मास्ति को नहीं कहा। इसप्रकार जिस पदार्थ में कार्य हो रहा है, उस पदार्थ के धर्म को देखना चाहिए, संयोग की ओर से नहीं देखना चाहिए। वस्तुस्वभाव के ज्ञानसहित संयोग का ज्ञान करना, सो सत्य है। भगवान ने सभी द्रव्यों के धर्म स्वाधीन अपने-अपने से ही देखे हैं; उसीप्रकार उनका स्वरूप पहचानकर सच्ची तत्त्वश्रद्धा करना चाहिए।

तत्त्वश्रद्धा के लिए जीव-अजीव की अत्यंत भिन्नता का ज्ञान करना जरूरी है। जानने की शक्ति जीव में ही है। यह शरीर, लकड़ी, जीभ,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोटरगाड़ी, घड़ी, रुपये, शास्त्र आदि पदार्थ दिखते हैं; वे सब अजीव हैं। उनमें जानने की शक्ति नहीं है, वे चलते-फिरते-बोलते हुए भी अजीव हैं। चले-फिरे-बोले, सो जीव – ऐसी तो जीव की व्याख्या नहीं है। चेतना जिसमें हो, वह जीव और चेतना जिसमें न हो, वह अजीव – यह जीव-अजीव की सच्ची पहचान है।

घड़ी चलती है तो क्या वह जीव है ? नहीं, वह अजीव है। रेडियो बोलता है तो क्या वह जीव है ? नहीं, वह अजीव है। उसे कुछ मालूम नहीं है कि मैं घड़ी हूँ या मैं रेडियो हूँ। उसको जानने वाला तो जीव है। करीब सौ वर्ष पहले जब आगगाड़ी (ट्रेन) दौड़ना आरम्भ हुई, तब उसे दौड़ती हुई देखकर कितने ही ग्रामीण लोग उसे जीव अथवा राक्षस मानते थे, कोई उसे नारियल चढ़ाकर पूजते थे। देखो, कैसी भ्रमणा ? धर्म के नाम पर अज्ञानी लोग भी ऐसी ही भ्रमणा करते हैं कि शरीर का चलना-फिरना-बोलना – ये सब कार्य जीव के हैं। जीव ही शरीर को चलाता है; परन्तु यदि जीव-अजीव के भिन्न-भिन्न लक्षण को अच्छी तरह पहचाने तो ये सब भ्रमणायें दूर हो जायें और सच्चा तत्त्वज्ञान प्रगट हो।

अंतरात्मा-सम्यग्दृष्टि सर्वज्ञदेव के कहे हुए अतीन्द्रिय तत्त्वों की श्रद्धा करता है, उनसे विपरीत श्रद्धा उसके नहीं होती। जगत में एक अद्वैत ब्रह्म ही है और उससे भिन्न अजीवादि अन्य कुछ भी सत् नहीं है अथवा कोई ईश्वर इस जगत का कर्ता-हर्ता है – इसप्रकार की विपरीत मान्यता सम्यग्दृष्टि के व्यवहार में भी नहीं होती; व्यवहार में भी सर्वज्ञमार्ग के तत्त्वों की ही श्रद्धा होती है। उसका यह वर्णन चल रहा है, उसमें जीव के तीन प्रकार और अजीव के पाँच प्रकार का वर्णन किया। जीव और अजीव के बाद तीसरा आस्रवतत्त्व है तथा चौथा बन्धतत्त्व है, उसका कथन अब आगे के छन्द में करेंगे। ●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आस्रव तथा बंधतत्त्व का वर्णन

परद्रव्य से भिन्न अपने शुद्ध आत्मा की रुचि-अनुभूति के द्वारा जिसने सम्यग्दर्शन किया है, वह जीव सर्वज्ञ भगवान के कहे हुए जीवादि सात तत्त्वों की भी कैसी श्रद्धा करता है, उसका यह वर्णन है। श्लोक ४-५-६ में जीव तत्त्व के तीन प्रकार (बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा) का कथन किया; श्लोक ७ में तथा ८ के पूर्वार्ध में अजीव तत्त्व के पाँच भेद (पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल) का कथन किया। अब आठवें श्लोक के उत्तरार्द्ध में तथा नववें श्लोक के पूर्वार्ध में आस्रव और बंधतत्त्व का स्वरूप दिखाकर उनका त्याग करने को कहते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा।
मिथ्या अविरत अरु कषाय, परमाद सहित उपयोगा॥८॥
ये ही आतम को दुःख कारण, तातैं इनको तजिये।
जीवप्रदेश बँधै विधि सों सो, बंधन कबहुँ न सजिये॥९॥

जीव और अजीव तत्त्व का वर्णन किया। अब आस्रव तथा बन्ध तत्त्व का वर्णन करते हैं, इसे सुनो। मन-वचन-काय के योग तथा मिथ्यात्व-अव्रत-प्रमाद और कषाय सहित मलिन उपयोग ये कर्म के आस्रव के कारण हैं; ये आस्रवभाव आत्मा को दुःख के कारण हैं; अतः वे त्याग करने योग्य हैं। पाप हो या पुण्य, उन दोनों को आस्रव में ही गिनकर छोड़ने योग्य कहा है। पाप आस्रव छोड़ने योग्य और पुण्य आस्रव आदरने योग्य – ऐसा नहीं कहा। उसीप्रकार बंधतत्त्व में भी पापबंध और पुण्यबंध दोनों को समझ लेना। मिथ्यात्वादि भावों के कारण आत्मप्रदेशों में कर्मों

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

का बन्धन होता है, यह बन्धतत्त्व है, वह जीव को दु:ख का कारण है; अत: वे मिथ्यात्वादि बन्धभाव कभी करने योग्य नहीं हैं।

भाई, तुम्हारे दुख का कारण तुम्हारा मिथ्यात्व तथा क्रोधादि भाव ही है, अत: आस्रव-बन्ध के कारणरूप उन भावों को छोड़ना चाहिए। जिस किसी भाव से जीव का किंचित् भी आस्रव या बन्ध हो, वह भाव अच्छा नहीं, हितरूप नहीं, करने जैसा नहीं; किन्तु छोड़ने जैसा है – ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव जानते हैं। जो इससे विपरीत माने, उसको आस्रव-बन्ध तत्त्व की श्रद्धा में भूल है।

हे भाई ! तुम्हारे हित के लिए प्रयोजनभूत तत्त्वों को तो तुम पहचानो। जीव और अजीव दोनों तत्त्व भिन्न, उनमें जिसके जो गुण-पर्याय हो, उसी के वे समझने चाहिए, एक का दूसरे में मिलान नहीं करना चाहिए एवं जीव के ज्ञानादि स्वभावभाव तथा रागादि विभावभाव उनको भी भिन्न-भिन्न पहचानकर तत्त्वों की सच्ची श्रद्धा करनी चाहिए।

प्रश्न – क्या सम्यग्दृष्टि मेंढक आदि तिर्यंच को भी यह सब ज्ञान होता है?

उत्तर – हाँ, शब्द भले उन्हें न आते हों, किन्तु उनके ज्ञान में सातों तत्त्वों का भावभासन आ जाता है। सम्यग्दृष्टि मेंढक सर्प-सिंह-हाथी वगैरह भी ऐसी ही तत्त्वश्रद्धा करते हैं, विपरीत मान्यता उन्हें नहीं होती; सम्यग्दृष्टि मेंढक आदि की भी शुद्धात्मा की प्रतीति गणधरदेव जैसी ही है। अंतर के भाव में उन्हें आत्मा का आनन्द अच्छा लगता है और रागादि आस्रव अच्छे नहीं लगते। शुभराग का वेदन हो, तब वे ऐसा नहीं मानते कि यह मुझे आनन्द का वेदन है। शुभराग के वेदन में भी उन्हें दु:ख लगता है; अत: आस्रव दु:खदायक है-हेय है – ऐसी श्रद्धा उनके भाव में आ गई और आनन्द अर्थात् संवर-निर्जरा का भाव उपादेय है– ऐसी श्रद्धा भी आ गई। अंतर में आत्मा आनन्दस्वरूप है – ऐसा जो वेदन होता है, उसे ही वे 'आत्मा' समझते हैं और इससे विरुद्धभाव सो आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं है – यह बात भी उसमें आ ही जाती है। जो शुभ या अशुभराग वृत्तियाँ उठें, वे उन्हें दु:खरूप लगती हैं; अत: वे उन्हें छोड़ने का अभिप्राय रखते हैं अर्थात् आस्रव तथा बन्ध को हेय समझते हैं; और आनन्द के वेदनरूप संवर-निर्जरा की वृद्धि चाहते हैं अर्थात् संवर-निर्जरा-मोक्ष को उपादेय समझते हैं। इसतरह उनके वेदन के भाव में सातों तत्त्वों की अविपरीत श्रद्धा समा जाती है। वे सम्यग्दृष्टि मेंढक भी ऐसा नहीं मानते कि शरीर है, सो मैं हूँ अथवा ईश्वर ने मुझे बनाया अथवा रागादिभाव सुखरूप है। वे तो शरीर से भिन्न, राग से भिन्न, शाश्वत ज्ञानस्वरूप ही अपने को अनुभव में लेते हैं और ऐसी ही श्रद्धा करते हैं।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि जीव अपने हित के लिए प्रयोजनभूत तत्त्व को अच्छी तरह पहचानते हैं। जीव और अजीव स्वयंसिद्ध मूलवस्तु, उनकी भिन्नता तथा जीव के सुख-दुख के कारणरूप पर्याय, उनका जानना प्रयोजनरूप है और सात तत्त्व में ये सब आ जाते हैं। घट है, सो अजीव की पर्याय है और वह मेरा कार्य नहीं है – ऐसा धर्मी जानते हैं, किन्तु वह घट कहाँ बना ? कब बना ? उसके लिए मिट्टी कहाँ से आई ? उसके बनने में कौन कुम्हार निमित्त था ?

ये सब जानना अप्रयोजनरूप है, उनके साथ जीवों के हित-अहित का संबंध नहीं है। उनको जानने से जीव का हित नहीं हो जाता और उनको न जानने से जीव का हित अटक नहीं जाता; परन्तु चेतन लक्षणरूप जीव क्या है ? उसकी अंतरात्मा आदि दशायें कैसी हैं ? उनका ज्ञान (शब्दज्ञान नहीं, किन्तु भावभासन रूप ज्ञान) धर्मी के अवश्य होता है। मैं चेतन हूँ; मेरे चेतन का कोई अंश अजीव में नहीं है और अजीव का कोई अंश चेतन में नहीं है। चेतन के सभी गुण चेतन में हैं, जड़ के सभी गुण जड़ में हैं, दोनों की अत्यन्त भिन्नता है। जीव-अजीव के गुण भिन्न, जीव-अजीव की पर्याय भिन्न; ऐसे प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के धारक हैं, किसी का अंश दूसरे में मिलता नहीं। उन्हें सर्वज्ञ के मार्ग अनुसार अच्छी तरह पहचानना चाहिए।

चेतना लक्षणरूप जीव; उसकी पर्याय के तीन प्रकार – बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा; उनमें से –

बहिरात्मा में आस्रव तथा बन्ध तत्त्व आ गये।

अंतरात्मा में संवर तथा निर्जरा तत्त्व आ गये।

परमात्मा में मोक्ष तत्त्व आया।

आस्रव तथा बन्ध में मिथ्यात्व प्रधान है; तदुपरान्त अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग – ये भी आस्रव तथा बन्ध हैं। बाह्य में शरीर की जो क्रिया होती है, वह तो अजीव तत्त्व की दशा है, उसमें कहीं जीव के आस्रव-बन्ध या संवर-निर्जरा नहीं रहते। जीव के योग तथा उपयोग की अशुद्ध प्रवृत्ति, वह आस्रव और बन्ध है और शुद्धोपयोग की प्रवृत्ति, वह संवर-निर्जरा है; पूर्ण शुद्धता, वह मोक्ष है। भाई, तुम्हारी अवस्थारूप ऐसे तत्त्व को तुम जानो और उनके निमित्तरूप पुद्गल कर्म की अवस्था को तुमसे भिन्न अजीवरूप समझो; उन तत्त्वों को जानकर उनमें से अपने हितरूप तत्त्व को ग्रहण करो और दुःखरूप तत्त्व को छोड़ो।

देखो, अभी ऐसा तत्त्वनिर्णय हो सके, इतनी ज्ञानशक्ति महाभाग्य से मिली है; अतः तत्त्वनिर्णय करने का उपदेश है। अपने हित का अभिलाषी जीव ऐसा निर्णय अवश्य करता है। अरे, ऐसा उत्तम सुयोग पाकर के भी जो तत्त्वनिर्णय में अपनी बुद्धि को नहीं लगाते और कुमार्ग के सेवन में अवसर खो देते हैं, उनके दुर्भाग्य का क्या कहना ? वे तत्त्वनिर्णय के बिना ऐसा मनुष्य अवतार व्यर्थ गँवा देंगे।

यहाँ ऐसा कहा कि अनन्त द्रव्य, जिसमें अवकाश ले रहे हैं – ऐसे आकाश को भी तुम पहचानो। अहा, ज्ञान की कितनी विशालता। अनन्त जीव, उनसे अनन्तानंतगुने पुद्गल, धर्मास्ति आदि सूक्ष्म अरूपी द्रव्य ये सब द्रव्य भी जिसके अनन्तवें भाग में समा जाये – इतना बड़ा अनन्त सर्वव्यापी आकाश, उस आकाश को भी जो अपने अनन्तवें भाग की शक्ति से जान ले – ऐसा महान ज्ञानसामर्थ्य, उसका धारक यह जीव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

स्वयं है। अनन्त आकाश का ख्याल करने पर अपने ऐसे महान ज्ञानसामर्थ्य का भी निर्णय हो जाता है। ऐसे बड़े आकाश की और उससे भी महान ज्ञानसामर्थ्य की बात सर्वज्ञदेव के जैनशासन के बिना अन्यत्र कहीं भी नहीं हो सकती और सर्वज्ञ के भक्त सम्यग्दृष्टि के बिना ऐसे तत्त्व का सच्चा निर्णय दूसरा कोई नहीं कर सकता।

अहो, आत्मा के हित के लिए जैनधर्म के ऐसे तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। विद्यार्थी लोग भी छुट्टियों में खेल-कूद के बदले में ऐसे वीतरागी तत्त्व का अभ्यास करें – ऐसा प्रबन्ध करना चाहिए कि जिससे उनका जीवन सुखी हो। हमारे भगवान के देखे हुए तथा कहे हुए छह द्रव्य कैसे हैं तथा उनके प्रत्येक के मुख्य लक्षण (विशेष गुण) क्या हैं ? किस भाव से जीव सुखी है और किस भाव से वह दुःखी होता है ? यह पहचानना चाहिए।

आप आपको जाने और सभी पदार्थों को भी जाने – ऐसी शक्ति जीव में ही है, अन्य किसी में नहीं।

आप आप में रहे और सभी पदार्थों के भी रहने में निमित्त हो – ऐसी ताकत (ऐसा स्वभाव) आकाशद्रव्य में ही है, अन्य किसी में नहीं (पदार्थ रहते तो हैं स्वक्षेत्र में, आकाश उन्हें निमित्त हैं।) आप स्वयं परिणमे और सभी पदार्थों के भी परिणमन में निमित्त हो ऐसा स्वभाव कालद्रव्य में ही है, अन्य किसी में नहीं। (पदार्थ का परिणमन तो स्वपर्याय से होता है, काल उन्हें निमित्त है।)

इसप्रकार सर्वज्ञदेव के उपदेश अनुसार जगत् से पदार्थों का ज्ञान करने की छद्मस्थ जीव में ताकत है। सर्वज्ञमार्ग से विपरीत कोई बात को सम्यग्दृष्टि नहीं मानते। जो आत्मा सर्वज्ञ-वीतराग है, वही परमेश्वर है। वे परमेश्वर जगत् के कर्ता नहीं हैं। स्वयंसिद्ध ऐसे इस जगत् के कर्ता कोई ईश्वर नहीं हैं। जैसे ईश्वर जगत् का कर्ता नहीं है, वैसे निमित्तरूप वस्तु अन्य वस्तु की कर्ता नहीं है। जीव और अजीव ये सब जगत् की स्वतंत्र

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वस्तु हैं और वे अपनी-अपनी पर्याय को करती हैं; ईश्वर उनके साक्षीमात्र ज्ञाता हैं और सभी जीव ऐसे ही साक्षीस्वभावी हैं – ऐसा धर्मी जानते हैं।

जगत् के पदार्थ स्वयं सत् हैं, सर्वज्ञ ने उन्हें सत् जाना है और वाणी से भी ऐसा कहा है; इसप्रकार सत् वस्तु, उसका ज्ञान और उसका कथन इन तीनों का मेल है; उसकी पहचान से सच्ची श्रद्धा होती है। जीव को सर्वज्ञ का सच्चा स्वरूप तब ही समझ में आता है, जबकि वह उनके जैसे अपने आत्मा के स्वसन्मुख होकर निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट करे। ज्ञानस्वभावी आत्मा के अनुभव के बिना कोई ऐसा कहे कि मैंने सर्वज्ञ को पहचान लिया तो वह यथार्थ नहीं है; क्योंकि आत्मा की पहचानपूर्वक ही सर्वज्ञ की पहचान होती है। ज्ञान की शक्ति इतनी महान है कि तीन काल की पर्यायों सहित समस्त पदार्थों को एक साथ ज्ञान का निमित्त बनाती है, कोई ज्ञेय बाकी नहीं रहता। यदि ज्ञेय बाकी रह जाये तो ज्ञान अपूर्ण रह जाये, तब उसे सर्वज्ञ कौन कहे ?

जिससे जीव को दु:ख होता है – ऐसे आस्रव तथा बन्ध को कभी भला मत जानो, उसे छोड़कर सम्यग्दर्शनादि में लगो – ऐसा उपदेश है। जीव का असंख्यप्रदेश जब चंचल बने अर्थात् योग का कंपन हो, तब मन-वचन या काया जो उसमें निमित्त हो, उसप्रकार का वह योग कहलाता है और उससे कर्म आते हैं तथा मिथ्यात्व-कषायादि मलिनभावों के अनुसार उस कर्म में स्थिति-अनुभागरूप बन्धन होता है। सम्यग्दृष्टि जीव को मिथ्यात्वजनित आस्रव-बन्ध नहीं है; परन्तु अभी अव्रतादि है, उतना आस्रव-बन्ध भी है, किन्तु वह उसे दु:खरूप जानकर, स्वभाव से विपरीत जानकर हेयरूप समझता है। आत्मा का ज्ञानस्वभाव आस्रव तथा बन्धरहित है, उसे ही वह उपादेय समझता है।

इसप्रकार सात तत्त्व में आस्रव तथा बन्ध दु:खदायक होने से उनको छोड़ने को कहा; अब उनके विपरीत संवर तथा निर्जरातत्त्व सुखदायक होने से आदरनेयोग्य योग्य हैं – ऐसा कहते हैं।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

संवर तथा निर्जरा तत्त्व का वर्णन

(छन्द-जोगीरासा)

शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥९॥

शुद्ध उपयोग तथा वीतरागतारूपी आत्मा का जो जहाज, उसमें मिथ्यात्व-रागादि छिद्रों के द्वारा कर्मरूपी जल का आना, सो आस्रव है। सम्यग्दर्शनपूर्वक शुद्धता तथा वीतरागता होने पर वे छिद्र बन्द हो जाते हैं और कर्म का आना रुक जाता है, सो संवर है और जैसे नौका में एकत्र हुए पहले के पानी को बाहर निकाल देते हैं, वैसे तप द्वारा विशेष शुद्धि होने पर आत्मा में से कर्मों का झड़ जाना, सो निर्जरा है। ऐसी संवर-निर्जरा जीव को सुख का कारण है; अत: उनका सदा आचरण करना चाहिए।

प्रथम तो संवर क्या है और निर्जरा क्या है, उनको पहचानना चाहिए। संवर -निर्जरा कहीं शरीर की अवस्था से नहीं होते; जीव के उपयोग की शुद्धि तथा वृद्धि के द्वारा ही संवर-निर्जरा होते हैं। तप के बल से निर्जरा होना कहा है, सो वह भी चैतन्य की उग्र शुद्धतारूप तप है और वह सदैव आचरने योग्य है। देह से भिन्न चैतन्य को जो नहीं जानता और देह से कष्ट सहन कर निर्जरा करना चाहता है, उसे सच्ची निर्जरा नहीं होती; निर्जरा तत्त्व की उसे पहचान भी नहीं है। निर्जरा में उसे कष्ट नहीं, निर्जरा में तो महा आनंद है।

प्रश्न – अकेला शुद्ध आत्मतत्त्व ही मानें और ये सब न मानें तो ?

उत्तर – भाई, शुद्ध आत्मा को जो सच्चे रूप से जाने, उसके ज्ञान में ये सभी तत्त्वों का भी स्वीकार आ ही जाता है। शुद्ध आत्मा मैं हूँ – ऐसा

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जब जाना तब, उसके विपरीत ऐसे रागादि अशुद्धभाव में नहीं – ऐसा भी जाना, अत: उन रागादि को (आस्रव-बंध को) हेय जाना; ('आस्रव' इत्यादि शब्द भले न आते हों, किन्तु उसके निषेध का भाव तो ज्ञान में वर्तता ही है।) और शुद्ध आत्मा को पहचानकर, उसके अनुभव में तो आनन्द आया, उसे वह अच्छा उपादेय समझता है और वह तो संवर-निर्जरा है, अत: संवर-निर्जरा-मोक्ष का ज्ञान भी उसमें आ गया; नाम भले न आते हों।

जीव के सुख-दु:ख का कारण अपना भाव है; जो सम्यक्त्वादि वीतरागभाव है, वह सुख है और मिथ्यात्वादि भाव दु:ख है। हरी वनस्पति पवन के झकोरे से जब लहराती हो, उस समय भी वे एकेन्द्रिय जीव अनन्त दुख का वेदन कर रहे हैं। सिर पर हजार मन की शिला पड़ी हो, शरीर पिस गया हो तो भी, शरीर की इतनी प्रतिकूलता के काल में भी जीव समाधान करके अंतर में शांत अनाकुल परिणाम रख सकता है; क्योंकि जीव शरीर से भिन्न है। लोग तो बाहर से देखने वाले हैं कि शरीर में छेदन-भेदन हुआ, अत: वह जीव दु:खी होगा; परन्तु वही के वही संयोग होते हुए भी शांत परिणाम वाला जीव दु:खी नहीं होता। जीव के अपने अंदर जितना मिथ्यात्वादि कषायभाव है, उतना ही उसको दु:ख है और सम्यक्त्वादि निराकुलभाव ही सुख है। आत्मा का आनंद स्वभाव है, उसे पहचानकर अनुभव करे, तभी जीव को सच्चा सुख व आनंद होता है; उससे ही आस्रव-बंध टलते हैं और संवर-निर्जरा होते हैं। कर्म के आने के कारणरूप मिथ्यात्वादि भावों को जब तक जीव नहीं छोड़ता, उनके किसी भी अंश को (शुभराग को भी) भला जानता है, तब तक जीव को सच्चा संवर-निर्जरा नहीं होता, धर्म नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता।

धन आवे या जावे, उसके कारण जीव को सुख-दु:ख नहीं है।
पुत्र जन्मे या मरे, उसके कारण जीव को सुख-दु:ख नहीं है।
देह निरोगी हो या रोगी, उसके कारण जीव को सुख-दु:ख नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे जीव ! तेरा आनन्दस्वभाव है, उसका भान करने से तू सुखी हो और उसको भूलने से तू दुःखी हो। अरे भाई, तू दुःखी तेरी भूल से और दोष निकालेगा दूसरे का, तो तेरे दुःख और तेरी भूल कहाँ से मिटेगी ? तेरी भूल और भूलरहित ज्ञानस्वभाव, इन दोनों को स्वीकार करने पर ही स्वभाव के आश्रय से भूल मिटकर निर्दोषता होगी, तभी सुख होगा।

अज्ञानी को अनादि से देहबुद्धि का एवं पराश्रय का ऐसा रंग चढ़ गया है कि अपने सम्यक्त्वादि गुण के लिए भी वह पर का आश्रय मानता है; और अपने दोष भी दूसरे के ऊपर डालने की उसे आदत है। हे भाई ! कोई परवस्तु तेरे गुण-दोष का या सुख-दुःख का कारण नहीं है। तेरे परिणाम में तेरे स्वभाव की अनुकूलता ही सुख और ज्ञानस्वभाव से प्रतिकूलता ही दुःख, देह की अनुकूलता या प्रतिकूलता में तेरा कोई सुख-दुःख नहीं है। पुत्रहीन होना, विधवा होना, क्षयरोग होना, छेदन-भेदन होना, बम गिरना, इनमें कहीं जीव का दुःख नहीं है, वे तो भिन्न वस्तु हैं। भिन्न वस्तु का तेरे में अस्तित्व ही नहीं है, तब वे तुझे दुःख-सुख कैसे देंगी ? आप अपने स्वभाव को भूलकर, संयोग के सामने देखकर जो मोह-राग-द्वेष करता है, उसी का जीव को दुःख है और अपना आनन्दस्वभाव है, उसके सन्मुख देखने से सुख होता है। इसप्रकार जीव के सुख-दुःख का कारण जीव में ही हैं, दूसरे में नहीं। उनको पहचानकर, उनमें से दुःख के कारणरूप आस्रव-बन्ध को छोड़ना और सुख के कारणरूप संवर-निर्जरा को प्रगट करना।

आनन्दस्वभाव का अस्तित्व तेरे में त्रिकाल है; तेरे इस अस्तित्व को भूलकर स्वयं तूने ही पर्याय में क्षणिक दुःख उत्पन्न किया है। तेरे असंख्यप्रदेशी चैतन्यधाम में अनन्तगुण और उनकी पर्यायें – इतना तेरा अस्तित्व है। तेरे में आनन्द के अस्तित्व को देख तो तेरी पर्याय में भी आनन्द होगा। अन्तर्मुख होकर अपने आनन्द के अस्तित्व को ही कारण बनाने से आनन्द के अनुभवरूप कार्य होता है। किसी बाह्यकारण से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आनन्द नहीं हो सकता। आत्मा का ज्ञानस्वभाव आनन्द का ही कारण है, वह दुःख का कारण नहीं है; रागादि आस्रवभाव दुःखरूप ही हैं, वे कभी सुख का कारण नहीं हो सकते। इसप्रकार ज्ञान की व राग की अत्यन्त भिन्नता है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी कहते हैं कि –

ये सर्व जीवनिबद्ध अध्रुव शरणहीन अनित्य हैं।
ये दुःख, दुःखफल जानके, इनसे निवर्तन जीव करे॥

(– समयसार गाथा-७४)

जीव-अजीव का भेदज्ञान करके अर्थात् सात तत्त्व का यथार्थ ज्ञान करके जीव आस्रवों से भिन्न हो जाता है और ज्ञानस्वभाव में एकाग्रतारूप संवरदशा को धारण करता है। अतः वीतराग भेदज्ञान का बार-बार अभ्यास करना चाहिए।

– आत्मा के लिए सुखरूप या दुःखरूप कौन होता है ? – कि आत्मा में जिसका अस्तित्व हो वह।
– आत्मा के अस्तित्व में जो है ही नहीं, वह सुख-दुःख का कारण नहीं होता।
– जैसे, खरगोश के सींग हैं ही नहीं तो वह किसी को लगता नहीं; वैसे आत्मा में कर्म हैं ही नहीं तो वह आत्मा में कुछ करता नहीं।
– आत्मा में आनन्दस्वभाव का अस्तित्व है, उसके अवलंबन से सुख की अनुभूति होती है।
– स्वभाव को भूलकर आत्मा रागादिरूप परिणमे उसमें, आकुलतारूप दुःख है।
– जीव के सुख में या दुःख में बाह्यपदार्थ कारणरूप नहीं है।
– किसी एक ही बाह्यपदार्थ में एक जीव सुख की कल्पना करता है, दूसरा दुःख की; अतः सुख-दुःख की कल्पना का भी कारण परद्रव्य नहीं ठहरा।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

– जो जीव ऐसा जाने, वह परद्रव्य में सुख-दुःख की बुद्धि को तथा राग-द्वेष को छोड़कर, अपने भाव में जैसे सुख हो और दुख मिटे – ऐसा उपाय करता है अर्थात् संवर-निर्जरा का उपाय करता है और आस्रव-बंध को छोड़ता है।

नवतत्त्व की पहचान में यह सब आ जाता है। कई लोग नवतत्त्व के नाम याद करते हैं (यद्यपि बहुत लोग तो नाम भी नहीं जानते), किन्तु उनके स्वरूप की पहचान करनी चाहिए।

जिससे पाप का या पुण्य का आस्रव हो, वह स्वयं दुःख है और दुःख का ही कारण है। अज्ञानी पुण्यास्रव को धर्म का कारण मानता है, परन्तु शास्त्र तो कहते हैं कि वह दुःख का ही कारण है। कोई ऐसा माने कि आस्रव में अभी दुःख भले हो, परन्तु भविष्य में तो वह सुख का कारण होगा तो कहते हैं कि नहीं; आस्रव (अर्थात् मिथ्यात्व और पुण्य-पाप के सभी भाव) अभी भी दुःख हैं और भविष्य में भी उसके साथ का संबंध दुःख का ही कारण होता है। जो स्वयं दुःखस्वरूप ही है, वह सुख का कारण कहाँ से होगा ? सुख का कारण तो सुख से भरपूर ऐसा अपना स्वभाव ही है, उसी के सेवन से वर्तमान में सुख है और उसका फल भी सुख ही है, वह कभी दुःख का कारण नहीं होता। ऐसा तत्त्वज्ञान करना, वही सुखी होने का उपाय है।

हे जीव ! तू परपदार्थ को तो तेरे से भिन्न जानकर उसकी ममता छोड़ दे। पर की ओर के तेरे भावों को भी दुःखरूप जानकर उसका भी सेवन छोड़। इसप्रकार पर से भिन्न और परभावों से भी भिन्न ऐसे तेरे निजस्वरूप को देख। उसे देखते ही तुझे परम सुख होगा। सातों तत्त्वों का सार इसमें आ गया।

परद्रव्य जीव को दुःख नहीं देते; यदि परद्रव्य जीव को दुःखी करते हों, तब तो उस दुःख से छूटने का भी जीव के आधीन नहीं रहा। परद्रव्य जब छोड़े, तब जीव दुःख से छूटे; परन्तु ऐसा नहीं है। दुःख के कारण

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिथ्यात्वादि भाव जीव में हैं और जीव उन्हें छोड़े, तब दुख छूट जाते हैं; अत: दुःख से छूटने की बात अपने आधीन है। अपना सुख अपने में है, उसे जीव स्वाधीनता से भोग सकता है।

जीव को जैसे सुख का कारण परवस्तु नहीं है, वैसे दुःख का कारण भी परवस्तु नहीं है। अरे, संसार के कल्पित सुख का कारण भी परवस्तु नहीं है, वहाँ भी जीव की अपनी कल्पना ही सुख-दुःख का कारण है। जैसे किसी अज्ञानी ने धन में या स्त्री आदि में सुख माना, तो वहाँ उस मान्यता का कारण ये धन वगैरह नहीं हैं; वे धन वगैरह विद्यमान रहते हुए भी उसमें सुख की कल्पना को जीव छेद सकता है; उसीप्रकार शरीर में रोगादि होते हुए भी उसमें दुःख की कल्पना को जीव छेद सकता है।

बाहरी पदार्थ उनके अस्तित्व में हैं, वे जीव में नहीं हैं।

सुख का या दुःख का अस्तित्व जीव में है, पर में नहीं है।

प्रतिकूल संयोग हो और दुःख हो तो भी उस दुःख का अस्तित्व जीव में है, संयोग में नहीं है। जीव अपने आनंदस्वभाव को भूलकर और परवस्तु में सुख की कल्पना कर उसके गाढ़ प्रेम में रुक गया है। जीव जबतक पर में सुख माने, तबतक उसका उपयोग पर में से छूटता नहीं और स्व में आता नहीं, अत: उसे संवर-निर्जरा नहीं होता, आस्रव-बंध ही होता है।

यहाँ कहते हैं कि जीव को किसी प्रकार का भी आस्रव और बंध हो तो उसे भला नहीं मानना; बंध के कारणरूप मिथ्यात्व का या शुभ-अशुभ भावों का सेवन न करना; परन्तु मोक्ष के कारणरूप सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप वीतरागभाव का निरंतर सेवन करना; उसका सेवन ही भावसंवर और भावनिर्जरा है। अशुभ को छोड़ना और शुभराग को आदरना – ऐसा अज्ञानी मानते हैं; ज्ञानी तो अशुभ और शुभ दोनों से भिन्न ऐसे शुद्धभाव को ही आदरते हैं; शुभ अशुभ दोनों को ज्ञान से भिन्न जानकर छोड़ देते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देखो, सात तत्त्व के निर्णय में यह सब समा जाता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा कषायों का अभाव होने से वीतरागी शांत परिणाम प्रगटे, वह 'शम' है और आत्मा के अतीन्द्रियस्वभाव की अनुभूति के बल से इन्द्रिय की ओर का भाव छूट जाना, उसी का नाम 'इन्द्रियदमन' है। अकेले उपवासादि से इन्द्रियों को सुखा देने की यह बात नहीं है। वे इन्द्रियाँ तो जड़ हैं; उन इन्द्रियों की ओर का भाव छोड़कर अतीन्द्रियज्ञान से आत्मा के आनंद का अनुभव करना, वही 'इन्द्रियजय' (जितेन्द्रियपना) है। ऐसे शम और इन्द्रियदमन भेदज्ञान सहित शुभभाव से होते हैं और उनसे ही संवर-निर्जरा होती हैं। इन्द्रियों को जो अपनी माने, इन्द्रियों को जो ज्ञान का साधन माने, वह उसका अवलंबन क्यों छोड़े ? वह तो अपना ज्ञान इन्द्रियों में ही लगावे; अत: उसे इन्द्रियदमन नहीं हो सकता। शम-दम-तप या संवर-निर्जरा तो स्वद्रव्य के ही अवलंबन से होते हैं; पर के अवलंबन से नहीं होते। अरे, स्वद्रव्य को छोड़कर धर्म कैसे हो सकता है ? परसन्मुख रहकर निमित्त को बदला, इससे क्या? अथवा राग का प्रकार (तीव्र-मंद) बदला, इससे क्या ? जब स्वसन्मुख होकर रागरहित शुद्ध परिणति करेगा, तभी जीव को धर्म और संवर-निर्जरा होगा।

भगवान आदिनाथ ने या भगवान महावीर ने मुनिदशा में जो तप किया, उसमें तो चैतन्य की उग्र शुद्धता का प्रतपन था; बाह्य दृष्टि वाले जीवों ने उस शुद्धता को तो न देखा और बाह्य में अन्न-पानी का संयोग न हुआ, उसे ही तप मान लिया; परन्तु तप का स्वरूप ऐसा नहीं है। तप तो चैतन्य की दशा है, वह शरीर में नहीं रहता। यदि संवर-निर्जरा का सच्चा स्वरूप पहिचाने तो ऐसे तप के सच्चे स्वरूप की पहचान हो। इसलिए सम्यग्दृष्टि को सात तत्त्व की पहचान कैसी होती है, उसका यह वर्णन चल रहा है। उसमें छह तत्त्वों का कथन हुआ, अब आगे सातवाँ मोक्ष तत्त्व कहते हैं। ●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मोक्ष तत्त्व का वर्णन तथा सम्यक्त्व के निमित्तरूप देव-गुरु-धर्म का वर्णन

जीवादि सात तत्त्वों को पहचानकर अपनी श्रद्धा निर्दोष करने के लिए यह कथन चलता है। उसमें छह तत्त्व की बात की, अब सातवाँ मोक्ष तत्त्व कैसा है, यह कहते हैं तथा सम्यग्दर्शन में निमित्तकारणरूप देव-गुरु-धर्म कैसे होते हैं, यह भी दिखाते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

सकल कर्मतैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी॥
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट-अंग-जुत धारो॥१०॥

स्थिर सुखमय अर्थात् ध्रुव शाश्वत सुख से भरपूर और सकलकर्म से रहित – ऐसी जीव की अवस्था, सो मोक्ष है। वही शिवपद है। शिव अर्थात् कल्याण, सुख। इसप्रकार जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष सात तत्त्व की श्रद्धा सम्यग्दृष्टि के होती है, उसे व्यवहार-सम्यक्त्व कहते हैं और सात तत्त्वों में से अभूतार्थ भावों को छोड़कर, जीव के एक शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा करना, सो निश्चय सम्यग्दर्शन है। ऐसे सम्यग्दर्शन को हे भव्यजीवों ! तुम धारण करो।

अब प्रश्न होता है कि इस सम्यग्दर्शन में निमित्त कौन है ? तो कहते हैं कि वीतराग-सर्वज्ञ जिनेन्द्रदेव, शुद्धोपयोग से स्वरूप को साधने वाले निष्परिग्रही गुरु और सारभूत दयामय धर्म – ऐसे देव-गुरु-धर्म को ही सम्यग्दर्शन का निमित्तकारण समझना। इनसे विपरीत को सम्यग्दृष्टि कभी नहीं मानता।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसे सात तत्त्वों को तथा सच्चे देव-गुरु-धर्म को पहचानकर हे जीवों ! तुम निःशंकितादि अष्ट अंग सहित उसे धारण करो। उन निःशंकितादि आठ गुणों का कथन गाथा १२ तथा १३ में करेंगे।

जीव त्रिकाल है और मोक्ष उसकी एक पूर्ण शुद्ध पर्याय है।

जो टिके, सो गुण।

पलटे, वह पर्याय।

अनंत गुण-पर्यायसहित द्रव्य।

द्रव्य-गुण सदैव होते हैं, मोक्षपर्याय नई होती है।

सम्यग्दृष्टि के अभिप्राय में इन सबका स्वीकार आ जाता है।

अरहंत व सिद्ध परमात्मा, सो देव हैं; आचार्य-उपाध्याय-साधु, सो निर्ग्रन्थ गुरु हैं और दयामय ऐसा सारभूत धर्म है। यहाँ व्यवहार सम्यक्त्व का वर्णन है, अत: दयामय धर्म की बात की है। सारभूत दया अर्थात् सच्ची दया जैनधर्म में ही होती है, अन्य में नहीं होती; क्योंकि आलू वगैरह में अनंत जीव हैं, अण्डे वगैरह में पंचेन्द्रिय जीव हैं – ऐसे जीव का अस्तित्व ही जो न जाने, उसको सच्ची दया कहाँ से हो ? जो दया की बात तो करे; परन्तु फिर कंदमूल आदि का भक्षण करने का कहे, रात्रि में भी खाने का कहे, उसके मत में जीवदया कहाँ रही ? अत: जीवदया का सच्चा स्वरूप जैनधर्म में ही है। तदुपरान्त निश्चय से जितनी राग की उत्पत्ति है, इतनी जीव के चैतन्यभाव की हिंसा है और राग न होना, वह अहिंसा है। हिंसा-अहिंसा का ऐसा सूक्ष्मस्वरूप भगवान अरहंतदेव के शासन के बिना अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि देव-गुरु-धर्म का स्वरूप पहचानते हैं और विपरीत को नहीं मानते।

ऐसे वीतरागी देव-गुरु-धर्म ही सम्यक्त्व में निमित्त होते हैं। जैनगुरु अर्थात् जैन साधु सदा निर्ग्रन्थ ही होते हैं; उन्हें बाह्य में वस्त्रादि परिग्रह की बुद्धि नहीं होती और अंतर में मिथ्यात्वादि भाव नहीं होते। जो इससे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विपरीत स्वरूप माने, उसे तो व्यवहार में भी भूल है, सम्यग्दर्शन के सच्चे निमित्त का भी उसे ज्ञान नहीं है।

आत्मा में अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द भरा है, देह तो जड़-धूलि है और रागादिक तो दुःख हैं – ऐसी भिन्नता के भान से सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करके शुद्धता प्रगट करना – यही मोक्षमार्ग है और पूर्ण शुद्धता-पूर्ण ज्ञान-पूर्ण आनन्द प्रगटे, सो मोक्ष है। मोक्ष ही आत्मा का परम हित है और उसका उपाय वीतराग-विज्ञान है, वही सच्ची विद्या है। सच्ची विद्या मोक्ष को देने वाली है – 'सा विद्या या विमुक्तये' – ऐसी मोक्ष की विद्या पूर्व में अनंतकाल से कभी जीव ने नहीं पढ़ी। बाहर की अनेक विद्या पढ़ा और फिर भूला, परन्तु चैतन्यविद्या कभी न पढ़ी। संसार की विद्या से भिन्न तरह की यह मोक्ष की विद्या है; जीव-अजीव के भिन्न-भिन्न स्वरूप को दिखाने वाली यह वीतरागी विद्या है, यही सच्चा विज्ञान है, इसके बिना अन्य सब अज्ञान है।

संसार के लोग देह को ही आत्मा समझकर जितनी भी विद्या पढ़ते हैं, वह सब कुज्ञान है, उसमें आत्मा का हित कुछ भी नहीं है। यह देह तो जड़ है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा नित्य रहता है और शरीर तो भिन्न होकर राख हो जाता है। यदि वह आत्मा का होता तो आत्मा से कभी अलग नहीं होता। जैसे ज्ञान आत्मा का है तो वह आत्मा से कभी भिन्न नहीं होता। शरीर अलग होता है; अतः वह आत्मा से सदैव भिन्न ही है एवं कर्म भी शरीर की ही जाति का है, वे आत्मा की जाति के नहीं हैं, आत्मा से भिन्न हैं।

अहो, जिनभगवान के दर्शाये हुए वीतराग-विज्ञान से ही जड़-चेतन का ऐसा पृथक्करण होता है।

जड़ से भिन्न आत्मा को जानने के बाद, अंदर में जो पुण्य-पाप के भाव होते हैं, उनसे भी आत्मा को भिन्न जानना। पुण्य-पाप राग-द्वेष यह विकृति है, दुःख है, सच्चा आत्मा वह नहीं है। सच्चा आत्मा चेतनारूप

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

व आनन्दरूप है। ऐसे आत्मा की पहचान से जो अंशरूप शुद्धता प्रगटी, वह संवर-निर्जरारूप मोक्षमार्ग है और पूर्ण शुद्धता का प्रगट होना – सो मोक्ष है। अतीन्द्रिय पूर्णसुख के अनुभवरूप ऐसी मोक्षदशा आदरणीय है, वही साध्य है। मुमुक्षु जीव को ऐसे मोक्षपद के बिना दूसरा कोई साध्य नहीं है। मोक्ष के अतिरिक्त अन्य किसी संयोग में या राग में उसे चैन नहीं पड़ता, उसमें किंचित् सुख नहीं लगता।

– जीव का स्वभाव अजीव से भिन्न है और स्वयं सुखरूप है।

– बाह्यसंयोग जीव को सुखरूप नहीं, दुःखरूप भी नहीं।

– रागादि आस्रव दुःखरूप ही हैं, उनमें जरा भी सुख नहीं।

– आत्मा का सम्यग्दर्शनादि सुखरूप हैं, उसमें दुःख नहीं है।

– आस्रव दुःख के कारण है, तातैं इनको तजिये।

– संवर-निर्जरा सुख के कारण हैं–तातैं इनको भजिये।

अरे, अपने सुख-दुःख का कारण कौन है, उसका भी अज्ञानी जीव को पता नहीं है। सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा की पहचान करके (श्रद्धा-ज्ञान करके), उनसे विपरीत ऐसे पुण्य-पाप-आस्रव-बंधरूप अशुद्ध भावों को दुःख के कारण जानकर छोड़ देना चाहिए और शुद्ध आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप संवर को सुखरूप समझकर अंगीकार करना चाहिए।

भगवान आत्मा आनंदस्वरूप है, आनंद बाहर में नहीं है। सच्चे आनंद के वेदन में बाह्यवस्तु निमित्त भी नहीं है, वह तो विषयातीत है, आत्मा में से ही उसकी उत्पत्ति है। मोक्षरूप ऐसा महा-आनन्द जीव का ही स्वभाव है। ऐसे आनन्दरूप जो मोक्षदशा है, वह सम्यक्त्वादि आठ महागुणों से युक्त है और मोहादि आठ कर्मों का उसमें अभाव है। ऐसी मोक्षदशा-सिद्धदशा परमपद सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से ही होती है, अन्य कोई साधन से नहीं होती। यह मोक्षदशा अविनाशी स्थिर सुखमय है, प्रगट होने के बाद वह जैसी की तैसी ही रहती है। साधकभावरूप मोक्षमार्ग का काल तो मर्यादित है (असंख्य समय ही है), किन्तु उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

साध्यरूप मोक्षदशा तो अमर्यादित (सादि-अनंत) है, उसे काल की कोई मर्यादा नहीं है; अनन्तकाल में कभी भी उसके बीच में दुःख नहीं आयेगा, आत्मा सदाकाल सुख में ही विराजमान रहेगा। अहो, ऐसे मोक्षपद को पहचानकर उसकी भावना करना योग्य है।

पहले तो ऐसे तत्त्वों की सच्ची श्रद्धा करनी चाहिए और उनमें से कौन-कौन तत्त्व आदरणीय हैं – यह पहचानना चाहिए। जो बन्ध को भी आदरणीय मानेगा, वह मोक्ष का उपाय कैसे करेगा ? परभावों से भिन्न चैतन्य को अनुभव में लेकर उसकी श्रद्धा करना, सो सम्यग्दर्शन है। आत्मा आनन्द का सागर है, वह स्वयं अपने सन्मुख होने से आनन्द के वेदन सहित वीतरागी श्रद्धा का उत्पादक होता है। चौथे गुणस्थान में भी जो सम्यग्दर्शन है, वह तो रागरहित ही है; उस भूमिका में राग भले हो, परन्तु सम्यग्दर्शन स्वयं तो रागरहित ही है और वह मोक्ष का कारण है। उसके साथ का राग तो बन्ध का कारण है।

प्रथम तो अच्छी तरह से तत्त्व का दृढ़ निर्णय करना चाहिए। निश्चय-व्यवहार को एक-दूसरे में मिलाये बिना दोनों का स्वरूप जैसा है, वैसा जानना चाहिए। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र व्यवहार सम्यग्दर्शन का विषय हैं; निश्चय-सम्यग्दर्शन के विषय में परवस्तु नहीं आती, वह तो अचिंत्यशक्ति से परिपूर्ण अपने आत्मा की ही श्रद्धा करता है। पर से भिन्न और अपने गुण-पर्यायों से अभिन्न – ऐसा मेरा शुद्ध आत्मा ही मेरे लिए आदरणीय है – ऐसा धर्मी जानते हैं। देव-गुरु वगैरह की श्रद्धा को व्यवहारसम्यग्दर्शन कहा; परन्तु इससे ऐसा नहीं समझना कि उनके आश्रय से आत्मा को धर्मलाभ होता है। शुद्ध आत्मा के सम्यग्दर्शन के साथ योग्य भूमिका में ऐसा ही व्यवहार होता है, विरुद्ध नहीं होता – ऐसा जानना।

जो व्यवहार सम्यग्दर्शन है, सो श्रद्धागुण की पर्याय नहीं है; निर्विकल्प प्रतीतिरूप जो निश्चयसम्यग्दर्शन है, वही श्रद्धागुण की पर्याय है; अतः वही सच्चा सम्यग्दर्शन है। भगवान आत्मा चैतन्यपिंड आनंदरस है, वही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन है; अभेदरूप से शुद्ध आत्मा ही सम्यग्दर्शन है – ऐसा समयसार में कहा है। ऐसे सम्यग्दर्शन को अपने हित के लिए आठ अंग सहित धारण करना। निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ व्यवहार सम्यग्दर्शन में आठ अंगों के विकल्प होते हैं। (सम्यग्दृष्टि के निश्चय आठ अंगों का स्वरूप समयसार के निर्जरा अधिकार में कहा है।) व्यवहार सम्यग्दर्शन अकेला (निश्चय से रहित) नहीं होता; हाँ, निश्चयसम्यग्दर्शन अकेला हो सकता है। जैसे सिद्ध व केवली भगवंतों को अकेला निश्चय सम्यग्दर्शन है; परन्तु उनकी तरह पहले गुणस्थान में अकेला व्यवहार सम्यग्दर्शन होने की बात लागू नहीं होती; क्योंकि सच्चे सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टि के अकेले शुभराग को व्यवहार सम्यग्दर्शन नहीं कहा जाता। व्यवहार तो वही सच्चा है, जो निश्चयसापेक्ष हो।

अहा, चैतन्य में अनन्त स्वभाव भरे हैं, उसकी महिमा अद्भुत है। उसके सन्मुख होकर रागरहित निर्विकल्प प्रतीति करने से अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन सहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, उसमें अनन्त गुणों के निर्मल भाव समाते हैं; वह मोक्षमार्ग है; उसके साथ का राग, जो कि सचमुच में मोक्षमार्ग नहीं है; उसको मोक्षमार्ग कहना, सो व्यवहार है। वह बिल्ली को सिंह कहने जैसा है अर्थात् यह सच्चा सिंह नहीं है, इससे भिन्न दूसरा सच्चा सिंह है, यह लक्ष में रखकर बिल्ली में सिंह का उपचार है; परन्तु जो सच्चे सिंह को लक्ष में नहीं लेते और बिल्ली को ही सच्चा सिंह मान लेते हैं, उनके लिए तो वह उपचार भी सच्चा नहीं है; व्यवहार का और निश्चय का – किसी का उन्हें ज्ञान नहीं है, वे देशना को समझे ही नहीं हैं। मुख्य के बिना उपचार किसका ? निश्चय के बिना व्यवहार किसका? जहाँ सच्चा मोक्षमार्ग लक्ष में हो, वहीं पर रागादि अन्य में मोक्षमार्ग का उपचार आता है; उसमें भी सच्चा मोक्षमार्ग तो एक ही है, उसको अच्छी तरह पहचान कर उसका सेवन करना।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सम्यक्त्व के गुण-दोष को जानकर उसके ग्रहण-त्याग का उपदेश

निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ में सात तत्त्व की श्रद्धा, सच्चे देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा और आठ अंग का पालन इत्यादि व्यवहार कैसा होता है, वह दिखलाया और उसे धारण करने को कहा। अब पच्चीस दोष दिखाकर उनका त्याग करने को कहते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

वसु मद टारि निवारि त्रिशठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो॥
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपै कहिये।
बिन जाने तैं दोष गुनन कों, कैसे तजिये गहिये॥११॥

यह व्यवहार सम्यग्दर्शन में भी दोषरहित होने की बात है। जातिमद आदि आठ मद, देवमूढ़ता आदि तीन मूढ़ता, कुदेवादि छह अनायतन और शंकादिक आठ दोष – ऐसे पच्चीस दोष हैं; उन्हें पहचानकर छोड़ देना चाहिए और संवेग आदि में चित्त को जोड़ना चाहिए। इसप्रकार निःशंकतादि आठ अंग का पालन और शंकादिक पच्चीस दोषों का त्याग करने का कहा; परन्तु गुण और दोषों का स्वरूप पहचाने बिना गुण का ग्रहण व दोष का त्याग कैसे होगा ?

अत: आगे की गाथा में गुण और दोष दोनों के स्वरूप की पहचान कराते हैं, उसे जानकर गुणों का ग्रहण करना और दोषों का त्याग करना। सम्यग्दर्शन के लिए कौन-से भाव दोषरूप हैं, उन्हें पहचाने तो उनका त्याग करे और सम्यग्दर्शन के लिए कौन-से भाव गुणरूप हैं, उन्हें पहचाने

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तो उनका ग्रहण करे। जब दोष को पहचाने ही नहीं, तब उन्हें कैसे छोड़े ? और गुण को पहचाने ही नहीं, तब उनका ग्रहण कैसे करे ? अत: गुण का ग्रहण व दोष का त्याग करने के लिए उन दोनों का स्वरूप पहचानना चाहिए।

दोष को दोषरूप से जानना, वह तो दोष का कारण नहीं है; यदि दोष को जानते हुए उसी में रुक जाये और गुणस्वभाव का ग्रहण न करे तो उसे गुण प्रगट नहीं होते और दोष नहीं टलते; परन्तु दोष और गुण दोनों को जानकर जहाँ गुणस्वभाव की ओर झुका, वहाँ दोष नहीं रहते। जो गुण और दोष दोनों का सच्चा स्वरूप पहचाने, वह अवश्य गुण की ओर उन्मुख होगा और दोषों से विमुख होगा। इसप्रकार गुण-दोष को जानकर गुण का ग्रहण करने के लिए व दोष का त्याग करने के लिए अब संक्षेप में उनका स्वरूप कहते हैं।

तदुपरान्त प्रशम-संवेग-आस्तिक्य और अनुकम्पा में भी सम्यग्दृष्टि अपने चित्त को लगाता है अर्थात् सम्यग्दृष्टि के परिणाम में उसप्रकार की विशुद्धि रहती है। अनन्तानुबंधी कषाय तो उसके सर्वथा छूट गये हैं और अन्य कषायें भी मंद हो गई हैं; अत: उसके प्रशांतभाव, संसार से विरक्तभाव और मोक्षमार्ग के प्रति उत्साह, सर्वज्ञदेव और उनके कहे हुए तत्त्वों के प्रति दृढ़ विश्वासरूप आस्तिक्य तथा संसार के दुखी जीव (आप स्वयं एवं दूसरे) दुखों से छूटकर मोक्षसुख पावें – ऐसे विचाररूप अनुकम्पा, ऐसा परिणाम सहज ही होता है; अत: उपदेश में ऐसा कहा है कि उन संवेगादिक में चित्त को लगाओ।

अब अगले छन्द में गुण-दोषों के कथन में प्रथम सम्यक्त्व के आठ गुण कहते हैं और बाद में पच्चीस दोष कहेंगे।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सम्यग्दृष्टि के निःशंकता आदि आठ गुण

आठ अंगसहित सम्यक्त्व धारण करने का कहा; वे आठ अंग अर्थात् आठ गुण कौन-कौन-से हैं ? यह दिखाते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

जिन वच में शंका न धार वृष, भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व-कुतत्त्व पिछानै॥
निज गुण अरु पर औगुण ढाँके, वा निजधर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृषतैं चिगते, निज पर को सु दिढ़ावै॥१२॥
धर्मी सों गौ-वच्छ-प्रीति सम, कर जिनधर्म दिपावै।
इन गुणतैं विपरीत दोष वसु, तिनकों सतत खिपावै॥

परद्रव्यों से भिन्न अपने शुद्ध एकत्वस्वरूप की रुचि-प्रतीति-श्रद्धा, सो सम्यग्दर्शन है, उसकी अद्भुत महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शन के साथ में शंकादि आठ दोषों के अभावरूप निःशंकतादि आठ गुण होते हैं, उनका यह वर्णन है –

१. जिनवचन में शंका नहीं करना यह निःशंकित गुण है।

२. धर्म के फल में संसारसुख की वांछा नहीं करना। सांसारिक सुख वह तो पुण्य का फल है, वह वीतरागी धर्म का फल नहीं है। अतः धर्मात्मा को उसकी चाह नहीं होती। यह निःकांक्षित गुण है।

३. मुनि की देह की मलिनता आदि को देखकर धर्म के प्रति घृणा नहीं करना। उनके धर्म का परम बहुमान करना। यह निर्विचिकित्सा गुण है।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४. तत्त्व और कुतत्त्व, वीतरागदेव और कुदेव इत्यादि के स्वरूप की पहचान करनी, इनमें मूढ़ता नहीं रखनी। यह अमूढ़दृष्टि गुण है।

५. अपने गुण को तथा अन्य साधर्मी के अवगुण को ढँकना और स्व-पर में वीतरागभावरूप आत्मधर्म की वृद्धि करना, उसका नाम उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग है।

६. लोभ-कामवासना आदि के कारण से अपना या पर का आत्मा धर्म से डिग जाने का या शिथिल होने का प्रसंग हो, तब वैराग्य भावना से एवं धर्म की महिमा के द्वारा धर्म में स्थिर करना, दृढ़ करना, सो स्थितिकरण है।

७. अपने साधर्मीजनों के प्रति गौवत्स समान सहज प्रेम रखना, सो वात्सल्य है।

८. अपनी शक्ति से जैनधर्म की शोभा बढ़ाना, उसकी महिमा प्रसिद्ध करके प्रभाव बढ़ाना, सो प्रभावना है।

ऐसे निःशंकितादि आठ गुणों के सेवन से सम्यग्दृष्टि जीव शंकादि आठ दोषों को दूर करते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन में तो पर से भिन्न अपने शुद्धात्मा की निःशंक श्रद्धा है और उससे भिन्न समस्त परभावों की या संसार की वांछा का अभाव है। उसके साथ में जो व्यवहार आठ अंग होते हैं, उनका यह वर्णन है। सम्यक्त्व के निःशंकितादि आठ गुणों और शंकादिक पच्चीस दोषों को जानकर, गुणों का ग्रहण व दोषों का त्याग करने के लिए यह कथन है। (इस डेढ़ गाथा में आठ गुण दिखाये हैं, आगे की डेढ़ गाथा में पच्चीस दोष कहेंगे।)

१. निःशंकता-अंग का वर्णन

सर्वज्ञदेव ने जैसा कहा, वैसा ही जीवादि तत्त्व है, उसमें धर्मी को शंका नहीं होती। उसने सर्वज्ञ के स्वरूप का निर्णय तो किया है, अतः पहचान सहित की निःशंकता की यह बात है; पहचान के बिना मान लेने की यह बात नहीं है। जीव क्या है, अजीव क्या है ? इत्यादि तत्त्वों को अरिहन्तदेव के कहे अनुसार स्वयं समझकर उनकी निःशंक श्रद्धा करना

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

चाहिए। यदि कोई सूक्ष्म तत्त्व समझ में न आवे और विशेष जानने की जिज्ञासा से सन्देहरूप प्रश्न हो – तो इससे कहीं जिनवचन में सन्देह नहीं हो जाता। सर्वज्ञकथित जैनशास्त्रों में जो कहा है, वह सच्चा होगा कि आधुनिक विज्ञान वाले लोग कहते हैं वह सच्चा होगा, ऐसा सन्देह धर्मी को नहीं रहता।

अहा, सर्वज्ञस्वभाव जिसकी प्रतीति में आया, परम अतीन्द्रियवस्तु जिसकी प्रतीति में आई, उसे सर्वज्ञकथित छह द्रव्य, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, द्रव्य-गुण-पर्याय इत्यादि (अपने को वे प्रत्यक्ष न होते हुए भी) उनमें शंका नहीं रहती। निश्चय से अपने ज्ञानस्वभावरूप आत्मा में परम निःशंकता है और व्यवहार में देव-गुरु-धर्म में निःशंकता है। क्या जैनधर्म एक ही सच्चा होगा कि जगत् में दूसरे धर्म कहलाते हैं, वे भी सच्चे होंगे ? ऐसी शंका जिसके है, उसे तो स्थूल मिथ्यात्व है, व्यवहारधर्म की निःशंकता भी उसके नहीं है। वीतरागी जैनधर्म के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग की मान्यता धर्मी के कभी नहीं होती।

जैसे बालक अपनी माँ की गोद में निःशंक है कि यह मेरी माँ मेरा भला ही करेगी; उसको कोई सन्देह नहीं होता कि कोई मुझे मारेगा तो मेरी माँ मुझको बचायेगी कि नहीं ? वैसे जिनवाणी माता की गोद में धर्मी निःशंक है कि यह जिनवाणी माँ मुझे सत्यस्वरूप दिखाकर मेरा हित करने वाली है संसार से वह मेरी रक्षा करेगी। जिनवाणी में उसे सन्देह नहीं रहता। परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ अरहंत जिनपरमात्मा, जिन्होंने अपने केवलज्ञान में वीतरागभाव से सारे विश्व को देखा है, ऐसे परमात्मा को पहचानकर उनमें निःशंक होना और उनके कहे हुए मार्ग में तथा जीवादि तत्त्वों में निःशंक होना, यह निःशंकता गुण है।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में सम्यक्त्व के इन आठ अंगों के पालन में प्रसिद्ध आठ जीवों का उदाहरण दिया है; उनमें निःशंकित अंग में अंजन चोर का दृष्टांत दिया है। (इन आठ अंग की

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आठ कथाएँ आप 'सम्यक्त्वकथा' नामक पुस्तक में अथवा 'सम्यग्दर्शन' गुजराती चौथी पुस्तक में पढ़ सकेंगे।) समझाने के लिए प्रत्येक अंग का अलग-अलग दृष्टान्त दिया है; वैसे तो सम्यग्दृष्टि जीवों को एक साथ आठों अंगों का पालन होता है, उनमें से प्रसंग अनुसार किसी अंग को मुख्य कहा जाता है।

२. नि:कांक्षा अंग का वर्णन

धर्मीजीव धर्म के फल में भवसुख की वांछा नहीं करते, अत: पुण्य को या पुण्य के फल को वे नहीं चाहते; धर्म से मुझे स्वर्गादि का सुख मिले – ऐसी वांछा, सो भवसुख की वांछा है, ऐसी वांछा अज्ञानी के होती है। ज्ञानी ने तो अपने आत्मिक सुख का अनुभव किया है, अत: अन्यत्र कहीं पर भी उसे सुखबुद्धि नहीं है, इसलिए वह निष्कांक्ष है। सम्यग्दृष्टि ने आत्मिक सुख का वेदन करके भवसुख की वांछा नष्ट कर दी है। यही उसका निष्कांक्षगुण है। 'भवसुख' यह अज्ञानी की भाषा में कहा है; सचमुच में भव में सुख है ही नहीं, किन्तु अज्ञानी लोग देवादि के भव में सुख मानते हैं, इन्द्रियविषयों में सुख मानते हैं, आत्मा के सुख को तो वे पहचानते नहीं। अरे, सम्यग्दृष्टि तो आत्मा के सुख का स्वाद लेने वाला, मोक्ष का साधक! वह संसार-भोग को क्यों इच्छे? जिसके वेदन में जीव अनादिकाल से दुःखी हुआ, उसकी वांछा ज्ञानी कैसे करे ? भव-तन-भोग यह तो ज्ञानी को अनादिकाल की उच्छिष्ट के समान (वमन के समान) दिखते हैं; जीव अनन्त बार उन्हें भोग चुका, परन्तु सुख की एक बूँद भी उनमें से न मिली।

धर्म का प्रयोजन क्या है ? धर्म का प्रयोजन, धर्म का फल तो आत्मसुख की प्राप्ति है; धर्म का फल कहीं बाहर में नहीं आता। जिसने आत्मसुख का स्वाद नहीं जाना, उसके अन्तर में संसार-भोग की चाहना रहा करती है तथा उसके कारणरूप पुण्य की व शुभराग की भी रुचि उसे रहती है, अत: उसे सच्चा निष्कांक्षपना नहीं होता। भले ही वह राजपाट, घर-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

परिवार इत्यादि को छोड़कर त्यागी हुआ हो, परन्तु जब तक राग से भिन्न चैतन्यरस का स्वाद नहीं लिया (अनुभव नहीं किया), तब तक उसे संसार-भोग की वांछा विद्यमान रहती है और सम्यग्दृष्टि जीव राजपाट, घर-परिवार इत्यादि संयोग में रहा हो, उसके संबंधी राग भी हो, (वास्तव में तो वह अपनी चेतना में ही तन्मय रहता है, अन्यत्र कहीं नहीं वर्तता, किन्तु संयोग की अपेक्षा से राजपाट में व राग में वर्तना कहा है;) परन्तु अंतर में उन सबसे पार अपने चैतन्यरस का आनंद चख लिया है; अत: उसको उनमें कहीं स्वप्न में भी सुखबुद्धि नहीं है; अतएव राग होने पर भी श्रद्धा के बल से उसे निष्कांक्षता ही है। धर्मी की यह कोई अलौकिक दशा है, जिसे अज्ञानी नहीं पहचान सकता और जो पहचाने उसे अज्ञान नहीं रहता।

लोग कहते हैं कि हम धर्म करेंगे, इससे धन मिलेगा और हम सुखी होंगे, किन्तु ऐसी मान्यता वाले को न धर्म की पहचान है, न सुख की। वे तो शुभराग को – पुण्य को धर्म समझ रहे हैं और उसके फल में धन वगैरह मिले, उसको सुख मानते हैं; उससे भिन्न आत्मा के अस्तित्व की तो उन्हें पहिचान ही नहीं है। अरे भाई ! धर्म के फल में कहीं बाहरी धन नहीं मिलता और धनादिक का मिलना, वह तो कहीं धर्म का प्रयोजन नहीं है। धन के लिए धर्म नहीं किया जाता। धर्म का प्रयोजन तो आत्मिक सुख है; और उस सुख में धनादि की जरूरत नहीं पड़ती। वह संयोगरहित स्वाभाविक सुख आत्मा में से ही उत्पन्न होता है। ऐसे सुख को जानकर जिसने अनुभव किया, उसको संसार में अन्य किसी की भी वांछा नहीं रहती, कहीं भी सुख की कल्पना नहीं रहती।

धर्मात्मा को धर्म के साथ के राग के कारण से पुण्य बँध जाये और उस पुण्य के फल में बाहर का वैभव मिले, परन्तु धर्मी को उसकी वांछा नहीं है, वह अपने आत्मा को उससे अत्यंत भिन्न जानते हैं। धर्म के फल में मुझे पुत्र मिले, धन मिले – ऐसी वांछा धर्मी के नहीं है। धर्मी जीव देव-गुरु के आश्रय से लौकिक हेतु की आशा नहीं रखता। व्यापार-लग्न-

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वास्तु इत्यादि प्रसंग में शुभराग से भगवान को याद करे, उसमें भवसुख की वांछा का अभिप्राय धर्मी को नहीं है। जो सर्वज्ञ का भक्त हुआ, उसे संसार की वांछा नहीं रह सकती। राग का एक कण भी मेरे ज्ञान में नहीं है – ऐसा जानने वाला ज्ञानी उस राग के फल को कैसे वांछे ? धर्म के सेवन में उसे मोक्षरूप परमसुख के सिवा अन्य किसी की भी आशा नहीं है। धर्म का फल तो वीतरागी सुख है; बाह्य वैभव या इन्द्रादि पद यह कोई धर्म का फल नहीं है, वह तो राग का – विकार का फल है। अज्ञानी उस पुण्यरूप धर्म को चाहता है; अत: वह भोगहेतु धर्म का सेवन करता है – ऐसा समयसार में कहा है; रागरहित शुद्ध आत्मा के अनुभवरूप मोक्षहेतु धर्म को वह नहीं जानता।

अंतर के अनुभव में अपने चैतन्य परमदेव का अनुभव करने वाले धर्मात्मा जानते हैं कि मेरा यह चैतन्यचमत्कार आत्मा ही मुझे परम सुख देने वाला है, इसके सिवा मैं अन्य किसकी वांछा करूँ ? अरे ! स्वर्ग का देव आवे तो भी उसके पास से तुझे क्या लेना है ? स्वर्ग के देव के आगमन की बात सुनकर अज्ञानी को तो चमत्कार लगता है और उसकी महिमा में धर्म की महिमा को भूल जाता है, क्योंकि स्वयं उसके मन में स्वर्गादिक की वांछा है। अरे, मूर्ख लोग तो सर्प-बन्दर-गाय इत्यादि तिर्यंच प्राणियों को भी देव-देवी मानकर पूजते हैं। अपने को जैन कहलाने वाले भी अनेक लोग भोग की वांछा से या रोग मिटने की वांछा से अनेक देव-देवियों की पूजा-मानता करते हैं, क्या मूर्ख को कहीं विवेक होता है ? अरहंत भगवान का सच्चा भक्त प्राण के छूट जाने पर भी मिथ्या देव-देवी को पूजते नहीं। वीतराग धर्म के सेवन के फल में धनादि बाह्य वस्तु मिलने की वांछा धर्मी नहीं रखते। इसप्रकार धर्मात्मा निष्कांक्ष भाव से धर्म का सेवन करते हैं।

प्रश्न – व्यापारादि में धन मिले – ऐसी वांछा तो धर्मी के भी रहती है, तब फिर उसे निष्कांक्षपना कैसे रहा ?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उत्तर – उसे अभी उसप्रकार का अशुभराग है; परन्तु इस राग से या धन से मुझे सुख मिलेगा – ऐसी मिथ्याबुद्धिरूप वांछा उसे नहीं है। राग और संयोग दोनों से पार मेरी चेतना है, उसमें ही मेरा सुख है, ऐसा जानने वाला धर्मात्मा उस धर्मचेतना के फल में बाह्यसामग्री कभी नहीं चाहता, इसलिए वह निष्कांक्ष है। वह धर्मात्मा कदाचित् इन्द्रपद या चक्रवर्ती पद के वैभव का उपयोग करता दिखे, किन्तु उसके ज्ञान में विषय-भोगों का रंचमात्र आदर नहीं है। अरे, हम तो अतीन्द्रिय आनन्द के पिण्ड हैं, हमारे आत्मा को छोड़कर जगत् में कहीं भी हमारा आनन्द है ही नहीं। इसलिए कहा है कि –

चक्रवर्ती की संपदा, इन्द्र सरीखे भोग।
काकबीट सम गिनत हैं, सम्यग्दृष्टि लोग॥

(उक्त दोहा इन्दौर में श्री हुकमचन्दजी सेठ के जिनमंदिर में भी लिखा है।)

विषयों के विकल्पों को धर्मीजीव दु:ख एवं जेल के समान गिनते हैं, उसमें सुखबुद्धि नहीं, अत: उसकी वांछा नहीं है। उत्तम वस्तु खाते-पीते हो, अच्छे वस्त्र पहिनते हो, स्त्री-पुत्रादिक के बीच बैठे हो, तो क्या धर्मी उसमें सुख मानते होंगे ? नहीं, जरा भी नहीं। आनन्दस्वरूप मेरा आत्मा ही है, पर में सुख जरा भी नहीं ऐसी निःशंक प्रतीति वाला धर्मात्मा देवलोक के सुख को भी नहीं वांछते। उसमें सुख है ही नहीं, फिर वांछा कैसी ? चैतन्य के अतीन्द्रिय आनन्द के पास स्वर्ग के वैभव की भी कोई गिनती नहीं। इन्द्र के वैभव में उस सुख की गंध भी नहीं है। हाँ, सम्यग्दृष्टि-इन्द्र को आत्मा का सुख होता है – यह बात दूसरी है, किन्तु बाह्य वैभव में तो उसकी गंध भी नहीं है और इन्द्र स्वयं भी उसमें सुख नहीं मानता।

अज्ञानी बाह्य में भले ही विषयों का त्यागी हो, परन्तु अभिप्राय में उसको विषयों की वांछा है, क्योंकि राग में सुखबुद्धि है। चैतन्य का इन्द्रियातीत सुख जिसने नहीं देखा, उसको राग में और विषयों में सुखबुद्धि का अभिप्राय रहता ही है। यदि उसमें मिठास न लगती हो तो परिणति

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उससे हटकर अपने चैतन्य सुख में क्यों नहीं आ जाती ? उसने चैतन्यसुख को देखा नहीं और इन्द्रियविषयों में सुख माना, इसलिए उसकी वांछा नहीं मिटी; भले विषयों की अभिलाषा प्रगट न दिखती हो, परन्तु अंतर के अभिप्राय में तो विषयों की आकांक्षा विद्यमान ही है।

और सम्यग्दृष्टि तो सिद्ध का पुत्र हो गया; वह तो अखंड एक आनंद रसमय ज्ञायकस्वभाव की अनुभूति करके जितेन्द्रिय हो गया। आत्मा को छोड़कर जगत् में कहीं भी उसे सुखबुद्धि नहीं है। पाँचों इन्द्रिय संबंधी राग की वृत्ति आती है तो वे उसमें सुख मानते होंगे – ऐसा जरा भी नहीं है। उन्हें अंतर के आत्मिक आनंद की ही भावना है। अहा, धर्मात्मा की चेतना के खेल तो धर्मी ही जानते हैं। अज्ञानी बाह्य नेत्र के द्वारा धर्मी का सच्चा माप नहीं निकाल सकता। धर्मी का अंतर/हृदय बाहर से देखा नहीं जाता। धर्मी जानते हैं कि मेरा धर्म मेरे में है, उसका फल बाहर में से नहीं आता। बाहर का जो पुण्यफल है, वह तो चावल के ऊपर छिलके जैसा है, अज्ञानी लोग उसे ही देखते हैं, अन्दर के सच्चे वीतरागी रस को वे नहीं देखते। धर्म के बदले में लौकिक फल को धर्मी नहीं चाहते; दुनिया को दिखाने के लिए वे धर्म नहीं करते। धर्मी का धर्म तो अपने आत्मा में ही समाता है और उसका फल भी आत्मा में ही आता है।

कोई देव सेवा करने को आवे तो धर्मी उससे मोहित नहीं हो जाता और कोई देव आकर त्रास दें तो उससे डरकर धर्मी अपने धर्म को नहीं छोड़ता। ऐसे कोई देव-देवी को धर्मबुद्धि से वह नहीं मानता। मैं धर्म करता हूँ तो स्वर्ग का कोई देव प्रसन्न होकर मुझे धनादि का लाभ कर देगा – ऐसी बुद्धि धर्मी के नहीं होती। सर्वज्ञ-वीतराग अरहंतदेव को छोड़कर अन्य कुदेव को वह अपना सिर कभी नहीं झुकाता। मैं वीतरागता का साधक हूँ, अत: वीतराग को छोड़कर अन्य किसी को मैं देव मानूँ नहीं। चैतन्य के वीतरागस्वभाव के अतिरिक्त पुण्य की भी जहाँ वांछा नहीं, वहाँ बाहर के पाप-भोगों की बात कैसी ? देखो तो सही, इतनी बात तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन के साथ के व्यवहार में आ जाती है। सम्यग्दर्शन की निश्चय अनुभूति का तो कहना ही क्या ?

अरे, दुनिया के लोग तो बाहर के तुच्छ चमत्कार में मोहित हो जाते हैं; परन्तु ऐसा (हाथ में से कुमकुम निकालना इत्यादि) चमत्कार तो तुच्छ अभव्य देव भी दिखला सकता है। उसमें आत्मा का कौन-सा हित है ? धर्मी तो जानते हैं कि सर्वज्ञता और वीतरागता वही मेरे भगवान का सच्चा चमत्कार है; इसके सिवा बाहर के कोई चमत्कार के हेतु वे भगवान को नहीं मानते। बाह्य संयोग का आना-जाना तो पुण्य-पाप के अनुसार हुआ करता है, धर्म के साथ उसका संबंध नहीं है। धर्मी जीव धर्म के फल में बाहर की आकांक्षा नहीं करते। जहाँ राग से भिन्न आत्मिक आनंद का स्वाद अपने में आया, तब फिर भवसुख की वांछा कैसे रहे ? 'भवसुख' वास्तव में सुख नहीं, किन्तु दु:ख ही है। भव कहने से उसमें संसार की चारों गतियाँ आ गईं, स्वर्ग भी उसमें आ गया, अत: देवगति के सुख को भी धर्मी नहीं चाहता। सम्यग्दृष्टि का ऐसा निष्कांक्ष अंग है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि के आठ गुणों में से दूसरा गुण कहा। इस नि:कांक्षा अंग के पालन में सती अनंतमती का उदाहरण प्रसिद्ध है, जो आप 'सम्यक्त्व कथा' में पढ़ सकेंगे।

३. निर्विचिकित्सा अंग का वर्णन

जिसने आत्मा और शरीर को भिन्न जान लिया है – ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, देहादि में अशुचि देखकर आत्मा के धर्म के प्रति ग्लानि नहीं करता; किसी मुनि वगैरह धर्मात्मा का शरीर मलिन या रोग वाला देखकर उनके प्रति उसे घृणा-ग्लानि नहीं होती, परन्तु शरीर मलिन होने पर भी अंतर में आत्मा तो पवित्र चैतन्यधर्मों से शोभित हो रहा है, उसका उसे बहुमान आता है। 'ऐसे मलिन कोढ़ी शरीर वाले को कैसे धर्म होता है ?' ऐसी दुगुंधा का भाव उसे नहीं आता। यह सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अंग है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सर्वज्ञ के देह में तो अशुचि होती ही नहीं, उन्हें रोगादि भी नहीं होते। साधक-धर्मात्मा-मुनि वगैरह के देह में मलिनता हो, रोगादि हो, कभी कोढ़ भी हो जाये, शरीर सड़ जाये तो उसे देखकर धर्मी विचार करते हैं कि अहो, यह आत्मा तो अन्तर में सम्यग्दर्शनादि अपूर्व रत्नों से अलंकृत है, देह के प्रति उन्हें कोई ममत्वबुद्धि नहीं है, रोगादि तो देह में होते हैं और देह तो स्वभाव से ही अशुचिरूप है; इसप्रकार देह और आत्मा के भिन्न-भिन्न धर्मों का विचार करके धर्मी जीव देह को मलिन देख करके भी धर्मात्मा के गुणों के प्रति ग्लानि नहीं करते। शरीर में भी रागादि मलिनता हो जाये तो उससे वे अपने धर्मों से नहीं डिगते और उसमें शंका भी नहीं करते। मुनि तो देह के प्रति अत्यन्त उदासीन होते हैं, वे स्नानादि भी नहीं करते, देह की शोभा का उन्हें लक्ष्य नहीं है, वे तो स्वानुभूतिरूप स्नान के द्वारा आत्मा को निर्मल करने वाले हैं, रत्नत्रय ही उनका शृंगार है। अहो! ऐसे मुनिराज को देखकर रत्नत्रयधर्म के बहुमान से उनके चरणों में सिर झुक जाता है।

अरे, देह तो स्वभाव से ही अशुचि का धाम और क्षणभंगुर है; और धर्मात्मा तो रत्नत्रय से सहज पवित्र है। शरीर में सुगन्ध हो कि दुर्गन्ध – यह तो जड़ का धर्म है। ऐसा कोई नियम नहीं है कि धर्मी का शरीर कुरूप न हो; किसी का शरीर कुरूप भी हो, आवाज भी स्पष्ट न निकलती हो, लेकिन इससे क्या? अन्तर में तो धर्मात्मा अपने को देह से भिन्न अशरीरी ज्ञानमय अनुभव करते हैं। रत्नकरण्डश्रावकाचार में समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि –

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातङ्गदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्॥२८॥

चांडाल के देह में रहा हुआ भी सम्यग्दृष्टि आत्मा देव समान शोभता है, भस्म से ढँके हुए अग्नि के अंगार की तरह देवरूपी भस्म के अन्दर सम्यक्त्वरूप औजस से वह आत्मा शोभता है, वह प्रशंसनीय है। इसप्रकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा के सम्यक्त्व को पहचानने वाले जीव शरीरादिक अशुचि को देखकर भी धर्मात्मा के प्रति घृणा-तिरस्कार नहीं करते, किन्तु उनके पवित्र गुणों के प्रति प्रेम व आदर करते हैं; ऐसा निर्विचिकित्सा अंग है। (इस निर्विचिकित्सा अंग के लिए उदयन राजा का दृष्टान्त शास्त्रों में प्रसिद्ध है; वह 'सम्यक्त्व कथा' आदि ग्रन्थों में आप पढ़ सकते हैं।)

किसी धर्मात्मा के पुण्य अल्प हो, उससे क्या ? पुण्य तो उदयभाव का फल है, उससे आत्मा की कहीं शोभा नहीं; आत्मा तो सम्यक्त्वादि से ही शोभता है। धर्म में तो गुण से ही शोभा है, पुण्य से नहीं। कुत्ता जैसा एक तिर्यंच भी यदि सम्यक्त्वसहित हो तो शोभा पाता है, जबकि मिथ्यादृष्टि बड़ा देव हो तो भी शोभा नहीं पाता। अल्प पुण्योदय के कारण से कोई धर्मात्मा निर्धन हो, कुरूप भी हो और स्वयं धनवान-रूपवान हो तो इस कारण से धर्मी दूसरे साधर्मी से अपनी अधिकता नहीं मानता और दूसरे का तिरस्कार नहीं करता; परन्तु उसके गुण की प्रीतिपूर्वक आदर करता है कि वाह ! देहादि की इतनी प्रतिकूलता होने पर भी ये धर्मात्मा अपने धर्म को अच्छी तरह साध रहे हैं, उनको धन्य है।

पुण्य के तो अनेक प्रकार हैं, उसमें हीनाधिकता हो, उससे क्या ? अन्तर का धर्म तो पुण्य से अलग है। इसप्रकार देह और आत्मा के धर्मों की भिन्नता जानने से देहादि की हीनता देखकर भी धर्मात्मा के गुणों के प्रति अनादर का भाव नहीं होता, किन्तु गुणों के प्रति प्रेम आता है – ऐसा सम्यक्त्व का तीसरा अंग है।

४. अमूढ़दृष्टि अंग का वर्णन

आत्महित का सत्य मार्ग जिसने जान लिया है – ऐसा धर्मात्मा सच्चे-झूठे की परीक्षा करने में जरा भी नहीं घबराता, सच्चे देव-गुरु-धर्म और झूठे देव-गुरु-धर्म उन्हें अच्छी तरह पहचान कर वह असत्य मार्ग की प्रशंसा भी छोड़ देता है। अंतर में तो असत्यमार्ग को दु:खदायक जानकर छोड़ ही दिया है और मन से, वचन से, काया से भी वह कुमार्ग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

की प्रशंसा या अनुमोदना नहीं करता। कुमार्ग का सेवन बहुत लोग करते हों, बड़े-बड़े राजा भी उसका सेवन करते हों तो भी धर्मात्मा को सन्देह नहीं होता कि उसमें कुछ सच्चा होगा ? वह तो अपने जिनमार्ग में नि:शंक रहता है – ऐसा अमूढ़ दृष्टिपना धर्मी को होता है।

वीतराग-सर्वज्ञ अरहंत व सिद्ध परमात्मा को छोड़कर अन्य किसी देव को वह नहीं मानता।

रत्नत्रयधारी निर्ग्रन्थ मुनिराज को छोड़कर अन्य किसी कुगुरु को वह नहीं मानता।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागधर्म, उसके अतिरिक्त अन्य कोई धर्म को वह मोक्ष का कारण नहीं मानता और उसका सेवन भी नहीं करता।

इसप्रकार देव-गुरु-धर्म के संबंध में धर्मी को मूढ़ता नहीं होती। कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को मानने वाला जीव समाज में करोड़ों मूढ़ लोगों के द्वारा पूजा जाता हो। अरे ! देव उसके पास आते हों तो भी धर्मी को मार्ग की शंका नहीं होती और तत्त्वनिर्णय में वह नहीं घबराता। निश्चयरूप जो अपना शुद्ध आत्मस्वरूप है, उसमें तो वह नि:संदेह है, दृढ़ है और व्यवहार में अर्थात् देव-गुरु-शास्त्र-तत्त्व इत्यादि के निर्णय में भी वह नि:संदेह है, दृढ़ है। सुख का मार्ग ऐसा वीतराग जैनमार्ग और दु:ख का मार्ग ऐसा कुमार्ग, उसकी अत्यन्त भिन्नता जानकर कुमार्ग की सेवा-प्रशंसा-अनुमोदना सर्वप्रकार से छोड़ देता है।

कुमार्ग के मानने वाले बहुत जीव हों और सत्यमार्ग के जानने वाले जीव बहुत कम हों; किन्तु इससे धर्मात्मा को घबराहट नहीं होती कि कौन-सा मार्ग सच्चा होगा ? अरे, चाहे मैं अकेला होऊँ तो भी मेरे हित का मार्ग मैंने जान लिया है, वही परम सत्य है और ऐसा हितमार्ग दिखाने वाले वीतरागी देव-गुरु ही सच्चे हैं। स्वानुभव से मेरा आत्मतत्त्व मैंने

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जान लिया है। इससे विरुद्ध जो कोई मान्यतायें हों, वे सब झूठी हैं; ऐसी निःशंकता से धर्मी जीव ने कुमार्ग की मान्यता को असंख्य आत्मप्रदेशों में से निकाल दी है। वह शुद्ध दृष्टिवंत जीव किसी भय से, आशा से, स्नेह से या लोभ से कुदेवादि के प्रति प्रणाम, विनयादि नहीं करता।

अरे जीव ! तुझे ऐसा मनुष्यत्व मिला; ऐसा सत्य धर्म का योग मिला, तो अब इस अवसर में तेरी विवेकबुद्धि से सत्य-असत्य की परीक्षा द्वारा निर्णय कर, आत्मा के लिए परम हितकर ऐसे सर्वज्ञ भगवान के मार्ग का स्वरूप समझकर उसका सेवन कर और कुमार्ग के सेवनरूप मूढ़ता को छोड़। अरहंत भगवान का मार्ग जिसने जान लिया है, वह जीव जगत् में कहीं भ्रमित नहीं होता; भगवान के मार्ग का निःशंकता से सेवन करता हुआ वह मोक्ष को साधता है। सम्यग्दृष्टि का ऐसा अमूढ़दृष्टित्व-अंग है।

(इस अमूढ़दृष्टित्व अंग के पालन में रेवती-रानी का उदाहरण शास्त्र में प्रसिद्ध है, वह 'सम्यक्त्वकथा' आदि पुस्तक में देख लेना चाहिए)। इसप्रकार सम्यक्त्व के चौथे अंग का वर्णन किया।

५. उपगूहन (उपबृंहण) अंग का वर्णन

अपने गुणों की प्रशंसा न करना, दूसरे की निंदा न करना, साधर्मी द्वारा कोई दोष लग गया हो तो उसे ढँकना और उस दोष को दूर करने का प्रयत्न करना तथा गुण की, धर्म की वृद्धि हो, ऐसा उपाय करना – ऐसा भाव, सो सम्यग्दृष्टि का उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग है।

धर्मात्मा को ऐसी मार्दवभावना अर्थात् निर्मानता होती है कि मेरे गुण जगत् में प्रसिद्ध हों और पूजा हो – ऐसी भावना उसे नहीं होती तथा कोई साधर्मी के दोष प्रसिद्ध करके उसको हलका दिखाने की भावना नहीं होती; परन्तु धर्म की वृद्धि कैसे हो, गुण की वृद्धि कैसे हो – यही भावना है। कोई अज्ञानी या अशक्त जन के द्वारा पवित्र रत्नत्रयधर्म में लांछन का प्रसंग हो जाये तो धर्मी उसको दूर करते हैं, धर्म की निंदा नहीं होने देते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

दोषों को दूर करना और वीतरागी गुणों की वृद्धि करना – यह सम्यक्त्व का अंग है। अत: ऐसा भाव सम्यग्दृष्टि के सहज होता है। जैसे माता को अपना पुत्र प्यारा है, अत: वह उसकी निन्दा सह नहीं सकती, इसलिए उसके दोष छिपाकर गुण प्रगट करना चाहती है, वैसे धर्मी को अपना रत्नत्रयधर्म प्यारा है, अत: रत्नत्रयमार्ग की निन्दा को वह सह नहीं सकता, इसलिए वह ऐसा उपाय करता है कि जिससे धर्म की निन्दा दूर हो और धर्म की महिमा प्रसिद्ध हो। दोष को ढँकना-दूर करना और गुण को बढ़ाना – यें दोनों बातें इस पाँचवें अंग में आ जाती हैं। अत: इसे उपगूहन अथवा उपबृंहण अंग कहा जाता है।

धर्मात्मा निजगुण को ढाँकते हैं अर्थात् बाह्य में उसकी प्रसिद्धि की कामना नहीं करते, मेरा काम मेरे आत्मा में हो रहा है, वह दूसरे को दिखाने का क्या प्रयोजन है ? दूसरे लोग मेरे गुण को जानें तो अच्छा – ऐसी बुद्धि धर्मी को नहीं होती। धर्मी अपने आत्मा में तो निजगुण की प्रसिद्धि (प्रगट अनुभूति) अवश्य करते हैं, अपने सम्यक्त्वादि गुणों को आप नि:शंक जानते हैं; परन्तु बाह्य में दूसरे लोगों के द्वारा अपने गुणों की प्रसिद्धि से मान-बड़ाई लेने की बुद्धि धर्मी को नहीं होती एवं दूसरे धर्मात्माओं के दोषों को प्रसिद्ध करके उन्हें निन्दा करने का या उन्हें हलका दिखाने का भाव धर्मी को नहीं होता; परन्तु उनके सम्यक्त्वादि गुणों को मुख्य करके उनकी प्रशंसा करते हैं; इसप्रकार गुण की प्रीति से वे अपने में गुण की वृद्धि करते हैं और अवगुण को ढाँकते हैं तथा प्रयत्नपूर्वक उन्हें दूर करने का उद्यम करते हैं।

धर्मी को अपने गुण इष्ट हैं और दोष इष्ट नहीं हैं। किसी अन्य धर्मात्मा में हीन शक्तिवश कोई दोष हो गया हो तो उसे प्रसिद्ध करके उसका तिरस्कार नहीं करते, परन्तु युक्ति से उसके दोष दूर करता है; किन्तु इसका अर्थ ऐसा नहीं समझना कि मिथ्यादृष्टि चाहे जैसे कुमार्ग का प्रतिपादन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करे तो भी उसकी भूल प्रसिद्ध न करे। मिथ्यामतों में तत्त्वों की विपरीतता कैसी है, मिथ्यादृष्टि लोग कैसी-कैसी भूल करते हैं – यह तो स्पष्ट दिखावे और सच्चा तत्त्व कैसा है, वह समझावे। यदि ऐसा न करे, कुमार्ग का खण्डन न करे, सत्यमार्ग का स्थापन न करे तो जीव हित का मार्ग कैसे जाने; अत: सत्य-असत्य की पहिचान कराना, उसमें किसी की निन्दा का प्रयोजन नहीं है। जीव के हित के लिए सत्यमार्ग की प्रसिद्धि का व असत्य के निषेध का भाव तो धर्मी को आता है। जहाँ धर्म की निन्दा हो, देव-गुरु की निन्दा हो – ऐसा प्रसंग धर्मात्मा से देखा नहीं जाता, वे अपनी शक्ति से उसे दूर करते हैं।

सभी धर्मात्माओं के उदयभाव समान नहीं होते; आत्मश्रद्धा सभी की समान हो, परन्तु उदयभाव तो भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं। भूमिका के अनुसार क्रोध-मानादि दोष होते हों, किन्तु उनकी मुख्यता करके धर्मात्मा की या जिनशासन की निन्दा न होने दे। अरे, वे तो धर्मात्मा हैं, जिनेश्वर के भक्त हैं, आत्मा के अनुभवी हैं, सम्यग्दृष्टि हैं, मोक्ष के साधक हैं – ऐसे गुणों को प्रधान करके, परिणाम में कोई मन्दता हो गई हो तो उस दोष को गौण कर देते हैं, धर्म की या धर्मात्मा की निन्दा नहीं होने देते। अहा, यह तो पवित्र जैनमार्ग... अकेली वीतरागता का मार्ग; कोई अज्ञानी जन के निन्दा करने से वह मलिन नहीं हो जाता।

ऐसे मार्ग की श्रद्धा में सम्यग्दृष्टि जीव अत्यन्त निष्कंप रहते हैं; तीक्ष्ण असि-धार के समान उनकी श्रद्धा मिथ्यात्व की कुयुक्तियों का खण्डन कर देती है, किसी भी युक्ति से उनकी श्रद्धा चलित नहीं होती। ऐसे मार्ग को जानकर जो धर्मी हुआ है, उस जीव में यदि कोई सूक्ष्म दोष हो जाये तो उसके उपगूहन की यह बात है। जहाँ गुण और दोष दोनों विद्यमान हों, वहाँ उसमें गुण की मुख्यता करके दोष को गौण करना वह उपगूहन है, परन्तु जिसके पास सच्चा मार्ग है ही नहीं और मिथ्यामार्ग को ही धर्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मान रहे हैं, उनको जगत् के हित के लिए प्रसिद्ध करें कि यह मार्ग असत्य है, दु:खदायक है; अत: उसका सेवन छोड़ो और परम सत्य वीतराग जैनमार्ग को जानकर उसका सेवन करो। धर्मात्मा अपने में जैसे रत्नत्रयधर्म की शुद्धि बढ़े – ऐसा उपाय करे। दुनिया से मुझे कोई प्रयोजन नहीं, मुझे तो मेरे आत्मा की शुद्धता वृद्धिंगत हो और वीतरागता हो, वही प्रयोजन है – ऐसी भावनापूर्वक धर्मात्मा अपने में धर्म की वृद्धि करते हैं, इसे उपबृंहण गुण कहते हैं।

धर्मी जानते हैं कि मेरे गुण मेरे में ही हैं, मेरी अनुभूति में मेरा आत्मा प्रसिद्ध हुआ है, इसको मैं स्वयं जानता हूँ; दुनिया को दिखाने का क्या काम है? क्या दुनिया के मानने से मेरे गुण की शुद्धि बढ़ती है और दुनिया के न देखने से क्या मेरे गुण की शुद्धि रुकती है ? नहीं, मेरा गुण तो मेरे में है। कोई धर्मात्मा के गुणों की जगत् में सहज प्रसिद्धि हो, यह बात अलग है; परन्तु धर्मी को तो अपने में ही तृप्ति है, दुनिया में प्रसिद्धि की कोई दरकार नहीं है। दुनिया स्वीकार करे, तभी मेरा गुण सच्चा – ऐसी कोई अपेक्षा नहीं है और दुनिया स्वीकार न करे तो मेरे गुण को कोई नुकसान हो जाये – ऐसा भी नहीं है। मेरे गुण मैंने दुनिया के पास से तो नहीं लिये हैं, मेरे आत्मा में से ही गुण प्रगट किये हैं, अत: मेरे गुण में दुनिया की अपेक्षा मुझे नहीं है। इसप्रकार धर्मी जगत् से उदास निजगुण में नि:शंक वर्तते हैं।

धर्मात्मा को जातिस्मरणादि ज्ञान हो जाये, ज्ञान की शुद्धता के साथ अनेक लब्धियाँ भी प्रगटें, अनेक मुनिवरों को विशेष लब्धियाँ हो जाये, अवधि-मन:पर्ययज्ञान भी हो जाये, किन्तु जगत् को वह मालूम भी न हो, वे मुनि अपने आप में आत्मा की साधना में मशगूल वर्तते हैं। अपनी पर्याय में अपने गुणों की प्रसिद्धि हुई (अनुभूति हुई), तब आत्मा स्वयं अपने आप से ही संतुष्ट एवं तृप्त हो जाता है; अपने गुण के शांतरस को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आप स्वयं ही वेदता है, वह दूसरे को दिखाने का क्या काम है ? और दूसरे जीव भी ऐसी अंतर्दृष्टि के बिना गुण को कैसे पहचानेंगे? इसप्रकार धर्मी अपने गुणों को अपने में गुप्त रखते हैं और अन्य साधर्मी के अवगुण भी गुप्त रखकर उन्हें दूर करने का उपाय करते हैं।

भाई ! किसी का अवगुण प्रसिद्ध हो – इससे तुझे क्या लाभ ? और उसके अवगुण प्रसिद्ध न हों, उससे तुझे क्या नुकसान ? जो करेगा, वह भोगेगा; अत: दूसरे के गुण-दोष का फल उसे ही है, उसमें तुझे क्या ? इसलिए समाज में धर्म की निंदा न हो और प्रभावना हो तथा गुणों में वृद्धि हो, उसप्रकार धर्मी प्रवर्तते हैं।

किसी भी तरह अपने में एवं पर में गुण की वृद्धि हो और दोष दूर हो, आत्मा का हित हो और धर्म की शोभा बढ़े – इसप्रकार धर्मी का प्रवर्तन होता है। कोई साधर्मी जन से कोई दोष हो गया हो और अपने ध्यान में आ जाये तो उसको गुप्तरूप से बुलाकर धर्मात्मा प्रेम से समझाते हैं कि देखो भाई ! अपना जैनधर्म तो महान पवित्र है, महान भाग्य से अपने को ऐसा धर्म मिला है; उसमें तेरे से इतना दोष हो गया, परन्तु इससे तुम घबड़ाना मत, तुम आत्मा के श्रद्धा-ज्ञान में दृढ़ रहना। जिनमार्ग महान पवित्र है, अत्यंत भक्ति से उसकी आराधना करके तुम अपने सभी दोषों को छेद डालना – इसप्रकार प्रेम से उसे धर्म का उत्साह बढ़ाकर उसके दोष दूर कराते हैं। दोषों के छिपाने से कहीं उसके दोषों को उत्तेजन देने का आशय नहीं है, परन्तु तिरस्कार करने से तो वह जीव निरुत्साही हो जाये और बाह्य में भी धर्म की निंदा होगी; अत: ऐसा न होने देने का आशय है तथा गुण की प्रीति से शुद्धि की वृद्धि का हेतु है – ऐसा धर्मी का उपगूहन तथा उपबृंहण अंग है। इस अंग के पालन में जिनेन्द्रभक्त एक सेठ की कथा पुराण में प्रसिद्ध है, वह ''सम्यक्त्व कथा'' आदि में से देख लेना। इसप्रकार सम्यक्त्व के पाँचवें अंग का वर्णन हुआ।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६. स्थितिकरण अंग का वर्णन

किसी कषायवश, रोगादि की तीव्र वेदना के वश, कुसंग से, लोभ से या अन्य कोई प्रतिकूलता के प्रसंग में धर्मी जीव श्रद्धा से या चारित्र से डिग रहा हो या शिथिल हो रहा हो तो उसे प्रेमपूर्वक वैराग्य-उपदेश से या अन्य अनेक उपाय से धर्म में स्थिर करना, अपने आत्मा को भी धर्म में दृढ़ करना एवं अन्य साधर्मी को भी धर्म में दृढ़ करना, सो स्थितिकरण है।

शरीर में कोई तीव्र रोग आ जाये, व्यापार में अचानक बड़ा नुकसान हो जाये, स्त्री-पुत्रादि का मरण हो जाये, विषयों में मन चलित हो जाये, कोई तीव्र मान-अपमान का प्रसंग बने; उस समय अपने परिणाम को अस्थिर होता देखकर धर्मात्मा शीघ्र ही ज्ञान-वैराग्य की भावना के बल से अपने आत्मा को धर्म में दृढ़ करे कि अरे आत्मा! तेरे को यह क्या हुआ ? ऐसा महा पवित्र रत्नत्रयधर्म पाकर ऐसी कायरता तुझे शोभा नहीं देती। तू कायर मत हो। अंतर में जो शुद्ध आत्मस्वरूप परम महिमावंत देखा है, उसकी बारम्बार भावना कर। संसार के दुर्ध्यान से तो नरकादि तीव्र दुःख तुमने अनन्त बार भोगे, अतः अब उस दुर्ध्यान को छोड़ो और चैतन्य की भावना करो। अनेक प्रकार के धर्म चिंतन से अपने आत्मा को धर्म में स्थिर करे तथा अन्य साधर्मीजनों को भी अपना ही समझकर सर्वप्रकार की सहायता से धर्म में स्थिर करे – ऐसा भाव धर्मात्मा को होता है।

किसी को उपदेश के द्वारा धर्म में उत्साहित करे, किसी को धन से भी सहायता करे, किसी की तन से सेवा करे, किसी को धैर्य बँधावे, किसी को अध्यात्म की महान चर्चा सुनावे – ऐसे सर्वप्रकार से तन से, मन से, धन से, ज्ञान से धर्मात्मा की आपत्ति को दूर करके उसे धर्म में स्थिर करता है। अरे, ऐसा मनुष्य अवतार और ऐसा जैनधर्म अनन्तकाल में मिला है ऐसे अवसर को यदि चूक जाओगे तो फिर अनन्तकाल में ऐसा अवसर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मिलना कठिन है। इस समय में जरा-सी प्रतिकूलता के दु:ख से डरकर यदि धर्म की आराधना में चूक जाओगे तो फिर संसार-भ्रमण में नरकादि का अनन्त दुख भोगना पड़ेगा, नरकादि के तीव्र दु:ख के समक्ष यह प्रतिकूलता तो कुछ गिनती में नहीं है; अत: कायर होकर आर्त्त परिणाम न करो; वीर होकर धर्मध्यान में दृढ़ रहो। आर्त्तध्यान करने से तो और भी दु:ख बढ़ जायगा। संसार में तो प्रतिकूलता होती ही है, अतः धैर्यपूर्वक धर्मध्यान में दृढ़ रहो। तुम तो मुमुक्षु हो, धर्म के जानने वाले हो, ज्ञानवान हो; इस प्रसंग में दीन होकर धर्म से डिग जाना तुझे शोभा नहीं देता, अत: वीरतापूर्वक आत्मा को सम्यक्त्वादि की भावना में दृढ़ता से लगाओ। पहले अनेक महापुरुष पांडव, सीताजी इत्यादि हुए हैं। उन्हें स्मरण करके आत्मा को धर्म की आराधना में उत्साहित करो। अत: अपने एवं पर के आत्मा को सम्बोधन करके धर्म में स्थिर करते हैं, यह सम्यग्दृष्टि का स्थितिकरण अंग है।

प्रतिकूलता आने पर आप स्वयं धैर्य न छोड़े और अन्य साधर्मी को भी घबराहट न होने दे, उन्हें भी धैर्य बँधावे। अरे, चाहे मरण भी आवे या कितनी भी प्रतिकूलता आवे, परन्तु मैं कभी अपने धर्म से चलायमान नहीं होऊँगा, आत्मा की आराधना को नहीं छोड़ूँगा – ऐसे नि:शंक दृढ़ परिणाम से धर्मी अपने आत्मा को धर्म में स्थिर रखते हैं। कोई भय या लालच दे तो भी वह धर्म से नहीं डिगते। जो मोक्ष के साधक हुए हैं, उनके आत्मपरिणाम में ऐसी दृढ़ता होती है।

सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वादि निश्चयधर्म में जितनी स्थिरता हुई, उतना धर्म है, वह वीतरागभाव है और दूसरे साधर्मी को धर्म में स्थिर करने का जो भाव है, वह तो शुभराग है, वह धर्म नहीं है, किन्तु धर्मी को धर्मप्रेम का ऐसा भाव आता है। श्रेणिक राजा के पुत्र वारिषेण मुनि ने अपने मित्र को मुनिधर्म में स्थितिकरण किया था, उनकी कथा पुराणों में प्रसिद्ध है,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वह 'सम्यक्त्व कथा' में आप पढ़ सकेंगे। इसप्रकार स्थितिकरण नामक छठवें अंग का वर्णन किया है।

७. वात्सल्य अंग का वर्णन

जिसप्रकार गाय को अपने बछड़े पर किसीप्रकार की आशा के बिना निरपेक्ष प्रेम होता है, उसीप्रकार धर्मी को अन्य साधर्मीजनों के प्रति सहज ही प्रेम होता है। उन्हें अपना जानकर उन पर वात्सल्य आता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र धारक जीवों के समूह को धर्मी जीव अपना हितैषी स्वजन मानते हैं। उनकी प्राप्ति होने पर मानो कोई महान निधान मिल गया है – ऐसी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न होती है। उनका आदर, उनके गुणों की स्तुति, आहार-पान-सेवा आदि में आनन्द मानना, वह वात्सल्य अंग है।

धर्मी जीव किसी को दिखाने के लिए कपट से नहीं करते या किसी बदले की आशा नहीं रखते; परन्तु धर्म की प्रीति के कारण धर्मी को ऐसा प्रेमभाव सहज आ जाता है। जिस वीतराग धर्म की मैं साधना कर रहा हूँ, उसी धर्म की यह साधना कर रहे हैं, अत: यह मेरे साधर्मी हैं, मेरे साधर्मी को कोई दु:ख न हो, उन्हें धर्म में कोई विघ्न न हो – इसप्रकार साधर्मी के प्रति वात्सल्य होता है।

यद्यपि राग तो है, परन्तु उस राग की दिशा संसार की ओर से पलटकर धर्म सन्मुख हो गई है। संसार में स्त्री-पुत्र-धन आदि का राग वह तो पापबंध का कारण है और साधर्मी के प्रति धर्मानुराग में तो अपने धर्म की भावना का पोषण होता है। अन्तरंग में तो धर्मी को अपने शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्ररूप आत्मा में परम प्रीति है; उसे ही वह अपना स्वरूप जानता है; वह परमार्थ वात्सल्य है और व्यवहार में रत्नत्रय के धारक अन्य साधर्मी जीवों को अपना समझकर उन पर परम प्रीतिरूप वात्सल्य आता है। धर्मात्मा पर आये हुए दु:ख को धर्मी देख नहीं सकते। इसप्रकार से उनका दुख मिटाने का उपाय करते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि जीव को किसी भी जीव के प्रति वैरभाव नहीं होता, तो फिर धर्मी के प्रति ईर्ष्या कैसे हो ? दूसरे जीव अपनी अपेक्षा आगे बढ़ जायें, वहाँ उसे द्वेष नहीं होता; परन्तु अनुमोदना और प्रेम आता है। साधर्मी को एक-दूसरे के प्रति प्रेम होता है, कैसा प्रेम ? माँ को अपने पुत्र पर प्रेम हो, वैसा निर्दोष प्रेम; गाय को अपने बछड़े पर प्रेम होता है, वैसा निष्पृह प्रेम धर्मी को साधर्मी के प्रति होता है। अभी इनके दुख में सहायता करूँगा, तो भविष्य में किसी समय ये मुझे काम में आयेंगे – ऐसी बदले की भावना नहीं रखते; परन्तु धर्म के सहज प्रेमवश निष्पृह भाव से धर्मी के प्रति वात्सल्य रखते हैं।

जिसप्रकार माता अपने पुत्र का दु:ख देख नहीं सकती, हिरनी अपने बच्चे के प्रति प्रेमवश उसकी रक्षा हेतु सिंह के सन्मुख जाती है। सच्ची माता के प्रेम की एक बात आती है कि एक बालक के लिए दो स्त्रियों में झगड़ा हुआ। न्यायाधीश ने (सत्य की परीक्षा हेतु) बालक के दो टुकड़े करके दोनों को एक-एक देने की आज्ञा दी। यह सुनते ही सच्ची माता तो जोर से रोने लगी, पुत्र की रक्षा हेतु उसने कहा – इसे ही बालक दे दीजिए। मुझे नहीं चाहिए। उदाहरण में से केवल इतना लेना है कि सच्ची माता पुत्र का दु:ख देख नहीं सकती, उसका वास्तविक प्रेम उमड़ पड़ता है।

प्रद्युम्नकुमार १६ वर्ष की अवस्था में जब घर पधारे, तब रुक्मिणी माता को हृदय में वात्सल्य की धारा उमड़ पड़ी थी; उसीप्रकार साधर्मी का प्रेम वास्तविक प्रसंग पर छिपा नहीं रहता। सम्यग्दृष्टि को सम्यग्दृष्टि के प्रति अन्तर में प्रेम होता है; उन्हें देखते ही, उनकी बात सुनते ही प्रेम आता है। जिसे धर्म के प्रति प्रेम होता है, उसे धर्मी के प्रति प्रेम होता ही है; क्योंकि धर्म और धर्मी कहीं भिन्न नहीं हैं। (न धर्मो धार्मिकै: विना)।

यह तो सम्यग्दर्शन सहित आठ अंग की बात है; परन्तु इसके पूर्व भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

धर्म के जिज्ञासु को धर्म के प्रति वात्सल्य, धर्मात्मा का बहुमान आदि भाव होते हैं। मोक्ष का सच्चा कारण तो अन्तर में परद्रव्य से भिन्न अपने आत्मा की रुचि और ज्ञान करना है। सम्यग्दर्शन के बिना शुभराग से मोक्षमार्ग नहीं होता। सम्यग्दर्शन के बाद भी जो राग है, वह कहीं मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग तो सम्यग्दर्शनादि वीतरागभाव ही है। जहाँ राग की भूमिका है, वहाँ ऐसे वात्सल्यादि भाव अवश्य आते हैं।

८. प्रभावना अंग का वर्णन

जिनमार्ग द्वारा अपने ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा को जानकर उसकी 'प्रभावना' उत्कृष्ट भावना तो धर्मी करते ही हैं और व्यवहार में भी ऐसे जिनमार्ग की महिमा जगत में कैसे प्रसिद्ध हो और संसारी जीव धर्म कैसे प्राप्त करें – ऐसी प्रभावना का भाव धर्मी को होता है। वह अपनी पूर्ण शक्ति से, ज्ञान-विद्या-वैभव-तन-मन-धन-दान-शील-तप आदि से धर्म की प्रभावना करता है। किसी विशेष शास्त्र द्वारा, तीर्थ द्वारा, उत्तम जिनमंदिर द्वारा तथा अनेक महोत्सवों द्वारा भी प्रभावना करता है, वर्तमान में तो जीवों को सच्चा तत्त्वज्ञान प्राप्त हो – ऐसी प्रभावना की विशेष आवश्यकता है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने समयसार आदि अध्यात्मशास्त्रों की रचना द्वारा जिनशासन की महान प्रभावना की है और लाखों जीवों पर उपकार किया है। समन्तभद्रस्वामी, अकलंकस्वामी आदि ने भी जैनधर्म की महान प्रभावना की है।

धर्म पर संकट आये, वहाँ धर्मी जीव बैठा नहीं रहता। जिसप्रकार शूरवीर योद्धा युद्ध में छिपा नहीं रहता, उसीप्रकार धर्मात्मा धर्मप्रसंग में छिपता नहीं है; धर्मप्रभावना के कार्यों में वह उत्साह से अपने आप भाग लेता है। देव-गुरु-शास्त्र के कार्यों में, तीर्थों के कार्य में, साधर्मीजनों के कार्य में अपनी शक्ति अनुसार उमंगपूर्वक वर्तता है। ऐसा शुभभाव धर्मी को होता है, तथापि उसकी मर्यादा भी जानता है कि यह राग है, वह कहीं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मुझे मोक्ष का साधन नहीं है। राग द्वारा मुझे तथा दूसरों को लाभ नहीं है। इसलिए उसे राग की भावना नहीं; परन्तु वीतरागीमार्ग की प्रभावना और पुष्टि की ही भावना होती है। अहा, ऐसा सुन्दर वीतरागमार्ग और ऐसे मार्ग की साधना करने वाले यह मेरे साधर्मी भाई! इसप्रकार अपने साधर्मी भाई-बहिनों के प्रति उमंग आती है। वह साधर्मी का अपवाद नहीं होने देता। वाह, देखो तो सही ! अन्तर दृष्टिपूर्वक वीतरागमार्ग में व्यवहार का भी कितना विवेक है।

जो अन्तर में यथार्थ मार्ग की प्रतीति करे, उसे ही ऐसा व्यवहार समझ में आता है। सम्यक्त्व के इन आठ अंगों द्वारा धर्मी जीव अपने में वीतरागमार्ग की पुष्टि करते हैं और सर्वप्रकार से उसकी प्रभावना करते हैं। प्रभावना अंग के लिए वज्रमुनि का उदाहरण शास्त्रों में प्रसिद्ध है। इसप्रकार सम्यक्त्व के आठ अंग कहे। ऐसे आठ गुणों सहित शुद्ध सम्यक्त्व की आराधना करो और उनसे विरुद्ध शंकादि आठ दोषों का त्याग करो।

सम्यग्दृष्टि को ही मार्ग की सच्ची प्रभावना होती है। जिसने धर्म का सच्चा स्वरूप जाना है, वही उसकी प्रभावना कर सकता है। जो धर्म को पहिचानता ही नहीं, वह प्रभावना किसकी करेगा ? अहा, जिनमार्ग कोई अद्भुत अलौकिक है, इन्द्र-चक्रवर्ती और गणधर भी जिसका भक्ति से आदर करते हैं – ऐसे वीतराग मार्ग की क्या बात ! ऐसा मार्ग और उसका आदर करने वाले साधर्मियों का योग मिलना बहुत दुर्लभ है। ऐसे मार्ग को प्राप्त कर अपना हित कर लेना चाहिए। जितना रागभाव है, उसे धर्मी अपने स्वात्मकार्य से भिन्न जानता है और निश्चय सम्यक्त्वादि वीतरागभाव को ही स्वधर्म जानकर उसका आदर करता है। धर्म का ऐसा स्वरूप समझकर उसकी प्रभावना करता है।

जो केवल व्यवहार के शुभ विकल्पों को ही धर्म मान लेते हैं और राग

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

रहित निश्चय धर्म को समझते ही नहीं, उन्हें तो अपने में किंचित् धर्म नहीं होता अर्थात् सच्ची धर्मप्रभावना भी उन्हें नहीं होती। अपने में धर्म हो तो उसकी प्रभावना करे न ?

यहाँ तो अन्तर में अपने शुद्धात्मा का अनुभव करके निश्चयधर्म सहित के व्यवहार की बात है। अरे, वीतराग के सत्यमार्ग को भूलकर अज्ञान द्वारा कुमार्ग के सेवन द्वारा जीव अपना अहित कर रहे हैं, वे ज्ञान द्वारा सच्चा मार्ग प्राप्त करें और अपना हित करें – ऐसी भावना से धर्मी जीव ज्ञान के प्रचार द्वारा सत्यधर्म की प्रभावना करते हैं; सत्यमार्ग को स्वयं ने जाना है; अत: उसकी प्रभावना करते हैं।

आत्मा परद्रव्यों से भिन्न, शान्त-वीतराग-चिदानन्दस्वभावरूप है, उसे पहिचान कर उसमें 'यही मैं हूँ' – ऐसा जो भाव है, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है।

शरीर-मन-वाणी तथा राग-द्वेष से पार होकर, अन्तर में अपने शुद्ध एकत्वस्वरूप में स्वसन्मुख दृष्टि करने पर सम्यग्दर्शन होता है, वह मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है, वहीं से मोक्षमार्गरूप धर्म का प्रारंभ होता है। जन्म-मरण के नाश के उपाय में प्रथम ही सम्यग्दर्शन है; इसके अतिरिक्त समस्त जानपना और समस्त क्रियाएँ निरर्थक हैं। किसी पुण्य से – शुभराग से ऐसा सम्यग्दर्शन नहीं होता; अन्तर में शुद्धतत्त्व है, उसे ज्ञान में – अनुभव में लेकर नि:शंक श्रद्धा करने पर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ सच्चे देव-गुरु-धर्म की तथा नवतत्त्व की पहिचान करायी है तथा नि:शंकितादि आठ गुण आदि व्यवहार कैसा होता है, वह बतलाया है। ऐसा जानकर मुमुक्षु जीवों को आठ अंग सहित शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करना चाहिए।

(आठ अंग का स्वरूप व उनकी आठ सुन्दर कथाएँ पढ़ने के लिए 'सम्यक्त्व कथा' नाम की सचित्र पुस्तिका पढ़िए।) ●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सम्यग्दृष्टि का पच्चीस दोष से रहितपना

परद्रव्यों से भिन्न अपने शुद्ध आत्मा की प्रतीति करके जिसको सम्यग्दर्शन हुआ है, जो मोक्षमार्गी हुआ है – ऐसे सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा का यह वर्णन है। उस सम्यग्दृष्टि को निःशंकितादि आठ अंग होते हैं और उनसे विरुद्ध ऐसे शंकादि आठ दोष नहीं होते, उसका वर्णन किया; अब आठ मद वगैरह दोष भी नहीं होते – उनका कथन करते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन-बल को मद भानै॥१३॥
तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारै तो यही दोष वसु, समकित को मल ठानै॥
कुगुरु-कुदेव-कुवृष सेवक की नहीं प्रशंस उचरे है।
जिन-मुनि-जिनश्रुत बिन कुगुरादिक तिन्हें न नमन करे है॥१४॥

सम्यक्त्व के पच्चीस दोष हैं, ये दोष सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं होते। उन दोषों का यह वर्णन है।

(१ से ८) शंकादि आठ दोष, पहले निःशंकता, निष्कांक्षा, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना – ये आठ गुण कहे थे, उनसे विरुद्ध ये आठ दोष हैं – शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़ता, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना – ये दोष सम्यग्दृष्टि को नहीं होते।

१. सम्यग्दृष्टि जीव जिनमार्ग में कभी सन्देह नहीं करता।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. धर्म के फल में संसार-भोग की वांछा नहीं करता।

३. शरीरादि कैसा भी हो, किन्तु धर्मात्मा के गुणों के प्रति वह कभी घृणा नहीं करता।

४. सच्चे देव-गुरु-धर्म कैसे हैं ? सत्यमार्ग कैसा है और कुमार्ग कैसा है, उसका विवेक करने में उसे उलझन नहीं होती; अच्छी तरह पहचान कर वह सत्यमार्ग का आदर करता है, कुमार्गों को छोड़ता है।

५. अपने गुणों की बाह्य में प्रसिद्धि नहीं चाहता और अन्य धर्मात्मा का कोई दोष देखकर उसकी निन्दा नहीं करता, परन्तु दोष को ढँककर युक्ति से दूर करता है और धर्म की वृद्धि करता है।

६. आप या अन्य साधर्मी धर्ममार्ग से डिग जाये – ऐसा अस्थिर कभी नहीं करता, किन्तु स्व-पर को धर्ममार्ग में दृढ़ करता है।

७. ऐसा नहीं करता कि जिससे धर्म का या धर्मात्मा का अपवाद हो, किन्तु वात्सल्यपूर्वक उनकी प्रशंसा व आदर करता है।

८. लोक में जैनधर्म की निंदा हो – ऐसा कभी नहीं करता, किन्तु धर्म की प्रभावना हो और उसकी महिमा प्रसिद्ध हो – ऐसा करता है।

इसप्रकार सम्यग्दृष्टि के जीव शंकादिक आठ दोष रहित और निःशंकितादि आठ गुण रहित सम्यक्त्व की आराधना करता है। तदुपरान्त आठ मद भी उसे नहीं होते।

(९ से १६) **आठमद** – कुलमद, जातिमद, रूपमद अर्थात् शरीरमद, विद्यामद अर्थात् ज्ञानमद, धनमद अर्थात् ऋद्धिमद, बलमद, तपमद और अविकारमद अर्थात् पूजामद – ऐसे आठ प्रकार के मदरूप आठ दोष सम्यग्दृष्टि को नहीं होते।

(१७ से २२) **छह अनायतन** – कुदेव, उसका सेवक, कुगुरु, उसका सेवक, कुधर्म और उसका सेवक – ये छहों धर्म के लिए अस्थान हैं,

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

इसलिए वे अनायतन हैं, उनमें धर्म नहीं होता; धर्मी जीव उनका सेवन तो नहीं करता और उसकी प्रशंसा भी मन से, वचन से या काय से नहीं करता। इसप्रकार छह अनायतन की प्रशंसारूप छह दोष सम्यग्दृष्टि के नहीं होते।

(२३ से २५) **तीन मूढ़ता** – मूढ़ लोगों में देव के नाम पर, गुरु के नाम पर व शास्त्र के नाम पर अनेक विपरीत रूढ़ियाँ चलती हैं; परन्तु धर्मी जीव देव-गुरु-शास्त्र संबंधी कोई मूढ़ता का सेवन नहीं करता। वीतरागमार्ग के जिनेश्वरदेव, रत्नत्रयधारक निर्ग्रन्थ जिनमुनि और उनके द्वारा उपदिष्ट वीतरागतापोषक जिनशास्त्र, उनको ही सत्य मानता है, उनके ही आदर-सत्कार, नमस्कार-प्रशंसा करता है। उनके सिवाय अन्य कोई भी कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र को स्वप्न में भी नहीं मानता, न उन्हें नमस्कारादि भी करता है। इसप्रकार तीन मूढ़तारूप तीन दोष सम्यग्दृष्टि के नहीं होते।

शंकादिक आठ दोष, आठ मद, छह अनायतन तथा तीन मूढ़ता – ये पच्चीस दोषों को छोड़कर, नि:शंकितादि आठ गुण सहित सम्यग्दर्शन को हे भव्यजीवों ! तुम भक्तिपूर्वक धारण करो। यह मोक्ष का मूल है।

सम्यग्दृष्टि को अपने अचिन्त्य चैतन्यवैभव के समक्ष जगत् में अन्य किसी की महानता प्रतीत नहीं होती, इसलिए उसे कोई मद नहीं होता। इसप्रकार उसे आठ मद का अभाव होता है, उनका वर्णन यहाँ करते हैं।

(१-२) कुलमद तथा जातिमद – पिता के पक्ष को कुल तथा माता के पक्ष को जाति कहते हैं; लेकिन माता-पिता तो इस जड़शरीर के संबंधी हैं, उनकी महत्ता में अभिमान क्या ? मैं तो शरीर से भिन्न चैतन्यमूर्ति हूँ; माता-पिता के कारण मेरा बड़प्पन नहीं है। माता किसी बड़े परिवार की हो या पिता कोई बड़े राजा-महाराजा हों, उनके कारण धर्मी अपना बड़प्पन नहीं मानता अर्थात् उसे जातिमद या कुलमद नहीं होता। अरे, हमारी जाति तो चैतन्यजाति है, देह की जाति हमारी है ही नहीं, फिर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसका मद कैसा ? मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, मेरे ज्ञानस्वरूप आत्मा को किसी ने उत्पन्न नहीं किया है, फिर मेरी जाति-कुल कैसा ? चैतन्य मेरी जाति और ज्ञान-दर्शनस्वभाव ही मेरा कुल है।

इसप्रकार धर्मी को पिता या पुत्रादि कोई महान हों तो उनका बहुमान उसे नहीं होता; उसीप्रकार पिता आदि दरिद्र हों तो उनसे दीनता नहीं होती। वह तो इन समस्त संयोगों से अत्यन्त भिन्न चैतन्यस्वरूप ही अपने को देखता है। अरे, मेरे चैतन्य की अधिकता से दूसरा कौन अधिक है कि जिसका मैं गर्व करूँ ? मेरे चैतन्य-प्रकाश के सन्मुख चक्रवर्तीपद भी निस्तेज प्रतीत होता है, उसमें मेरा बड़प्पन नहीं है। चक्रवर्तीपद तो राग का फल है। कहाँ अनन्त गुणमय चैतन्यपद और कहाँ विकार का फल ! जिसने परमेश्वर की जातिरूप अपने को देखा है, उसे अब कौन-सी कमी रह जाती है कि बाह्य में शरीर की जाति आदि में अपनापन माने ? चैतन्य की जाति के समक्ष जड़ शरीर की जाति का अभिमान कैसा ? शरीर मैं हूँ ही नहीं, मैं तो चैतन्य हूँ – ऐसी सम्यक् प्रतीति में धर्मी को शरीरादि संबंधी मद नहीं होता। मिथ्यात्वरूप दोष तो धर्मी को होते ही नहीं और सम्यक्त्व के अतिचार रूप दोषों को वह दूर करता है, उसका यह उपदेश है।

निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ ऐसा शुद्ध व्यवहार होता है कि उसमें किंचित् भी अतिचार लगे तो वह दोष है – ऐसा समझकर उसका त्याग करना चाहिए। धर्म के स्थान तो वीतरागी अरहन्तदेव, निर्ग्रन्थ मुनिराज तथा वीतरागी शास्त्र हैं, उनमें धर्मी जीव शंका करते ही नहीं तथा उनसे कोई विपरीत हो तो उन्हें किसी भी प्रकार ग्रहण नहीं करते। प्राण जायें या कितनी भी प्रतिकूलता आये तो भी वीतरागी देव-गुरु की श्रद्धा नहीं छोड़ते। इसलिये उनके सम्यक्त्व में शंकादि दोष नहीं होते।

संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव शुभाशुभ कर्मवश उच्च कुल

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

तथा नीच कुल में अनन्तबार अवतार धारण कर चुका है, यह तो क्षणिक संयोग है। शाश्वत आत्मा को इस अवतार का अभिमान क्या? अवतार धारण करना - यह तो शर्म है। उच्च कुल प्राप्त करने का फल यह है कि रत्नत्रय के उत्तम आचरण द्वारा आत्मा को मोक्षमार्ग में लगाना और मिथ्यात्वादि पापों के अधम आचरण को छोड़ना। उच्च कुल में अवतार धारण करके भी यदि अभक्ष्य भक्षण आदि निंद्य कार्य करे तो नरक में ही जाता है; कहीं उच्च कुल नरक में जाने से रोक नहीं सकता; ऐसा विचार कर धर्मी जीव कुल तथा जातिमद को छोड़ते हैं।

एक वैरागी बालक अपनी माता से दीक्षा लेने की आज्ञा माँगता है। तब उसकी माता कहती है कि बेटा मैं तुझे दीक्षा की आज्ञा तो देती हूँ, परन्तु एक शर्त है।

पुत्र कहता है – माताजी ! कहिये, आपकी क्या शर्त है ? चाहे जैसी कड़ी शर्त हो, फिर भी मैं अवश्य पूरी करूँगा।

माता कहती है कि – दीक्षा लेने के बाद आत्मसाधना ऐसी करना कि तुझे अब दूसरी माता न करनी पड़े अर्थात् मैं तेरी अन्तिम माता बनूँ। इस शर्त के साथ मैं तुझे दीक्षा लेने की अनुमति देती हूँ।

पुत्र कहता है – माताजी, मैं अप्रतिहत साधना करके अवश्य केवलज्ञान प्राप्त करूँगा और पुनः इस संसार में जन्म धारण नहीं करूँगा; दूसरी माता मैं नहीं बनाऊँगा।

देखो, संसार में माता के उदर से जन्म लेना भी एक कलंक है, उसका मद क्या ? चैतन्यमूर्ति अशरीरी भगवान की पहिचान माता-पिता के संबंध से कराना पड़े, वह तो शर्म है। जिन्होंने अशरीरी चैतन्यतत्त्व अनुभव में लिया, उन्हें माता-पिता संबंधी बड़प्पन का मद नहीं होता। इसप्रकार धर्मी को जातिमद तथा कुलमद का अभाव है।

(३) रूपमद – शरीर के रूप का गर्व सम्यग्दृष्टि जीव को नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आत्मा का रूप तो ज्ञान है। धर्मी जीव शरीर से भिन्न अपने को ज्ञानरूप से देखता है। इस शरीर का रूप मेरा नहीं, यह तो एक क्षण में नाश को प्राप्त होता है तथा सड़ जाता है, इसका गर्व कौन करे ? इसतरह धर्मी को सुन्दरता का गर्व नहीं होता तथा किसी गुणवान् का शरीर कुरूप-काला, कुबड़ा हो तो उसके प्रति तिरस्कार भी नहीं है। सुन्दर मनुष्य भी यदि पापकार्य करे तो दुर्गति में जाता है, इसलिए शरीर की सुन्दरता से कहीं आत्मा की शोभा नहीं है। सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, वही आत्मा का सच्चा महान श्रेष्ठ आभूषण है, इससे आत्मा तीन लोक में शोभायमान होता है।

अपने आत्मा को शरीर से भिन्न जाना है, इसलिए शरीर रूपवान् हो तो उसके द्वारा अपनी महत्ता प्रतीत नहीं होती और शरीर कुरूप हो तो दीनता भी नहीं होती, क्योंकि वह जानता है कि यह रूप तो जड़ का है, यह रूप मेरा नहीं है, फिर उसका अभिमान क्या ? मेरा चैतन्यरूप है, चैतन्य के रूप से उच्च जगत में कोई नहीं है। वीतरागी चैतन्यरूप द्वारा ही मेरी शोभा है। शुभराग भी मेरे रूप से कुरूप है और शरीर का रूप तो पुद्गल की रचना है। ऐसी प्रतीति होने से धर्मी को रूप का मद नहीं होता।

(४) विद्यामद अर्थात् ज्ञानमद – कोई विद्या आती हो या शास्त्रज्ञान हो, तो उसका घमंड धर्मी को नहीं होता। अहा, कहाँ परम अतीन्द्रिय केवलज्ञान और कहाँ यह अल्पज्ञान! केवलज्ञान के अचिंत्य सामर्थ्य के निकट तो यह ज्ञान अनन्तवें भाग का है। चैतन्यविद्या का समुद्र जिसने देखा, उसे गड्ढ़े जितने ज्ञातृत्व की महिमा का मद नहीं होता, यह तो जो ज्ञानी हैं और जिन्हें विशेष ज्ञानविद्या प्रगट हुई है, तथापि उसका मद नहीं, उनकी बात है। जो अज्ञानी हैं और विशेष ज्ञानादि न होने पर भी शास्त्रादि के अल्प ज्ञान में जो अधिक मद करते हैं, उन्हें तो आत्मा के अपार ज्ञानसामर्थ्य की खबर ही नहीं है, वे तो अल्प ज्ञातृत्व में ही अटक

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जाते हैं। भाई ! तेरे ऐसे इन्द्रियज्ञान का मोक्षमार्ग में कोई महत्त्व नहीं है। यह इन्द्रियज्ञान तो क्षणिक विनाशी है। आत्मा की केवलज्ञान विद्या के पास १४ पूर्व का ज्ञान भी अनन्तवें भाग का है, तो तेरे बाह्य अभ्यास की क्या गिनती ? १४ पूर्व में तो अगाध ज्ञान है, वह तो भाव-लिंगी मुनि को ही होता है। धर्मी को शास्त्राभ्यास आदि हो, तथापि उसकी मुख्यता नहीं, उसको तो ज्ञानचेतना द्वारा अन्तर में अपने आत्मा के अनुभव की ही मुख्यता है। चैतन्यस्वभाव को ज्ञानस्वभाव में एकाग्र किए बिना सारी पढ़ाई व्यर्थ है। धर्मी को कदाचित् अन्य जानकारी कम हो, परन्तु अन्तर में ज्ञानचेतना द्वारा सम्पूर्ण भगवान आत्मा को जान लिया है, उसमें सब कुछ आ गया।

थोड़ी-सी जानकारी हो, वहाँ तो हमें सब कुछ आता है और दूसरों को नहीं आता – ऐसी अभिमानबुद्धि से अज्ञानी दूसरे धर्मात्मा का अनादर कर देते हैं। केवलज्ञान विद्या का स्वामी आत्मा कैसा है, उसकी उसे खबर नहीं; इसलिए वह इन्द्रियज्ञान में मग्न हो रहा है। केवलज्ञानस्वभाव को जाने तो इन्द्रियज्ञान का अभिमान न हो। इन्द्रियज्ञान तो पराधीन ज्ञान है, उसका उत्साह क्या ?

वीतरागी श्रुत का ज्ञान तो वीतराग का कारण है, वह मानादि कषाय का कारण क्यों हो ? इसलिए जैनधर्म के ऐसे दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा को मानादि कषायभावों से छुड़ाना और ज्ञान के परम विनयपूर्वक संसार के अभाव का उद्यम करना – इसप्रकार जो अपने ज्ञान को मोक्षमार्ग में लगाते हैं, उन धर्मी को ज्ञानमद या विद्यामद नहीं होता।

अरे, मेरा चैतन्य भगवान मैंने अपने में देखा है, उसकी पूर्ण परमात्मदशा के निकट अन्य किसका अभिमान करूँ ? कहाँ सर्वज्ञदशा, कहाँ मुनियों की वीतरागी चारित्रदशा और कहाँ मेरी अल्पदशा ? स्वभाव से पूर्ण परमात्मा होने पर भी जब तक केवलज्ञान को प्राप्त न करूँ, तब तक मैं

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

छोटा ही हूँ – इसप्रकार दृष्टि में प्रभुता और पर्याय में पामरता – दोनों का धर्मी को विवेक है।

(५) धनमद अथवा ऋद्धि का मद – अन्तर में अपना चैतन्यवैभव जिसे दिखा है, ऐसे धर्मात्मा बाह्य वैभव को अपना नहीं मानते, तो फिर उसका मद कैसा ? समुद्र जैसा पूर्णानन्द अपने में तरंगित है – ऐसी जहाँ प्रतीति हुई, वहाँ अन्य सर्वत्र से मद उड़ जाता है। माता-पिता-धन-शरीर-पुत्र-राजपद-प्रधानपद यह तो सब कर्मकृत हैं, इनका अभिमान क्या ? जिसने राग और पुण्य से अपने चैतन्यमूर्ति आत्मा का भिन्न अनुभव किया है, उसे राग या पुण्यफल का अभिमान क्या ? यह तो सब कर्मसामग्री है, उसमें कहीं मेरा धर्म नहीं है। (जिन्हें धर्म की प्रतीति हुई है, उन्हें कर्मसामग्री में अपनापन क्यों रहेगा ? कर्मसामग्री द्वारा पुण्य के फल द्वारा) जिसे अपनी महत्ता प्रतीत होती है, उसे कर्म से भिन्न अपना चैतन्य-वैभव दृष्टिगोचर नहीं हुआ। धर्मी जानता है कि यह वैभव मेरा नहीं है, यह तो उपाधि है।

मेरे आत्मा का वैभव तो केवलज्ञानादि अनन्तचतुष्टय से भरपूर अक्षय-अखण्ड-अविनाशी है। माता-पिता महान हों या बाह्य में अटूट पुण्य-वैभव हो, उसमें मुझे क्या ? वह तो सब कर्म की सामग्री है; वह मेरी जाति नहीं है; हम तो सिद्ध भगवंतों की जाति के तथा तीर्थंकरों के वंशज हैं; उनके मार्ग पर चलने वाले हैं। सिद्ध और तीर्थंकर भगवन्तों जैसे ही आत्मवैभव के हम स्वामी हैं। हमारा आत्मा चैतन्यदेव है, वही हमारी महानता है। यह चैतन्यदेव स्वयं महिमावन्त तथा जगत् में सर्वश्रेष्ठ है, इसके अतिरिक्त जगत में अन्य किसी पदार्थ द्वारा हमें अपनी महानता भासित नहीं होती। चैतन्य का ऐश्वर्य जिसने नहीं देखा, वह किसी न किसी पर के बहाने मिठास लेता है। जैसे निबौरी को एकत्र करके ऐसा माने कि मेरे पास कितना वैभव है ! वह तो बालक है, राजा कोई ऐसा नहीं करता। उसी प्रकार बाह्य में पुण्य वैभव तो निबौरी जैसे कड़वे विकार

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

के फल हैं, बालबुद्धि अज्ञानी उसे अपना वैभव मानते हैं, परन्तु राजा जैसा सम्यग्दृष्टि जिसने अपने सच्चे चैतन्यनिधान को अपने में देखा है- वह कभी पुण्यफल के द्वारा अपनी महानता नहीं समझता, उसे तो वह धूल के ढेर के समान पुद्गल पिंड मानता है।

भरत चक्रवर्ती को छह खण्ड का राज्यवैभव था; तथापि वे जानते थे कि हमारे चैतन्य के अखण्ड वैभव के अतिरिक्त एक रजकण भी हमारा नहीं है। हम उसके स्वामी नहीं हैं। हम छह खण्ड के स्वामी नहीं हैं, परन्तु अखण्ड आत्मा की अनुभूति के स्वामी हैं। इसप्रकार वे चैतन्य की अनुभूति में बाह्यवैभव का स्पर्श भी नहीं होने देते थे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा आत्मसम्पदा के अचिंत्य वैभव का स्वसंवेदन जिसने किया, उसे जड़ या विकार के फल का अभिमान कहाँ से रहे ? इसप्रकार धर्मी को धनमद नहीं होता; उसीप्रकार कोई अन्य धर्मात्मा-गुणवान जीव अशुभ कर्म के वश दरिद्र हो, तो उसके प्रति उसको अवज्ञा या तिरस्कारबुद्धि नहीं होती। अरे, आत्मा के चैतन्यनिधान के निकट जगत् के वैभव को तुच्छ-सड़े हुए तृण समान समझकर, उसे क्षणभर में छोड़कर, चैतन्य के केवलज्ञान निधान को साधने के लिए अनेक मुमुक्षु जीव मुनि होकर वन में चले गये। अज्ञानी जीव उस धनादि जड़ सामग्री के समक्ष अपने सुख की भीख माँगते हैं। ज्ञानी तो उसका त्याग करके अपने चैतन्यसुख की साधना करते हैं। अज्ञानी को पुण्यकर्म के उदय से धनादि सामग्री मिले, वहाँ तो उसे अभिमान हो जाता है कि मैं कितना बड़ा हो गया हूँ। अरे, भाई ! अपने इस अभिमान को छोड़ दे और अपने चैतन्यनिधान को देख। आत्मा की चैतन्यसम्पदा के सन्मुख तेरी इस जड़ विभूति का क्या मूल्य है !

देखो तो सही, सन्तों ने आत्मा के वैभव का कैसा वर्णन किया है। ऐसा वैभव अन्तर में है, वह बताया है। ऐसे वैभव वाले अपने आत्मा को

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जहाँ अनुभव में लिया, वहाँ धर्मी को बाह्यधन आदि वैभव का मद नहीं रहता।

(६) बलमद – यह शरीर ही मैं नहीं हूँ, तो उसके बल का अभिमान कैसा? मेरा आत्मा अनन्त चैतन्य बल का धारक है; उसकी प्रतीति तो हुई है; उसकी आराधना में ध्यान द्वारा ऐसा एकाग्र होऊँ कि चाहे जैसे उपसर्ग-परिषह आने पर भी चलायमान न होऊँ– ऐसी वीतरागी क्षमा दशा प्रगट करूँ, वही आत्मा का सच्चा बल है। शारीरिक बल कहीं आत्मा को साधने में काम नहीं आता।

यद्यपि तीर्थंकरों का शारीरिक बल भी दूसरों की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है, परन्तु अन्तर में चैतन्य शक्ति की प्रतीति में वे अपने को देह से भिन्न जानते हैं। भरत और बाहुबली दोनों भाई आपस में लड़े, तथापि किसी को अपने शरीर का मद नहीं था। दोनों के अन्तर में भेदज्ञान का कार्य चल रहा था। युद्ध की क्रिया हुई, इसलिए देह के साथ एकत्वबुद्धि होगी – ऐसा रंचमात्र भी नहीं है। सहज अभिमान आया, लेकिन अंतर की चैतन्यपरिणति उस अभिमान से भिन्न ही कार्य कर रही थी; उसे ज्ञानी ही पहिचानते हैं।

भरत चक्रवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि थे; उनके बल में जब अमुक सैनिकों ने शंका की, तब बल प्रदर्शन का विकल्प उठते ही भरत राजा ने अपनी अंगुली टेढ़ी कर दी और सैनिकों से कहा कि मेरी यह अँगुली टेढ़ी हो गई है, इसे सीधी कर दो। सैनिकों ने बहुत जोर लगाया, परन्तु अँगुली को सीधा न कर सके। अन्त में एक साँकल अँगुली के साथ बाँधकर ९६ करोड़ पैदल सेना ने उसे खींचा। चक्रवर्ती ने तर्जनी ऊँगली का जरा-सा झटका दिया कि सारे सैनिक पृथ्वी पर गिर पड़े– ऐसा तो उनका शारीरिक बल था और इसप्रकार का विकल्प भी आया, लेकिन शरीर और विकल्प दोनों से भिन्न ऐसी अनन्त चैतन्यशक्ति से सम्पन्न ही वह अपने को देखते हैं। ऐसी चैतन्यदृष्टि में उन्हें शरीर का मद रंचमात्र नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ऐसा ही एक प्रसंग नेमिनाथ तीर्थंकर और श्रीकृष्ण के बीच बना था। यादवों की सभा में एक बार शरीर-बल की चर्चा चल उठी। नेमिकुमार और श्रीकृष्ण दोनों चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण बड़े और नेमिकुमार छोटे थे; परन्तु छोटा फिर भी सिंह ! छोटे, परन्तु तीर्थंकर थे। वे भी सभा में गंभीर रूप से बैठे थे। सभा में किसी ने श्रीकृष्ण के बल की प्रशंसा की, किसी ने नेमिकुमार के बल की। किसका बल अधिक है, उसकी परीक्षा करने का निर्णय हुआ। उसी समय नेमिकुमार ने तर्जनी अँगुली बढ़ाकर कहा कि यदि आप में बल हो तो इसे मोड़ दो। श्रीकृष्ण तो उस अँगुली पर तुल गये, तथापि उसे मोड़ न सके। कैसा अचिंत्य शरीर-बल, तथापि उस समय आत्मा को सर्वथा भिन्न ही जानते थे। सम्यक्त्व में आठों मद का अभाव था। अस्थिरता का विकल्प आया, परन्तु उसमें सम्यक्त्व संबंधी कोई दोष न था। ऐसे सम्यक्त्व को पहिचान कर उसकी आराधना करने का उपदेश है।

धर्मात्मा को प्राकृतिकरूप से पुण्य का वैभव होता है, लेकिन वह जानता है कि इस पुण्य के वैभव में हम नहीं हैं। हमारे चैतन्य का वैभव इससे निराला है। हमारा सामर्थ्य हमारे अंतर में समाया है। हमारे चैतन्य का बल कहीं शरीर में नहीं है। ऐसी प्रतीति में धर्मी को बल का मद नहीं होता। शरीर से जो धर्म होना मानते हैं, उन्हें मद हुए बिना नहीं रहता।

(७) तपमद – स्वयं कोई उपवास, स्वाध्यायादि तप करता हो और अन्य धर्मात्मा को उपवासादि की विशेषता न हो, वहाँ धर्मी जीव अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा मानकर तपमद नहीं करता। अहा, सच्चे तपस्वी तो वे शुद्धोपयोगी मुनि भगवन्त हैं कि जो चैतन्य के उग्र प्रतपन द्वारा वीतरागभाव प्रगट करके कर्मों को भस्म कर देते हैं, मैं तो अभी प्रमाद में ही पड़ा हूँ। शरीर की निर्बलता से कोई उपवासादि तप न कर सकता हो, लेकिन ज्ञान-ध्यान की उग्रता द्वारा आत्मा की शुद्धता की वृद्धि करता हो, वह धन्य है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को तप का मद

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होता। मद वह तो कषाय है और तप वह कषाय नष्ट करने के लिए है।

(८) ऐश्वर्यमद – अर्थात् पूज्यपने का मद अथवा अधिकार का मद; वह धर्मात्मा को होता नहीं। हम तो सर्वज्ञ के पुत्र हैं। हमारा पद तो सर्वज्ञपद है, अन्य कोई हमारा पद नहीं। केवलज्ञान द्वारा ही हमारी महत्ता है, इसके अतिरिक्त बाह्य में राज्यपद या प्रधानपद द्वारा हमारे आत्मा की महत्ता नहीं – ऐसा जानने वाले धर्मी को बाह्य महत्ता का मद नहीं होता। पुण्य के योग से बाह्य महत्ता अधिक हो, परन्तु उसके कारण अपने आत्मा की महत्ता धर्मी नहीं मानते।

श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा है कि – **'लक्ष्मी अने अधिकार बधतां शुं वध्युं ते तो कहो ?'** यह तो सब संसार का ठाठ-बाट है; इसमें कहीं आत्मा की शोभा नहीं है। मेरा आत्मा स्वयंसिद्ध परमेश्वर है, उसके समक्ष ऐसा कौन-सा ऐश्वर्य या महत्ता है कि जिसका मैं मद करूँ ? अरे, राग और राग का फल वह तो सब अपद हैं, अपद हैं। लोग बाह्य पदवी के लिए लालायित रहते हैं; लेकिन धर्मी जानता है कि मेरे चैतन्य के पद के सन्मुख चक्रवर्तीपद भी तुच्छ प्रतीत होता है। ऐसा चैतन्यपद जिसने प्राप्त किया है (जाना है और अनुभव किया है) वह अन्य किस पद का अभिमान करे ? अहा, तीन लोक में सबसे उच्च ऐसा मेरा चैतन्यपद मैंने अपने अन्तर में देखा है। अन्तर में आनन्द की अपूर्व वीणा बजी है। अतीन्द्रिय सुख की तरंगों से चैतन्य-समुद्र उमड़ पड़ा है – ऐसा आनन्दस्वरूप मैं स्वयं हूँ...आनन्द से उच्च जगत में दूसरा क्या है ? ऐसी आत्मानुभूति के द्वारा धर्मात्मा को जगत् के ऐश्वर्य का मोह नष्ट हो गया है, इसलिए उसे कहीं ऐश्वर्य का मद नहीं होता।

उच्च अधिकार हों, लाखों-करोड़ों लोगों में पुजता हो, सम्पूर्ण देश में आज्ञा चलती हो; लेकिन उसके द्वारा धर्मी अपने आत्मा की रंचमात्र भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

महानता नहीं मानता। मेरी महानता तो मेरे स्वभाव में ही है, दूसरे मुझे क्या महत्ता देंगे ? दूसरों के पास महानता लेने जाना पड़े – ऐसा पराधीन मैं नहीं हूँ। इसप्रकार धर्मी को बड़प्पन का मद नहीं होता; उसीप्रकार अन्य जीव अशुभकर्म के उदय से दरिद्र हो, उसकी अवज्ञा भी नहीं करता। बाह्य ऐश्वर्य हो या न हो, वह तो कर्मकृत (कर्मों का फल) है। उसका स्वामित्व धर्मी को नहीं है। मिथ्यादृष्टि बड़ा राजा हो और सम्यग्दृष्टि उसकी नौकरी करता हो – यह तो सब शुभाशुभ कर्म का खेल है, इनसे धर्मी अपने को दीन नहीं मानता। अपने अक्षय ज्ञानादि अनन्त ऐश्वर्य को वह अपने में देखता है। इसप्रकार धर्मी को मद या दीनता का अभाव है।

धर्मात्मा को सम्यक्त्वपूर्वक ऐसे आठ मद का अभाव हुआ है। स्वद्रव्य और परद्रव्य की अत्यन्त भिन्नता को जिसने जान लिया है, उसको परवस्तु द्वारा अपना बड़प्पन भासित नहीं होता। माता-पिता-शरीर-रूप-धन आदि जो वस्तुएँ मेरी हैं ही नहीं, उनके द्वारा मेरी महत्ता कैसी ? मेरी महत्ता तो मेरी सम्यक्त्वादि स्वभाव द्वारा ही है। सुन्दर शरीर और बाह्य बड़प्पन, वह तो कई बार मिला, उसमें जिसे अपनी शोभा प्रतीत होती है, उसे चैतन्य से शोभायमान ऐसे अपने आत्मा की प्रतीति नहीं है। देह, जाति, रूप, माता, पिता, धन, वैभव, उच्च पदवी – ये सब परद्रव्य हैं। इन सबसे अपने आत्मा को सर्वथा भिन्न अनुभव करने के बाद धर्मी को उन पदार्थों के द्वारा अपना बड़प्पन कैसे भासित हो ? इसलिए उसके आठ मद नहीं होते। कोई विकल्प आ भी जाये, तो उसे मलिन जानकर वह भाव छोड़े और दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्व की आराधना करे – ऐसा उपदेश है।

इसप्रकार आठ शंकादि दोष तथा आठ मद सम्यग्दृष्टि को नहीं होते; इसके अतिरिक्त छह अनायतन और तीन मूढ़ता का सेवन भी उसे नहीं होता। अरहन्त परमात्मा ने जीव का जैसा स्वरूप बतलाया है तथा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप जो वीतरागमार्ग बतलाया है, उससे विपरीत कहने वाले ऐसे कुदेव-कुगुरु-कुधर्म को धर्मी जीव सब प्रकार से छोड़ता है। किसी भी प्रकार उसकी अनुमोदना नहीं करता तथा कुदेव-कुगुरु-कुधर्म की सेवा करने वाले मिथ्यादृष्टि जीवों का साथ भी छोड़ देता है। धर्मबुद्धि से ऐसे जीव का साथ वह नहीं कर सकता तथा देव संबंधी अनेक मूढ़ताएँ, गुरु संबंधी अनेक मूढ़ताएँ तथा धर्म संबंधी अनेक मूढ़ताएँ लोगों में प्रचलित हैं; परन्तु धर्मी स्वप्न में भी उनका सेवन नहीं करता।

जो धर्म का स्थान नहीं, जिसके पास धर्म का सच्चा उपदेश नहीं, सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जिसमें नहीं, अनेक प्रकार से जो विषय-कषाय एवं राग-द्वेष के पोषक हैं, जिनमें हिंसा-अहिंसा का भी विवेक नहीं – ऐसे कुदेव, कुगुरु, कुधर्म; वे धर्म के अनायतन हैं। उनके सेवन से आत्मा का किंचित् मात्र हित नहीं होता, उनके सेवन से तो सम्यक्त्वादि का घात होता है और आत्मा का अत्यन्त अहित होता है। कुदेवादि का सेवन सम्यग्दृष्टि को तो होता ही नहीं, लेकिन जैन नाम धारण करने वाले जिज्ञासु को भी ऐसे कुदेवादि का सेवन नहीं होता। वीतरागमार्ग के देव-गुरु-धर्म और उनका सेवन करनेवाले साधर्मी-धर्मात्मा के अतिरिक्त दूसरे का सेवन अहित का कारण जानकर अत्यन्त छोड़ने योग्य है।

सम्यग्दृष्टि, महान अलौकिक आत्मा के अंतरस्वभाव की जिसे प्रतीति हुई है, उसे निश्चय सम्यक्त्व के साथ व्यवहार भी पच्चीस दोष रहित होता है। आजीविका छूट जाये, धन लुट जाये, देश को छोड़ना पड़े या प्राण जायें, तथापि सम्यग्दृष्टि जीव किसी भी प्रकार के भय से, आशा से, स्नेह से कुधर्म की या कुदेवादि की आराधना नहीं करता। वीतरागी देव-गुरु-धर्म का भक्त हिंसक देव-देवियों को नमन नहीं करता।

अहा, अरिहन्तदेव का उपासक तो चैतन्य के वीतरागमार्ग पर चलने वाला है, वह अन्य कुमार्ग का आदर क्यों करेगा ? वह कुमार्ग की या

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उसके सेवक की प्रशंसा नहीं करता, अनुमोदना नहीं करता। कुधर्म खूब फैला हुआ हो, अतः अच्छा है, उसके भक्त अच्छे हैं; शास्त्र-मन्दिर अच्छे हैं – ऐसी प्रशंसा धर्मी नहीं करता। कुधर्म के सेवक कोई बड़ा मन्दिर बनवायें, लाखों रुपया खर्च करके विशाल यज्ञादिक उत्सव करें; वहाँ धर्मी उनकी प्रशंसा भी नहीं करता कि तुमने बहुत अच्छा कार्य किया है। अरे, वीतरागमार्ग से विरुद्ध ऐसा कुमार्ग, जो जगत् के जीवों का अहित करने वाला हो, उसकी प्रशंसा क्या ? जिसमें मिथ्यात्व का पोषण हो उन क्रियाओं को अच्छा कौन कहे ?

इसप्रकार कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का तो स्वयं सेवन नहीं करता, तथा दूसरे; जो सेवन करें, उनकी प्रशंसा भी नहीं करता, परन्तु संभव हो तो उन्हें उपदेश देकर कुमार्ग से छुड़ाता है। धर्मी गृहस्थ राजा को या माता-पिता आदि बड़ों को नमन करे, वह तो लोक व्यवहार है, उसके साथ कहीं धर्म का संबंध नहीं है, लेकिन धर्म के व्यवहार में वह कुदेव-कुगुरु को कभी नमन नहीं करता। यह बात तो उनके लिए है, जिन्हें सम्यग्दर्शनरूपी महारत्न लेना है, धर्म का सच्चा माल लेना है तथा जिन्होंने सम्यग्दर्शनरूपी रत्न प्राप्त कर लिया है, उन्हें उसको सँभालने की बात है। सम्यक्त्व में किंचित् भी अतिचार न लगे और शुद्धता हो, इसलिए पच्चीस दोष रहित और आठ गुण सहित सम्यक्त्व की आराधना करनी चाहिए। उसके द्वारा ही जीव का परम हित होता है।

भाई ! यह तो अपने हित के लिए सच्चे-झूठे का विवेक करने की बात है। सच क्या और झूठ क्या, इसकी जिसे खबर नहीं, वह क्या लेगा ? और क्या छोड़ेगा ? अपना हित किसप्रकार करेगा ? परीक्षा द्वारा सच्चे-झूठे को पहिचान कर निर्भयरूप से सत्य का स्वीकार करना चाहिए और असत्य का सेवन छोड़ना चाहिए। जगत् के साथ मेल रखने या जगत् को अच्छा दिखाने के लिए कहीं धर्म को नहीं छोड़ना चाहिए। यह तो अपनी श्रद्धा सच्ची करने की बात है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

वीतरागी देव-गुरु-धर्म का आदर और उससे विपरीत कुदेव-कुगुरु-कुधर्म का त्याग, इतना तो सम्यक्त्वी पात्रतारूप प्रथम भूमिका में होना चाहिए। ''त्याग-विराग न चित्त में थाय न तेने ज्ञान'' – ऐसा श्रीमद् राजचन्द्र ने कहा, उसमें कुदेवादि का त्याग तो पहले ही समझ लेना चाहिए। दूसरे तो अनेक प्रकार के त्याग किए, परन्तु कुदेव-कुगुरु के सेवन का त्याग न करे तो उसका रंचमात्र भी हित नहीं होता और जहाँ राग को धर्म माना, वहाँ वैराग्य कहाँ रहा ? अरे, देह से भिन्न मेरा अखण्ड चैतन्यतत्त्व क्या है और उसका अनुभव कैसा है? उसका सच्चा स्वरूप बतलाने वाले वीतराग सर्वज्ञदेव, रत्नत्रयवन्त गुरु और रागरहित धर्म तथा शास्त्र को जो पहिचाने, वह जीव उससे विरुद्ध अन्य किसी को मानता नहीं, नमन नहीं करता और प्रशंसा नहीं करता।

एक ओर कुन्दकुन्दाचार्य जैसे वीतरागी सन्तों का भक्त कहलाये तथा दूसरी ओर उनसे विरुद्ध कहने वालों का आदर तथा श्रद्धा करे तो उसे सत्य का विवेक कहाँ रहा ? भाई ! वीतरागमार्ग के और वीतरागी सन्तों के विरोधी ऐसे कुगुरु के सेवन में तो मिथ्यात्व की पुष्टि तथा तीव्र कषाय के द्वारा आत्मा का बहुत अहित होता है, जिससे उसका निषेध करते हैं। इसमें कहीं किसी व्यक्ति के विरुद्ध द्वेष नहीं है, परन्तु जीवों की हितबुद्धि ही है। अपनी श्रद्धा स्वच्छ रहे, उसमें दोष न लगे, उसकी बात है। सत्यमार्ग से विरुद्ध विकल्प धर्मी कभी आने नहीं देता। मिथ्यात्व-संबंधी दोषों से बचने और सम्यक्त्व की शुद्धि बनाये रखने के लिए नि:शंकितादि आठ अंग आदरणीय हैं।

इसप्रकार सम्यक्त्व संबंधी गुण-दोष को पहिचान कर अपने हित के लिए नि:शंकितादि आठ गुणसहित, शंकादिक पच्चीस दोषरहित शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करो – ऐसा उपदेश है।

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सम्यक्त्व धारक जीव की अंतरंग दशा और उसकी महिमा

आठ गुणसहित और पच्चीस दोषरहित ऐसा सम्यक्त्व धारण करने को कहा; अब ऐसे सम्यक्त्व का धारक जीव कैसा होता है, यह दिखाकर उसकी महिमा कहते हैं –

(छन्द-जोगीरासा)

दोषरहित गुणसहित सुधी जे, सम्यग्दरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम पै सुरनाथ जजै हैं।।
गेही, पै गृह में न रचैं ज्यों, जलतैं भिन्न कमल है।
नगरनारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है।।१५।।

अहो, सम्यग्दर्शन चीज क्या है ? लोगों को उसके मूल्य की खबर नहीं है; सम्यग्दृष्टि को लेश भी संयम न हो तो भी वह प्रशंसनीय है, देव भी उसके सम्यक्त्व की महिमा करते हैं। दोषरहित व गुणसहित सम्यग्दर्शन जिसने धारण किया है, सम्यग्दर्शन से आत्मा को अलंकृत किया है, वह उत्तम बुद्धिमान गृहवास में रहता हुआ भी गृह में जरा भी रत नहीं होता; जैसे जल के बीच में रहा हुआ भी कमल जल से भिन्न है। जैसे नगरनारी का प्रेम सच्चा प्रेम नहीं है और जैसे कीट के बीच भी सुवर्ण मलिन नहीं होता; वैसे गृहवास में रहते हुए भी सम्यग्दृष्टि का अलिप्तपना समझना। देखो, सम्यग्दृष्टि की अंतरंग दशा समझाने के लिए तीन दृष्टान्त दिये।

यहाँ सम्यग्दृष्टि को 'सुधी' कहा है। सु-धी माने सम्यक्बुद्धि है। जिसकी बुद्धि सच्ची ऐसी बुद्धि वाला; चैतन्य को साधने में सच्ची बुद्धि वाला सम्यग्दृष्टि वह 'सुधी' है, अन्य सब कुबुद्धि है। सुबुद्धि सम्यग्दृष्टि विषयों से पार आत्मा का अनुभव करने वाला, उसे कदाचित् जरा भी

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

संयमदशा न हो, अभी विषयासक्ति भी हो, गृहवास में हो तो भी सुरनाथ इन्द्रादि देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं (सुरनाथ जजै हैं) – ऐसी सम्यग्दर्शन की महिमा है।

जिसने अपनी बुद्धि आत्मा में लगायी, वही सच्चा बुद्धिमान् है - अन्य जानकारी भले कम हो। अष्ट गुणरूपी अलंकारों से वह विभूषित है। उसे मुनिदशा की भावना रहते हुए भी अभी चारित्र-मोह विद्यमान होने से वह संयम नहीं ले सकता, कर्म के कारण से नहीं; परन्तु चारित्रमोह के आधीन अपने दोष के कारण; अपने इतने दोष से वह आरंभ-परिग्रह में रहा है, अभी विषय-व्यापार छोड़कर मुनि नहीं हुआ है, संयम या व्रत लेश भी नहीं है, व्यापार-धन्धा-स्त्री आदि होते हैं, किन्तु वह सम्यग्दृष्टि उसमें कहीं राचता नहीं, वह उसमें लीन नहीं, अपितु भिन्न है, उसका सम्यग्दर्शन बिगड़ता नहीं, वह तो अपने को जलकमलवत् जुदा अनुभव करता है; अन्तर में चैतन्य के विषयातीत सुख का स्वाद लिया है, अतः विषयों में कहीं सुख मानकर लिप्त नहीं होता। व्रतादि का अभाव होने पर भी उसमें सम्यक्त्व का दोष नहीं है, सम्यग्दर्शन तो उसका भी तीन लोक में सर्वत्र प्रशंसनीय ही है।

सम्यग्दर्शन के प्रभाव से अनंतानुबंधी कषायों का अभाव होकर स्वरूपाचरण तो हुआ है, किन्तु अभी मुनि का या श्रावक का व्रत-चारित्र न होने से वह असंयमी है, असंयमी होते हुए भी वह प्रशंसनीय है; असंयम कहीं प्रशंसनीय नहीं परन्तु सम्यग्दर्शन प्रशंसनीय है; उसके प्रताप से वह मोक्ष को साध रहा है।

और जिसको चैतन्यतत्त्व का ज्ञान नहीं है, वह राग की रुचि से मिथ्यात्व-सहित अनन्तानुबंधी कषायों में वर्तता है, उसे विषयों की रुचि हटी नहीं; क्योंकि जिसे राग का प्रेम है, उसे राग के फलरूप विषयों का प्रेम भी है ही, वह शुभराग से व्रतादि का पालन करे तो भी शास्त्रकार उसे प्रशंसनीय नहीं कहते; क्योंकि वह (सम्यग्दर्शन के बिना) मोक्ष के मार्ग में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं आया। यही बात भी समन्तभद्र महाराज ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहा है कि – गृहस्थ सम्यग्दृष्टि जो कि निर्मोही है, दर्शनमोहरहित है वह तो मोक्षमार्ग में स्थित है, परन्तु जो मोहवान् है – ऐसा मिथ्यादृष्टि अनगार (द्रव्यलिंग धारक साधु) मोक्षमार्ग में नहीं है; अत: मोहवान मुनि से निर्मोही गृहस्थ श्रेष्ठ है-भला है-उत्तम है-प्रशंसनीय है। अहो, ऐसे सम्यग्दर्शन समान श्रेयकर तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है।

कोई मिथ्यादृष्टि सूखी रोटी खाता हो या उपवास करता हो तो भी उसे राग में तथा विषयों में सुखबुद्धि है और कोई सम्यग्दृष्टि मिष्ठान्न खा रहा हो, फिर भी उसे उसका रस नहीं है, चैतन्यसुख को चखकर विषयों में से सुखबुद्धि हट गई है, अत: वह विषयों में रत नहीं है। यद्यपि चारित्रमोह के कारण विषयासक्ति है; परन्तु सम्यक्त्व में दोष नहीं है।

प्रश्न – सम्यग्दृष्टि के बाह्यविषय होते हैं, तब फिर हमें भी हो तो क्या दोष?

उत्तर – अरे भाई ! यह तेरा स्वच्छन्दत्व है; सम्यग्दृष्टि का हृदय देखना तुझे नहीं आता। तुझे आत्मा के विषयातीत सुख की पहचान नहीं है और तेरी बुद्धि राग में ही लगी हुई है, अत: तू राग को व विषयों को ही देखता है; परन्तु सम्यग्दृष्टि के अंतर में रागातीत-विषयातीत जो ज्ञानचेतना विद्यमान है, उसे तो तू नहीं देखता, वह ज्ञानचेतना विषयों को या राग को छूती ही नहीं, दूर ही दूर रहती है और ऐसी चेतना के प्रभाव से ही सम्यग्दृष्टि प्रशंसनीय है। जबकि तेरे में तो ज्ञानचेतना है ही कहाँ ? तू तो राग में ही लवलीन है, फिर भी कहता है कि 'हमें क्या दोष ?' – यह तो तेरा स्वच्छन्दत्व है।

एक ही घर में दो पुत्र हों, दोनों एक-सा भोगोपभोग करते हों, फिर भी उस समय एक को तो अनन्तकर्मबंध होता है, दूसरे को अल्प, उसका कारण ? अन्तर की दृष्टि के अन्तर के कारण बड़ा फर्क पड़ जाता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अरे, सम्यग्दृष्टि तो परमात्मा का पुत्र हो गया, परमात्मा की गोद में बैठा, अब तो उसे केवलज्ञान लेने की तैयारी हो गई; मोक्षमहल की सीढ़ी पर चढ़ने का उसने प्रारम्भ कर दिया। (मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी...यह बात १७वें श्लोक में कहेंगे।)

अहो, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को बहुमान से धारण करो; थोड़ा भी समय व्यर्थ मत गँवाओ, प्रमाद छोड़ दो, अंतर में शुद्धात्मा का अनुभव करके सम्यग्दर्शन को अभी ही धारण कर लो।

सम्यग्दृष्टि के लेश भी संयम-व्रत न होने पर भी दृष्टि अपेक्षा से वह सारे लोकालोक से उदासीन हो गया है; उसका आदर देव भी करते हैं –

'वाह! धन्य आपकी आराधना, धन्य आपका अवतार;
भव का किया अभाव ऐसा धन्य आपका अवतार;
सम्यग्दर्शन से आपने मानव जीवन को सफल किया;
आप जिनेश्वर के पुत्र हुए और मोक्ष के साधक हुए।

इन्द्र स्वयं भी सम्यग्दृष्टि है, अवधिज्ञानी है, उसने सम्यक्त्व की महिमा अपने अन्दर अनुभूत की है, इसलिए असंयमी मनुष्य के या तिर्यंच के भी सम्यग्दर्शन की वह प्रशंसा करता है; भले ही वस्त्रादि परिग्रह हो, इससे कहीं सम्यग्दर्शन रत्न का मूल्यांकन कम नहीं हो जाता। जैसे फटे-टूटे, मलिन वस्त्र से लिपटे हुए अमूल्य रत्न का मूल्य कुछ कम नहीं हो जाता, वैसे गृहस्थ का सम्यक्त्वरूपी अमूल्य रत्न असंयमरूपी मलिन वस्त्र में लिपटा हुआ हो तो भी उसका मूल्य कुछ भी कम नहीं हो जाता। सम्यग्दर्शन के होने से वह गृहस्थ भी मोक्ष का पथिक है।

सम्यग्दृष्टि आत्मा के आनन्द में रहने वाला है; जहाँ आत्मा के आनन्दरस का स्वाद लिया कि जगत के समस्त विषयों का प्रेम छूट गया। उसकी दशा कोई परम गंभीर है, उसे बाहर से नहीं पहचाना जाता। अपने चिदानंदस्वभाव का अनुभव करके जिसने भव का अभाव किया है, ऐसे सम्यग्दर्शन की महिमा अचिंत्य है; अनादि के दुख का नाश कर अपूर्व

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षसुख का वह देने वाला है; जो अनन्त काल में पूर्व कभी नहीं लिया था, वह उसने किया; ऐसे सम्यग्दर्शन का स्वरूप व उसकी महिमा बहुत गम्भीर है; कहीं देवों के द्वारा पूजा-सत्कार होने की वजह से उसकी महिमा नहीं है। उसकी महिमा तो अन्दर में आत्मा की अनुभूति से है; इस अनुभूति की महिमा वचनातीत है।

सिद्धान्त में कहा है कि, राग में जिसे एकत्वबुद्धि है – ऐसे मिथ्यादृष्टि-महाव्रती की अपेक्षा से तो, राग से भिन्न चैतन्य का अनुभव करने वाला सम्यग्दृष्टि-अव्रती भी पूज्य है-महान है-प्रशंसनीय है। 'अहो, अपने आत्मा का काम कर लिया, आत्मा की अनुभूति करके आप भगवान के मार्ग में आये' – इसप्रकार इन्द्र भी अपना साधर्मी समझकर उसके प्रति प्रेम-अनुमोदन करता है। ऐसा मनुष्यभव में पंचमकाल की प्रतिकूलता के बीच में भी अपने आत्मा को साध लिया, आपको धन्य है ! इसप्रकार 'सुरनाथ जजै हैं' अर्थात् उसके सम्यक्त्व का बहुमान करता है, प्रशंसा करता है, अनुमोदन करता है। श्री कुन्दकुन्दस्वामी जैसे वीतरागी सन्त भी अष्टप्राभृत में कहते हैं कि –

वह धन्य है कृतकृत्य है शूरवीर है पण्डित है।
सम्यक्त्व-सिद्धि कर अहो ! नहीं स्वप्न में दूषित है।।

सम्यग्दृष्टि कदाचित् चाण्डाल के देह में रहा हो तो भी वह देव जैसा है – यह बात श्री समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्ड श्रावकाचार में की है –

सम्यग्दर्शनसम्पन्नम् अपि मातंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्म गुढांगारान्तरौजसम्।।२८।।

चाण्डाल शरीर में उपजा हो तो भी जो जीव सम्यग्दर्शन सम्पन्न है, उसे गणधरदेव 'देव' कहते हैं; भस्म से ढके हुए तेजस्वी अंगार की तरह वे जीव सम्यक्त्व से शोभते हैं। सम्यग्दृष्टि तिर्यंचपर्याय में हो या स्त्रीपर्याय में हो तो भी सम्यक्त्व के प्रताप से वह प्रशंसनीय है। तिर्यंच पर्याय या स्त्रीपर्याय लोक में सामान्यत: निंदनीय होती है, परन्तु वह भी यदि सम्यग्दर्शन

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सहित हो तो प्रशंसनीय है। भगवती-आराधना में भी सम्यग्दृष्टि स्त्री की बहुत प्रशंसा की है। (देखिये गाथा ९९४ से ९९९)

गृहस्थ सम्यग्दृष्टि स्त्री हो पुत्रादि सहित भी हो, किन्तु वह गृह में राचती नहीं, उनकी रुचि आत्मा में है। जिनको आत्मा से भिन्न जान लिया, उनकी रुचि कैसे रहे ? स्वानुभव के द्वारा स्व-पर का विभाग कर दिया है कि मैं ज्ञानानंदस्वरूप ही हूँ और शुद्धात्मा के विकल्प से लेकर सारी दुनिया अब मेरे से भिन्न है – ऐसी भेदज्ञान की दृष्टि की अपार महिमा है, उसका अपार सामर्थ्य है; अहा, उसने अपनी अंतर की परिणमन धारा में आनंदमय स्वघर देखा है, वह राग को पर घर समझकर उसमें जाना नहीं चाहती; चित्त चैतन्यधाम में लगा है, वहाँ से हटता नहीं और जहाँ से जुदा हुआ, वहाँ जाना नहीं चाहती।

आठ वर्ष की छोटी बेटी हो, सम्यग्दर्शन प्रगट कर लिया हो और उसके माता-पिता को खबर पड़े तो वे भी कहते हैं कि वाह बेटी ! धन्य है तेरा अवतार ! तूने आत्मा का काम करके जीवन सफल किया। आत्मा में सम्यक्त्व-दीपक प्रगटा कर तूने मोक्ष का पथ पा लिया। उम्र भले छोटी हो, किन्तु जिसने आत्मा को साध लिया, वह सराहनीय है, देव भी उसकी प्रशंसा करते हैं।

सम्यग्दृष्टि जीव परभावों से एवं संयोगों से अलिप्त रहता है; बाह्य में विशेष त्याग भले न हो, असंयमी हो, गृहवास में स्त्री-पुत्रादि के साथ रहता हो तो भी अंतर की दृष्टि में वह कितना अलिप्त है ? यह बात यहाँ तीन दृष्टान्त से समझायी गयी है –

(१) जल के बीच कमल की तरह वह अलिप्त है। समयसार की १४वीं गाथा में भी आत्मा का अलिप्त (अबद्ध-अस्पृष्ट) स्वभाव दिखाने के लिए यह दृष्टान्त दिया है। जैसे कमलपत्र पानी के बीच रहा दिखता है, परन्तु उसका अलिप्त स्वभाव देखो तो वह पानी से छुआ ही नहीं; वैसे धर्मात्मा संयोग और रागरूपी कादव के बीच रहा दीखे, परन्तु उसके

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानभाव को देखो तो वह परभाव से अलिप्त है। ज्ञान तो राग से भिन्न ही है, वह ज्ञान परभावों से लिप्त नहीं होता। आत्मा का ज्ञान पर से भिन्न है; जिनको अपने से भिन्न जाना, उनमें आत्मबुद्धि कैसे हो ? और जिसका अपने स्वरूप से अनुभव किया – ऐसी चैतन्यसत्ता का अस्तित्व कभी छूटता नहीं; उसकी दृष्टि, उसकी श्रद्धा कभी नहीं छूटती। इसप्रकार चैतन्यसत्ता के ऊपर जिसकी दृष्टि है, उसकी चेतना परभाव से कभी लिप्त नहीं होती, वह अपने ज्ञान को कभी परभावरूप अनुभव नहीं करता। उसे निरंतर भेदज्ञान है कि मेरे ज्ञान का एक अंश भी अन्यरूप नहीं हुआ है, ज्ञान परभाव के किसी भी अंश को नहीं छूता, अलग ही अलग अलिप्त ही रहता है। इसप्रकार सम्यग्दृष्टि गृहवास में रहा हो तो भी जलकमलवत् अलिप्त ही है।

(२) जैसे सुवर्ण कीचड़ के बीच पड़ा हो तो भी उसे कीचड़ की जंग नहीं लगती, सोने का स्वभाव ही जंग से रहित है; वैसे असंयमरूपी कीच के बीच रहते हुए भी धर्मात्मा का सम्यग्दर्शन सोने जैसा शुद्ध है, वह मलिन नहीं होता। चैतन्यबिंब आत्मा जिस दृष्टि में आया, उस दृष्टि की शुद्धता में ऐसा सामर्थ्य है कि वह किसी भी परभाव को अपने में आने नहीं देती; रागादि परभाव के होने पर भी श्रद्धा-ज्ञान तो सौटंच के सोने जैसे शुद्ध वर्तता है; ज्ञान और विकल्प को वे अत्यन्त भिन्न ही रखते हैं। विकल्प का प्रवेश ज्ञान में नहीं होता, ज्ञान विकल्परूप नहीं होता। ऐसे ज्ञानवंत सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा प्रशंसनीय है।

ऐसा कहा जाता है कि सम्यग्दृष्टि चलते हुए भी स्थिर है, बोलते हुए भी मौन है; क्योंकि शरीर से और वचन से अत्यंत भिन्न अपना चेतनस्वरूप जान लिया है, उसमें ही वे वर्तते हैं; अंतर की दृष्टि और ज्ञान तो निजभाव में स्थिर बैठे हैं, वे कहीं विकल्प में या वाणी में नहीं जाते; इसलिए ज्ञानी तो स्थिर ही है। अहो, ज्ञानी की ऐसी अंतरंगदशा को कोई विरले ही पहचानते हैं। बाह्य दृष्टि से देखने वाले लोग ज्ञानी को नहीं पहचान सकते।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि जीवडो करै कुटुंब प्रतिपाल।
फिर भी अंतर से तो भिन्न है, ज्यों धाय खिलावे बाल॥

धाय माता बच्चे को पुत्र की तरह ही प्रेम करके सम्हालती है, खिलाती है, लालन-पालन करती है, 'पुत्र' कहकर बुलाती है, फिर भी अन्तर में उसको भान है कि इस पुत्र को जन्म देने वाली माता मैं नहीं हूँ, यह मेरा पुत्र नहीं है; वैसे धर्मात्मा शरीरादि की चेष्टा करता हुआ दिखने में आवे, 'यह मेरा घर' इत्यादि भाषा भी बोलता हो, परन्तु अन्तर की दृष्टि में उसे भान है कि मैं तो चैतन्य हूँ; मेरे चैतन्यभाव के सिवाय अन्य कोई वस्तु रंचमात्र भी मेरी नहीं है; मेरी चेतना परभाव की जनेता (जन्म देने वाली) नहीं है – ऐसा भेदज्ञान ज्ञानी को एक क्षण भी नहीं छूटता और परभाव के साथ या संयोग के साथ जरा भी एकत्व नहीं होता।

(३) तीसरा दृष्टान्त है नगरनारी के प्यार का। जैसे वेश्या का परपुरुष के प्रति जो प्रेम है, वह सच्चा प्रेम नहीं है, उसे तो लक्ष्मी का प्रेम है; वैसे जिसने अपने चैतन्यतत्त्व का पर से अत्यन्त भिन्न अनुभव किया है – ऐसे चैतन्यदृष्टिवंत धर्मात्मा को, परवस्तु को अपनी मानकर उसके प्रति प्रेम नहीं होता, उसका सच्चा प्रेम तो अपनी चैतन्यलक्ष्मी में ही है। इस दृष्टान्त से धर्मी की अन्तरदृष्टि में पर के प्रति प्रेम का अभाव दिखलाया है। अपने चैतन्य सिवाय जगत् में कहीं भी पर के प्रति आत्मबुद्धि से उसे राग नहीं होता, अत: वह अलिप्त है।

इसप्रकार तीन दृष्टान्त के द्वारा सम्यग्दृष्टि-धर्मात्मा का अलिप्त भाव जानना। आत्मा के सिवाय अन्यत्र कहीं भी उसका मन संतुष्ट नहीं होता, आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई चीज उसे प्रिय नहीं लगती, उसका सच्चा प्रेम व एकता आत्मा में ही है। पर के प्रति कुछ राग होता है, परन्तु उसमें कहीं (पर में या राग में) अंशमात्र सुखबुद्धि नहीं है। राग और स्वभाव के बीच बड़ी खाई हो गई है, अत्यन्त भिन्नता हो गई है, वह कभी एक होने वाली नहीं। राग और ज्ञान को वह जुदा ही जुदा अनुभवता है। ऐसी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ज्ञानदशावंत सम्यग्दृष्टि की महिमा अपार है। जैसे श्रीफल के भीतर सफेद-मीठा गोला है, वह छिलके से जुदा है, वैसे धर्मात्मा के अन्तर में चैतन्यरस का मीठा पिण्ड है, वह रागादि परभावों से जुदा है; चैतन्यरस रागरूप नहीं होता; संयोग एवं राग से धर्मी अपने को जुदा ही देखता है।

भरत चक्रवर्ती या छोटा मेंढ़क, जो भी सम्यग्दृष्टि हैं, उन सबकी ऐसी दशा होती है। उन्होंने आकाश जैसा अलिप्त अपना स्वभाव देखा है, अत: परभाव के प्रेम से वे लिप्त नहीं होते; उन्हें असंयम से जो रागादि है, उसको भी वे छोड़ना चाहते हैं, उसको पुष्ट करना नहीं चाहते। वैसे तो उन सब परभावों को अपने चैतन्यस्वभाव की अनुभूति से भिन्न जानकर अभिप्राय में तो उनको छोड़ ही दिया है कि ये कोई भाव मैं नहीं हूँ। स्वानुभूति के द्वारा स्व-पर का विवेक हुआ है; अत: स्वतत्त्व में ही प्रीति है, पर की प्रीति छूट गई है।

विषय-कषाय तो पाप है, धर्मी भी उसे पाप ही समझता है; किन्तु उसी समय धर्मी के अंतर में जो सम्यग्दर्शन है, वह शुद्ध है, प्रशंसनीय है, वह मोक्ष का कारण है। उस सम्यग्दर्शन का भाव विषय-कषायों से अलिप्त है। भिन्न-भिन्न तरह की दो धारायें एक साथ चल रही हैं, एक सम्यक्त्वादि शुद्ध भाव की धारा और दूसरी रागधारा; उनमें से शुद्धभाव की धारा के साथ धर्मी की तन्मयता है और उसी के द्वारा ही धर्मी की सच्ची पहचान होती है। अज्ञानी अकेली रागधारा को देखता है, अत: वह धर्मी को नहीं पहचान सकता।

अहा, देखो यह वीतरागी जैनमार्ग ! इसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन, वह भी कैसी अलौकिक है! जैनमार्ग को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी सम्यग्दर्शन या सच्चा आत्मज्ञान नहीं होता; अत: सच्चा चारित्र भी नहीं होता। ऐसे अन्य मार्ग की मान्यता में तो गृहीत मिथ्यात्व है; धर्मी को ऐसे कुमार्ग का आदर नहीं होता। उसने तो चैतन्य के अनन्तगुण के रस से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भरपूर अतीन्द्रिय आनन्द के अनुभवसहित आत्मा की प्रतीति की है, उसके साथ में नि:शंकितादि आठ गुण होते हैं। उसे तीव्र कषाय के कोई कार्य नहीं होते। मांस-अण्डे-शराब आदि अभक्ष्य वस्तु का सेवन कभी नहीं होता; महापाप के कारण ऐसे सप्त व्यसन भी नहीं होते।

अरे, ऐसे पापकार्य तो जिज्ञासु-सज्जन को भी नहीं होते, तब फिर सम्यग्दृष्टि को तो कैसे हो ? चौथे गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि की यद्यपि संयमदशा नहीं होती, तथापि उसे अलौकिक ज्ञान वैराग्यदशा होती है, स्वरूप में आचरणरूप स्वरूपाचरण दशा भी है और मिथ्यात्व या अनन्तानुबंधी क्रोधादि तो उसे होते ही नहीं। उस धर्मी के ज्ञान में अतीन्द्रिय आनन्द आया है, इसलिए अन्यत्र वहीं उसे संतोष या सुख का आभास नहीं होता; विषयों की गृद्धि नहीं है, किन्तु खेद है; असंयम है, किन्तु स्वच्छंद तो नहीं है। अरे! आत्मा के आनन्द का साधक तो संसार से उदास हुआ, उसे अब स्वच्छन्द कैसा ?

पर्याय में प्रतिक्षण उसका ज्ञान राग से भिन्न रहकर मोक्ष को साध रहा है और उसमें ही सच्चा वैराग्य है। राग का कर्तृत्व ही जहाँ छूट गया, वहाँ उसका (राग का) जोर नहीं रहता, अत: असंयमदशा रहते हुए भी कषायें मर्यादा में आ गयी है (कषायों की मर्यादा हो गयी हैं) वहाँ श्रद्धा-ज्ञान में मलिनता नहीं रहती – ऐसा सम्यग्दर्शन जिस जीव ने प्रगट किया, वह इन्द्र द्वारा भी प्रशंसनीय है। अहो, ऐसे कठिन काल में भी अन्तर की अनुभूति से जिसने आत्मदर्शन कर लिया, वह धन्य है, वह तो आत्मराजा के आनन्द दरबार में जाकर बैठ गया, वह पंचपरमेष्ठी की जाति में आ गया; शास्त्रों ने जिस चैतन्यवस्तु की अनन्त महिमा गायी है, वह चैतन्यवस्तु उसने अपने में पा ली, अपने में उसका अनुभव कर लिया; वह सुकृती है, जगत में सर्वश्रेष्ठ कार्य उसने कर लिया, अत: वह धन्य है...धन्य है...धन्य है...॥१५॥

●●●

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

सम्यग्दर्शन की श्रेष्ठता तथा सम्यग्दृष्टि के दुर्गतिगमन का अभाव

सम्यग्दृष्टि जीव असंयमी-गृहस्थ हो तो भी प्रशंसनीय है – ऐसा कहा। उसकी विशेष महिमा करते हुए और भी कहते हैं कि तीन काल-तीन लोक में सम्यग्दर्शन जीव को सुखकारी है, वही धर्म का मूल है और सम्यग्दृष्टि जीव नीच गति के स्थानों में उत्पन्न नहीं होते –

(छन्द-जोगीरासा)

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष वान भवन षंड नारी;
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक् धारी।
तीनलोक तिहुँकाल माहिं नहिं, दर्शन सो सुखकारी;
सकल धर्म को मूल यही, इस बिन करनी दुखकारी॥१६॥

अहो, जीव को सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी तीन काल, तीन लोक में दूसरा कोई नहीं है। सम्यग्दर्शन ही श्रावक या मुनि के समस्त धर्म का मूल है। सम्यग्दर्शन से रहित शुभाशुभ समस्त क्रियाएँ जीव को दुखकारी हैं।

सम्यग्दर्शन-धारक जीव प्रथम नरक को छोड़कर छह नरकों में, भवनवासी-व्यन्तर-ज्योतिष देवों में, प्रथम नरक के सिवाय अन्यत्र नपुंसक में, स्त्रीपर्याय में, स्थावर में, विकलत्रय में या कर्मभूमि के पशु में कभी उत्पन्न नहीं होता। सम्यग्दृष्टि मनुष्य उत्तम देव में और सम्यग्दृष्टि मनुष्य देव में एवं उत्तम मनुष्य में ही उत्पन्न होता है; यदि किसी को सम्यग्दर्शन के पहले अज्ञानदशा में नरकादि आयु बँध गई हो तो ऐसा जीव प्रथम नरक में या भोगभूमि के तिर्यंच अथवा मनुष्य में जायेगा। सम्यग्दर्शन की भूमिका में तो नरक-तिर्यंच की आयु बँधती ही नहीं। सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

विदेह क्षेत्रादि कर्मभूमि में उत्पन्न नहीं होता, मिथ्यादृष्टि मनुष्य ही मरकर वहाँ उत्पन्न हो सकता है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो चारों गति के योग्य जीवों को हो सकती है – देव या मनुष्य, तिर्यंच या नारक कोई भी पात्र जीव सम्यग्दर्शन पा सकता है। नरक में भी असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं। सम्यग्दृष्टि जीव यदि चरमशरीरी न हो तो मरकर कहाँ उपजेगा ? और कहाँ नहीं उपजेगा ? वह यहाँ दिखाया है –

देवलोक से चयकर सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम मनुष्य में ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

नरक से निकलकर सम्यग्दृष्टि जीव उत्तम मनुष्य में ही आता है, अन्यत्र नहीं जाता।

तिर्यंच में से मरकर सम्यग्दृष्टि जीव वैमानिक स्वर्ग में ही जाता है, अन्यत्र नहीं जाता।

अब सम्यग्दृष्टि मनुष्य में दो बाते हैं –

(१) सामान्यरूप से तो सम्यग्दृष्टि मनुष्य मरकर स्वर्ग में ही जाते हैं।

(२) परन्तु जिसे सम्यग्दर्शन के पहले मिथ्यात्वदशा में आयु बँध गई हो और बाद में सम्यक्त्व हुआ हो – ऐसा जीव सम्यक्त्व सहित मरकर, यदि उसे नरक का आयुष्य बंधा होगा तो वह पहले नरक में जायेगा और यदि तिर्यंच का या मनुष्य का आयुष्य बंधा होगा तो वह भोगभूमि का तिर्यंच या मनुष्य होगा। इसमें भी यह विशेषता है कि ऐसा जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होगा। अन्य सम्यक्त्व साथ में लेकर कोई जीव नरक में या भोगभूमि में उत्पन्न नहीं होता – यह नियम है।

महावीर भगवान के समय में राजगृही के महाराजा श्रेणिक को पहले अज्ञानदशा में जैन मुनि के ऊपर उपसर्ग करने से सातवीं नरक की आयु बँध गई, परन्तु बाद में उन्हीं मुनिराज के समीप में जैनधर्म पाकर, महावीर

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

प्रभु के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व प्रगट किया एवं तीर्थंकर प्रकृति भी बाँधी, तब उनकी नरक की स्थिति घटकर असंख्य वर्ष में से ८४००० वर्ष की ही रह गई और सातवीं के बदले प्रथम नरक (क्षायिक सम्यक्त्व को साथ लेकर) गये। जिस गति की आयु बँध गयी, वह गति नहीं फिरती। ८४००० वर्ष पूर्ण होने पर वहाँ से निकल कर वह जीव तीन लोक का नाथ तीर्थंकर परमात्मा होगा – यह सम्यक्त्व का प्रताप है। योगसार में कहा है कि –

सम्यग्दृष्टि जीव के, दुर्गति गमन न होय।
कदी जाय तो दोष नहीं, पूर्वकर्म क्षय होय॥

सम्यग्दर्शन होने के बाद जीव को दुर्गति गमन नहीं होता; किन्तु यदि पूर्वबद्ध आयु के कारण से नरक में जाय तो भी इसमें सम्यग्दर्शन का तो कोई दोष नहीं है; यह तो पूर्व की मिथ्यात्व दशा में बँधे हुए कर्मों का फल है और उस कर्म की भी उसे निर्जरा हो जाती है।

देखो, इसमें कितनी बात आ गई ! प्रथम तो संसार में चार गति के स्थान हैं। आत्मज्ञान होने पर तत्क्षण ही जीव की मुक्ति हो जाये और वह संसार में रहे ही नहीं – ऐसा नहीं है। सम्यग्दर्शन के बाद भी किसी को कुछ भव होते हैं। उस सम्यग्दृष्टि को असंयम एवं कुछ अशुभभाव होते हुए भी सम्यग्दर्शन के प्रभाव से उसके परिणाम इतने उज्ज्वल रहते हैं कि उत्तम देव या मनुष्य में ही उसका अवतार होता है; नीची जाति के देवों में वह नहीं जाता, देवी भी नहीं होता। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर इन्द्राणी नहीं होता, स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है। उत्पन्न होने के बाद भले वह सम्यग्दर्शन प्रगट कर ले। नीची जाति के देव, देवियाँ, छहों नरक के नारकी, नपुंसक – इन सबमें उत्पन्न होने वाले जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं, परन्तु वहाँ उत्पन्न होने के समय तो वे मिथ्यादृष्टि ही होते हैं। मल्लि तीर्थंकर को जो लोग स्त्रीपर्याय मानते हैं, उन्हें जैनसिद्धान्त की या सम्यक्त्व के महिमा की जानकारी नहीं है। सभी तीर्थंकरों का आत्मा तो

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

पूर्व भव से ही सम्यग्दर्शन तथा अवधिज्ञान साथ में लेकर आता है, तब वह स्त्री-पर्याय कैसे धारण करे ? स्त्रीपर्याय में तो मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होता है, सम्यग्दृष्टि कभी नहीं।

देवलोक से मरकर सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमि का मनुष्य होता है, परन्तु मनुष्य में से मरकर कोई सम्यग्दृष्टि जीव कर्मभूमि का मनुष्य नहीं होता; यदि पहले मनुष्य की आयु बँध गई हो और मनुष्य हो तो भी भोगभूमि का ही मनुष्य होगा, कर्मभूमि का (विदेहक्षेत्रादि का) नहीं होगा। कोई लोग बिना समझे ऐसा कहते हैं कि कोई धर्मात्मा यहाँ से मरकर सीधा विदेहक्षेत्र में जन्मा, परन्तु यह भूल है। जो मनुष्य मरकर विदेह में उत्पन्न हो, वह नियम से मिथ्यादृष्टि होगा। कुन्दकुन्दाचार्यदेव वगैरह यहाँ से विदेह में गये थे – यह बात सच है; परन्तु वे तो देहसहित गये थे; समाधिमरण करके तो वे स्वर्ग में गये हैं।

अज्ञानदशा में नरक की आयु बँध गई हो और बाद में जो जीव सम्यग्दर्शन (क्षायिक) प्राप्त करे, वह प्रथम नरक में जायेगा; इससे नीचे के छह नरकों में सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होते; वहाँ जाने के बाद तो सातों नरक के जीव सम्यग्दर्शन पा सकते हैं। सातों नरक में असंख्यात सम्यग्दृष्टि जीव हैं।

सम्यग्दर्शन के साथ तो नरक या तिर्यंच का आयुष बँधता ही नहीं; चाहे अव्रती हो तो भी ४१ अशुभ कर्मप्रकृति का बन्धन सम्यग्दृष्टि को कभी नहीं होता। वह इसप्रकार – मिथ्यात्व, हुंडकादि, पाँच संस्थान, वज्रवृषभनाराच के अतिरिक्त पाँच संहनन, नपुंसकवेद-स्त्रीवेद, एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, नरकगति – नरकगत्यानुपूर्वी-नरकायु, तिर्यंचत्रिक, अनन्तानुबंधी क्रोधादि चार, स्त्यानगृद्धि-निद्रा-निद्रा-प्रचला-प्रचला – ये तीन दर्शनावरण, अप्रशस्त विहायोगति, नीच गोत्र, दुर्भग, दुस्वर तथा अनादेय – ये प्रकृति मिथ्यात्व अवस्था में बँध गई हो तो भी बहुत सम्यक्त्व के प्रभाव से नष्ट

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

हो जाती हैं, नरकादि का आयुबंध नहीं छूटता; किन्तु उसके स्थिति-अनुभाग बहुत कम हो जाते हैं; हीन तिर्यंच का या मनुष्य का आयु बँध गया हो तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वह उत्तम भोगभूमि का हो जाता है। व्यंतरादि नीची जाति के देव का आयु बँध गया हो तो सम्यक्त्व के प्रभाव से वह बदल कर कल्पवासी-वैमानिक देव का हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि जीव नीचकुल में या दरिद्रता में उत्पन्न नहीं होते, वह अत्यंत अल्प आयु वाला नहीं होता, विकृत अंगवाला या लूला-गूँगा-बहरा-अंधा भी उत्पन्न नहीं होता। यह सब आत्मा का बाह्य पुण्यफल है। सम्यग्दर्शन की अनुभूति तो इन सबसे अत्यंत अलग ही है। देवादि के उत्तम शरीर से भी सम्यग्दृष्टि अपने को सर्वथा भिन्न ही अनुभव करता है, किन्तु सम्यक्त्व के साथ में ऐसे पुण्य का संबंध रहता है – यह यहाँ दिखाना है। सम्यग्दृष्टि तो अपने को राग से भी भिन्न अनुभवता है, तब फिर पुण्यकर्म की या संयोग की तो बात ही कैसी ?

देवों में नपुंसक कोई नहीं होते; मनुष्य तथा तिर्यंच में नपुंसक होते हैं, परन्तु सम्यग्दृष्टि उसमें उत्पन्न नहीं होते; यह अलग बात है कि नरक में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि नपुंसक होते हैं; क्योंकि नरक में तो सभी को एक ही नपुंसकवेद होता है, वहाँ अन्य कोई वेद होते ही नहीं। कौन जीव कहाँ उत्पन्न हो सकता है और कहाँ नहीं, उसका विस्तृत कथन श्री षट्खंडागम आदि सिद्धान्त सूत्रों में है।

देखो, चार गतियाँ हैं, उनके योग्य जीवों के भाव हैं, जीव को एक गति में से दूसरी गति में पुनर्जन्म अपने भाव के अनुसार होता है, कोई ईश्वर उसे कर्मफल देने वाला नहीं है, इन सब बातों का आस्तिक्य होना चाहिए। चार गति, पुनर्जन्म, कर्मफल इत्यादि को जो न माने, उसे तो गृहीत मिथ्यात्व है, उसको तो यह बात कैसे समझ में आयेगी ? विकल्प तोड़ना चाहता है और समभाव रखना चाहता है, परन्तु सच्चे तत्त्वनिर्णय के बिना वह नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टि को समभाव कैसा ? और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

निर्विकल्पता कैसी ? आत्मा में एकाग्रता के बिना न तो निर्विकल्पता होती है, न समभाव।

अरे, मूर्ख लोग तो भगवान महावीर को ईसु-बुद्ध या गांधी के साथ मिलाकर उनकी कक्षा में बिठाते हैं, ऐसे लोगों ने न महावीर को पहचाना है, न जैनधर्म को; उनकी दृष्टि तो जैनधर्म से बिलकुल विपरीत है। सर्वज्ञ का जैनमार्ग तो कोई अद्भुत अलौकिक, जगत् से भिन्न तरह का है, अन्य किसी मार्ग के साथ उसका समन्वय नहीं हो सकता। यह तो भगवान का मार्ग है और भगवान बनने का मार्ग है। प्रत्येक जीव सर्वज्ञस्वभावी परमात्मा है; अपने ऐसे स्वरूप की पहचान होने पर भी जब तक राग का सर्वथा अभाव नहीं होता, तब तक ऐसे ज्ञानी जीव का भी पुनर्जन्म होता है, परन्तु वह उत्तम गति में ही होता है।

सम्यग्दर्शन होने के बाद उत्तम देव और उत्तम मनुष्य के अतिरिक्त संसार का छेद हो गया। सम्यग्दृष्टि जहाँ भी जाता है, वहाँ ओजस्वी, तेजस्वी, प्रतापवंत, विद्यावंत, वीर्यवंत, उज्ज्वल, यशस्वी, वृद्धिवंत, विजयवंत, महान कुलवंत, चतुर्विध पुरुषार्थ का स्वामी और मानवतिलक होता है अर्थात् समस्त मनुष्यों में समान शोभा पाता है, समस्त लोक में उसका आदर होता है; चक्रवर्ती-तीर्थंकर आदि बड़े-बड़े पद सम्यग्दृष्टि के ही होते हैं और ऐसे उत्तम पुण्यपद पाकर, उसे भी छोड़कर, रत्नत्रय की पूर्णता करके मोक्षपद पाते हैं। सम्यग्दर्शन का ऐसा महान प्रताप है।

सम्यग्दृष्टि असंयमी हो, विषय-कषायों के भाव होते हों, किन्तु उसे अशुभ परिणाम के समय आयु का बन्ध नहीं होगा, शुभपरिणाम के समय ही आयुबन्ध होगा, क्योंकि उसको उत्तम आयुष्य ही बँधता है; परिणाम की मर्यादा ही ऐसी है। उत्तम देव में या मनुष्य में जहाँ जायेगा, वहाँ वह सम्यग्दृष्टि जीव अंतर्दृष्टि में अपने शुद्धात्मा के सिवाय अन्य सबसे अलिप्त ही रहेगा। इन्द्रलोक के वैभव के बीच भी वह आत्मा को नहीं भूलता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

देह-मन-वाणी, कर्म पुण्य-पाप, राग-द्वेष, स्त्री, व्यापार (नोकर्म-द्रव्यकर्म-भावकर्म) ये सब होते हुए भी, उनके सामने उन सबसे पार एक सर्वोपरि चिदानंद तत्त्व भी विद्यमान है; वह देहादि सबसे पार चिदानंद तत्त्व ही मैं हूँ – ऐसा धर्मी को भान है, अनुभूति है; बाह्य में सब कुछ रहते हुए भी मेरे तत्त्व में वे कोई भी नहीं है, मेरा तत्त्व उनके साथ तन्मय नहीं हुआ, सबसे न्यारा ही न्यारा है। धर्मी ऐसी शुद्धदृष्टि रखकर आत्मज्ञान के साथ-साथ व्यवहार को भी जैसा है, वैसा जान लेता है। रागादि है, गृहवास है, उसे वह अच्छा नहीं समझता, उसे तो वह कीच जैसा समझता है। अरे, मेरे शुद्धतत्त्व की अनुभूति में से बाहर आकर बाह्य विषयों में वृत्ति जावे, सो तो वह कादव जैसी मलिन है, वह मेरे को शोभा नहीं देती। जैसे रोगी को रोग का या औषधि का प्रेम नहीं है, उसे तो वह मिटाना चाहता है, वैसे धर्मी जीव को असंयम का, विषयों का प्रेम नहीं है, उसे तो वह छोड़ना ही चाहता है।

इसप्रकार वह दोष को दोषरूप जानता है एवं दोषरहित शुद्धतत्त्व को भी जानता है, इसकारण रागादिभाव होने पर भी धर्मीजीव अन्तर से न्यारा है, अपने अतीन्द्रिय आनन्दमय चैतन्यस्वभाव में वह राग का प्रवेश नहीं होने देता। जैसे सज्जन मनुष्य को कैद में रहना पड़े तो उसे वह अच्छा नहीं समझता; वैसे धर्मात्मा को राग-द्वेष, पुण्य-पाप कैद जैसा लगता है; परभाव से अर्थात् गृहवासरूपी असंयम की जेल में धर्मी जीव आनन्द नहीं मानता, अपितु उसमें से छूटना ही चाहता है। सम्यग्दर्शन में मुक्ति सुख के स्वाद का नमूना चख लिया है, अत: राग के रस में कहीं उसे चैन नहीं पड़ती।

सदन निवासी तदपि उदासी तातैं आस्रव झटाझटी।
संयम धर न सकै पै संयम धारन की उर चटाचटी॥
चिन्मूरत दृग धारि की मोहे रीति लगत है अटापटी।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दृष्टि की दशा कोई अलौकिक है। शास्त्रों ने दिल भर-भरकर सम्यग्दर्शन की महिमा गायी है। सम्यग्दर्शन में पूर्ण आत्मा का स्वीकार है। सम्यग्दर्शन सर्वोत्तम सुख का कारण है और वह धर्म का मूल है। श्री समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि –

तीनकाल में तीनलोक में सम्यक्त्व सम नहीं श्रेय को।
मिथ्यात्व-सम अश्रेय को नहीं जगत में इस जीव को॥

– रत्नकरण्ड श्रावकाचार-३४

मोक्षसुख का मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से रहित जो कोई ज्ञान या जो कोई आचरण है, वह सब दुःख का ही कारण है। अज्ञानी को व्रतादि के पुण्य के साथ मिथ्यात्व का पाप भी पड़ा है। सम्यग्दर्शन के बिना जीव को सुख का अंश भी नहीं होता। सम्यग्दर्शन होते ही जीव को अपने स्वभाव के अपूर्व सुख का आस्वादन होता है, नरक में भी सम्यग्दृष्टि को ऐसे सुख का आस्वादन है, जबकि मिथ्यादृष्टि को स्वर्ग में भी सुख की झलक नहीं है।

अज्ञानी लोग मानते हैं कि बिना सम्यग्दर्शन भी हम जो व्यवहार (शुभराग) करेंगे, वह हमें धर्म का या सुख का कारण हो जायेगा। यहाँ शास्त्रकार कहते हैं कि रे भाई ! सम्यग्दर्शन के बिना तो सब करनी दुःख को ही देने वाली है और सम्यग्दर्शन के बाद भी जितनी राग-करनी है, वह तो दुख ही देने वाली है; आत्मा के आनन्दरूप सुख का देने वाला तो सम्यग्दर्शन और वीतरागभाव ही है। देवलोक के वैभव में सुख नहीं है, परन्तु सम्यग्दर्शन में सुख है। देवलोक में जो सम्यग्दृष्टि सुखी हैं, वे सम्यग्दर्शन से सुखी हैं, किन्तु देवलोक का वैभव उनके सुख का कारण नहीं है। वैभव की ओर जो वृत्ति है, उसमें तो दुख है, आकुलता है।

सम्यग्दर्शन से रहित जीव शुभराग के परिणाम में सुख मान लेता है; राग और ज्ञान के बीच में बड़ा भेद है, उसे वह नहीं जानता। 'राग' और 'ज्ञान' वे अनेक होने पर भी अज्ञान से वह अनेक का एकरूप अनुभव

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

करता है। भाई, तेरा चैतन्यतत्त्व राग से जुदा है, उसे तू जुदा ही जान। चैतन्यभाव का अस्तित्व रागरूप या देहरूप नहीं है। ऐसे चैतन्य की कीमत अज्ञानी को नहीं दीखती, उसे तो शुभराग की या देह की क्रिया कीमत वाली दीखती है, किन्तु वास्तव में तो वे सब क्रियाएँ थोती हैं; भैया ! उनमें कहीं तेरा धर्म नहीं है।

सम्यग्दर्शन होते ही भव से रहित अपना आत्मा प्रतीति में आया; चैतन्यतत्त्व रागरहित आनन्द से परिपूर्ण अनुभव में आया; अब उसे भव के भाव का आदर नहीं रहा, एक-दो भव शेष हों; किन्तु उसे वह हेय जानता है। सम्यग्दर्शन के सिवाय अन्य कोई सुखदायक नहीं है। 'अन्य' कहने से सम्यग्दर्शन से रहित अन्य समझना, किन्तु सम्यग्दर्शन से सहित सम्यग्ज्ञान-चारित्र तो सुखदायक है ही। चारित्रदशा में तो बहुत विशेष आत्मसुख है; किन्तु उसका मूल सम्यग्दर्शन है; सम्यग्दर्शन के बिना चारित्रदशा कभी नहीं हो सकती। सम्यग्दर्शन से रहित ज्ञान मिथ्याज्ञान है और आचरण मिथ्याचारित्र है, उनमें कहीं सुख का लवलेश नहीं। सर्व दुख का मूल मिथ्यात्व है और सर्व सुख का मूल सम्यक्त्व है।

प्रश्न – क्या यह सच है कि मिथ्यादृष्टि जीव नरक में ही जाते हैं ?

उत्तर – नहीं; मिथ्यादृष्टि जीव अपने-अपने पुण्य-पाप अनुसार चारों गति में जाते हैं, स्वर्ग में भी वे जाते तो हैं; किन्तु स्वर्ग में भी उन्हें सुख नहीं मिलता। अज्ञान से वे अपने को भले सुखी मान लें, परन्तु सुख कहाँ है और कैसा है, उसे वे जानते ही नहीं। मिथ्यादृष्टि जीव पाप करके नरक में जाये या पुण्य करके स्वर्ग में भी जाये (नरक से असंख्यातगुने स्वर्ग के भव हैं) किन्तु यह सब है तो संसार ही, उनमें कहीं भी वे जीव सुखी नहीं होते। सुखिया तो सम्यग्दृष्टि हैं कि जिन्होंने चार गति से पार – ऐसे अपने चैतन्यतत्त्व को देख लिया है।

दुनिया के लोग धन आदि के संयोग अनुसार सुख समझते हैं, आत्मिकसुख को वे नहीं जानते। वे लोग यह नहीं पूछते कि आपको

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

कितना आत्मसुख है? परन्तु यह देखते हैं कि आपके पास कितना धन-मकान है ? कितनी आय है? मानो अधिक पैसे से अधिक सुख मिल जाता है और पैसे के बिना मानो सुख हो ही नहीं सकता – ऐसी अज्ञानी लोगों की भ्रमणा है। दुनिया तो बाहर से ही देखने वाली है।

अरे, शुभ विकल्प भी जहाँ दुःख है, उसमें भी सुख नहीं है, तब अन्य की तो क्या बात? बिना सम्यग्दर्शन सुख देने वाला कोई नहीं है। कोई संयोग ऐसा नहीं कि जो सुख दे सकता हो। सम्यक्त्व ही सभी धर्म का मूल है; 'सभी धर्म' कहने से ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जैनधर्म एवं अन्य धर्म; किन्तु सभी धर्म कहने से आत्मा का ज्ञानधर्म-चारित्रधर्म-श्रावकधर्म-मुनिधर्म-सुखधर्म क्षमादि दशधर्म-वीतरागी अहिंसा धर्म; – ऐसे वीतरागी शुद्धभावरूप सभी धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है; क्योंकि 'धर्मी' ऐसा अपना शुद्ध आत्मा, उसके लक्ष्य-प्रतीत-अनुभव के बिना उसके धर्म (शुद्ध पर्यायें) प्रगट नहीं होते। सम्यग्दर्शन में शुद्धात्मा को ध्येय बनाकर एकाग्र होने से श्रावकधर्म-मुनिधर्म-उत्तम क्षमादि धर्म-शुद्धोपयोग धर्म-परम अहिंसा धर्म-ध्यानरूप धर्म-सुख धर्म-स्वानुभवरूप धर्म-मोह क्षोभ रहित परिणामरूप धर्म – ये सब वीतरागी धर्म खिल जाते हैं। अतः धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है, सम्यग्दर्शन के बिना जीव जो कुछ करे, वह धर्म नहीं, उसमें सुख नहीं।

आत्मा के सम्यग्दर्शन बिना ध्यान किसका करेगा? ध्यान के लिए जिसमें एकाग्र होने का है – यह वस्तु तो प्रतीति में आयी नहीं। उसीप्रकार 'स्वरूप में चरना, सो चारित्र' है; परंतु जिस स्वरूप में चरना है, उसकी पहिचान के बिना चारित्र कैसा? वीतरागता करना चाहे, परन्तु राग से भिन्न चैतन्य के अनुभव के बिना वीतरागता होगी कैसे? राग से लाभ मानकर वीतरागता कभी नहीं हो सकती। इसप्रकार सम्यग्दर्शन और स्वानुभव के बिना जीव को किसी प्रकार का धर्म या मोक्षमार्ग नहीं होता। जैसे मूल के बिना वृक्ष नहीं होता, वैसे सम्यग्दर्शन के बिना धर्म

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

नहीं होता। ऐसे ही अज्ञान से धर्म मान लेना, वह तो मिथ्या है। जानने वाले ने जब स्वयं को ही नहीं जाना तो धर्म कैसा?

प्रत्येक आत्मा स्वयं परमात्मा बन सकता है; उसे न जानकर, अन्य परमात्मा ने इस आत्मा को बनाया – ऐसा माने अथवा तो यह आत्मा अन्य किसी परमात्मा का अंश है – ऐसा माने, (अर्थात् यह आत्मा स्वयं अखण्ड स्वतंत्र अकृत्रिम पदार्थ है – ऐसा न माने,) वे सब अज्ञानी हैं, उन्होंने न तो आत्मा का स्वरूप जाना है और न परमात्मा को भी पहचाना है। ऐसे जीवों को सम्यक्त्व नहीं होता और सम्यक्त्व के बिना धर्म नहीं होता।

अतः मुमुक्षुजीव को चाहिए कि अपने सुख के लिए देव गुरु-धर्म का स्वरूप अच्छी तरह पहचाने, सर्वप्रकार के सन्देह छोड़कर वीतराग जैनमार्ग के तत्त्वों का सच्चा निर्णय करे और पर से भिन्न अपने चिदानंदस्वरूप आत्मतत्त्व की रुचि-प्रतीति-स्वानुभूति करके शुद्ध सम्यग्दर्शन धारण करे – यह सन्तों का उपदेश है।

●●●

आत्म-शान्ति

भाई! तेरा आत्मस्वभाव ऐसा है कि उसके सन्मुख परिणमन करते ही आनंद सहित निर्मल सम्यक्त्वादि का उत्पाद होता है। जगत के कोलाहल से दूर होकर, तू अपने स्वभाव को लक्ष्य में ले। जगत क्या करता है, क्या बोलता है – उसके साथ तेरे तत्त्व का कोई संबंध नहीं है, क्योंकि तेरा उत्पाद तुझमें से आता है, अन्य में से नहीं आता।

स्वभाव की प्रतीति होने पर भी किंचित् राग-द्वेष हो तो वह कहीं ज्ञानभाव का कार्य नहीं है – इसप्रकार धर्मी को भिन्नता का भान है, इसलिये उस समय वह अपने ज्ञानभाव को नहीं भूलता।

– आत्मवैभव से

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

मोक्षमहल की पहली सीढ़ी : सम्यग्दर्शन, हे भव्य! उसको शीघ्र धारण करो काल वृथा मत गँवाओ

सम्यग्दर्शन की अपार महिमा बतलाकर अब इस तीसरी ढाल के अन्तिम छंद में उसकी अत्यन्त प्रेरणा देते हुए कहते हैं कि अरे जीव! तू काल गँवाये बिना इस पवित्र सम्यग्दर्शन को धारण कर।

(श्लोक १७)

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

अहा, सम्यग्दर्शन का स्वरूप अचिन्त्य है। हे भव्य! ऐसे सम्यग्दर्शन को पहिचानकर अत्यन्त महिमापूर्वक तू उसे शीघ्र धारण कर... जरा भी काल गँवाये बिना तू सावधान हो और उसे शीघ्र प्राप्त कर; क्योंकि यह सम्यग्दर्शन ही मोक्ष की पहली सीढ़ी है; ज्ञान या चारित्र कोई सम्यग्दर्शन के बिना सच्चे नहीं होते। सम्यग्दर्शन से रहित सर्व बाह्य ज्ञान तथा शुभ आचरण वह मिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र है; इसलिये हे भव्य! तू यह उपदेश सुनकर चेत, समझ और काल गँवाये बिना सम्यग्दर्शन का सच्चा उद्यम कर। यदि इस भव में सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो फिर ऐसा मनुष्यभव और जिनधर्म का ऐसा सुयोग प्राप्त होना कठिन है।

यदि अवसर चूक गया तो तेरे को पछताना पड़ेगा। अतः कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं एवं अन्य भव्य जीवों से भी कहते हैं कि हे चैतन्य दौलत वाले आतमराम! हे भव्य जीव! तुम अत्यन्त सावधान होकर चेतो और उद्यमपूर्वक शीघ्र सम्यक्त्व को धारण करो।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

मोक्षरूपी महल में पहुँचने के लिये रत्नत्रयरूपी जो नसैनी है उसकी पहली सीढ़ी सम्यग्दर्शन है; उसके बिना ऊपर की सीढ़ियाँ (श्रावकदशा, मुनिदशा आदि) नहीं होती। नसैनी की पहली सीढ़ी भी जिससे नहीं चढ़ी जाती वह पूरी सीढ़ी चढ़कर मोक्ष में कैसे पहुँचेगा? सम्यग्दर्शन से रहित सब क्रियाएँ अर्थात् शुभभाव वे कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है, वह तो संसार के मार्ग में है; राग के मार्ग पर चलकर कहीं मोक्ष में नहीं पहुँचा जा सकता। मोक्ष का मार्ग तो स्वानुभवयुक्त-सम्यग्दर्शन है। आत्मा की पूर्ण शुद्ध वीतरागी दशा वह मोक्षरूपी आनन्दमहल है और अंशतः शुद्धतारूप सम्यग्दर्शन वह मोक्षमहल की पहली सीढ़ी है। अंशतः शुद्धता के बिना पूर्ण शुद्धता के मार्ग पर कहाँ से पहुँचा जायेगा? अशुद्धता के मार्ग पर चलने से कहीं मोक्षनगर नहीं आता।

मोक्ष क्या है? – मोक्ष कोई त्रैकालिक द्रव्य या गुण नहीं है, परन्तु वह तो जीव के ज्ञानादि गुणों की पूर्ण शुद्धदशारूप कार्य है; उसका मूल कारण सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन का लक्ष पूर्ण शुद्ध आत्मा है; उस पूर्णता के ध्येय से पूर्ण के ओर की धारा उल्लसित होती है; बीच में रागादि हों, व्रतादि शुभभाव हों, परन्तु सम्यग्दृष्टि उन्हें आस्रव जानता है, वह कहीं मोक्ष की सीढ़ी नहीं है। सम्यक्ता कहो या शुद्धता कहो; ज्ञान-चारित्रादि की शुद्धि का मूल सम्यग्दर्शन है। शुभराग वह कहीं धर्म की सीढ़ी नहीं है; राग का फल सम्यग्दर्शन नहीं है और सम्यग्दर्शन का फल शुभराग नहीं है, दोनों वस्तुएँ भिन्न हैं।

आत्मा शांत वीतराग स्वभाव है; वह पुण्य द्वारा, राग द्वारा, व्यवहार द्वारा प्राप्त नहीं होता अर्थात् अनुभव में नहीं आता, परन्तु सीधा स्वयं अपने चेतनभाव द्वारा अनुभव में आता है। ऐसा अनुभव हो तब सम्यग्दर्शन होता है और तभी मोक्षमार्ग खुलता है। अनंत जन्म-मरण के नाश के उपाय में तथा मोक्ष के परमानन्द की प्राप्ति में सम्यग्दर्शन ही पहली सीढ़ी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

है उसके बिना शास्त्रज्ञान या शुभराग की क्रियाएँ वह सब निरर्थक हैं; उससे धर्म का फल जरा भी नहीं आता इसलिये वह सब निरर्थक है। नवतत्त्वों की मात्र व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान या पंचमहाव्रतादि शुभ आचार वह कोई राग आत्मा के सम्यग्दर्शन के लिये किंचित् भी कारणरूप नहीं है; विकल्प की सहायता द्वारा कभी निर्विकल्पता प्राप्त नहीं होती। सम्यक्त्वादि की भूमिका में उसके योग्य व्यवहार होता है इतनी उसकी मर्यादा है, परन्तु वह व्यवहार है इसलिये उसके कारण निश्चय है – ऐसा नहीं है। व्यवहार के जितने विकल्प हैं वे सब आकुलता और दुःख हैं, आत्मा के निश्चय रत्नत्रय ही सुखरूप और अनाकुल हैं। ज्ञानी को भी विकल्प वह दुःख है, विकल्प द्वारा कहीं आत्मा का कार्य ज्ञानी को नहीं होता; उसी समय उससे भिन्न ऐसे निश्चयश्रद्धा-ज्ञानादि उसको अपने आत्मा के अवलम्बन से वर्तते हैं और वही मोक्षमार्ग है। ऐसे निरपेक्ष निश्चय सहित जो व्यवहार हो वह व्यवहाररूप से सच्चा है।

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान या चारित्र में यथार्थता नहीं आती अर्थात् मिथ्यापना रहता है। सम्यग्दर्शन के बिना सब झूठा? – हाँ, मोक्ष के लिये वह सब निरर्थक है; धर्म के लिये वह सब बेकार है। शास्त्रज्ञान की बातें करके चाहे जितना लोकरंजन करे, धारावाही भाषण देकर अनेक न्याय-तर्क कहे, अथवा व्रतादि आचरणरूप क्रियाओं के द्वारा लोक में वाहवाह होती हो, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना यह ज्ञान और आचरण सब मिथ्या है, उसमें आत्मा का किंचित् हित नहीं है; उसमें मात्र लोकरंजन है, आत्मरंजन नहीं हैं, आत्मा का सुख नहीं है।

व्यवहार श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र, वे सम्यग्दर्शन के बिना कैसे हैं? – तो कहते हैं कि वे सम्यक्ता को प्राप्त नहीं होते अर्थात् सच्चे नहीं किन्तु मिथ्या हैं, उनके द्वारा मोक्षमार्ग जरा भी नहीं सधता। सम्यग्दर्शनपूर्वक ही सच्चे ज्ञान-चारित्र होते हैं और मोक्षमार्ग सधता है, इसलिये वह धर्म का मूल है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

अहा, ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन को हे भव्य जीवो! तुम धारण करो, बहुमान सहित उसकी आराधना करो! हे सयाने सूज्ञ आत्मा तू चेत, समझ और सावधान होकर प्रमाद के बिना उस सम्यग्दर्शन को शीघ्र प्राप्त कर। सम्यग्दर्शन के लिये अवसर है; फिर बारबार यह मनुष्य भव प्राप्त होना दुर्लभ है। अतः यह उत्तम उपदेश सुनकर, तत्क्षण ही अन्तर में अपने शुद्ध आत्मा की अखण्ड अनुभूति सहित श्रद्धा करके सम्यक्त्व के दीपक प्रगट कर। हे भव्य! हे सुखाभिलाषी मुमुक्षु! सुख के लिये तू इस उत्तम कार्य को शीघ्र कर! - शीघ्र अपने आत्मा की पहिचान करके अपने को भवसमुद्र से उबार।

('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्मा के सर्व गुणों की पूर्ण शुद्धता सो मोक्ष है।

('सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व') आत्मा के सर्व गुणों की अंशतः शुद्धता सो मोक्षमार्ग है।

आत्मा में जैसा ज्ञानानन्दस्वभाव त्रिकाल है वैसा पर्याय में प्रगट हो उसका नाम मोक्ष; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र उसका कारण वह मोक्षमार्ग; उसमें भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है? यह दूसरे पद में बताया कि –

"परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है।"

परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि सो सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा मैं हूँ; शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, इसप्रकार रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होते ही विशेष शास्त्राभ्यास या संयम न हो तो भी मोक्षमार्ग का प्रारम्भ हो जाता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि – "अनंतकाल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।''

ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप इस जीव ने अनंतकाल में नहीं समझा और विकार को ही आत्मा मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। कभी पाप छोड़कर शुभराग में आया परन्तु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह मोक्ष का कारण नहीं है, और उसके अनुभव से कहीं सम्यग्दर्शन नहीं होता। ''भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी'' – भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि है। सब तत्त्वों का सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शन में होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणों में रागादि का अंधकार नहीं है; शुभाशुभराग वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना सो अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि अनादिकाल से संसार में भटकते हुए जीव ने दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं की – एक तो श्री जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्य में तो जिनवरस्वामी मिले परन्तु स्वयं उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना इसलिये उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले, – ऐसा कहा है। जिनवर के आत्मा का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया तप ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिये हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने से चारित्र भी सच्चा हुआ; इसलिये कहा है कि –

''मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा।''

धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से रहित जीव ने पुण्य भी अनन्तबार किया, किन्तु वह संसार का ही कारण हुआ, धर्म का किंचित् कारण न हुआ। सम्यग्दर्शन करके ही अनन्त जीवों

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

ने मोक्षसाधना की है। सम्यग्दर्शन के बिना किसी ने मोक्ष नहीं पाया। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा पाते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चय सम्यक्त्व को तुम शीघ्र धारण करो; काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट करो। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्यबंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है, और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी कहीं राग वह मोक्षमार्ग नहीं है, रागरहित जो रत्नत्रय वही मोक्षमार्ग है; जितना राग है उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन वह राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है, निश्चय सम्यग्दर्शन वह पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प है। विकल्प से भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना वह सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है; इसलिये शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण करने का उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्व की ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ, और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घसंसार में परिभ्रमण का कहीं अन्त नहीं आयेगा... इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्याय को संभालो! उसे अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। तुम्हारी पर्याय के कर्त्ता तुम ही हो, भगवान तो तुम्हारी पर्याय के ज्ञाता हैं परन्तु कर्त्ता नहीं हैं, कर्त्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है उसे जाने बिना अनन्तबार यह जीव स्वर्ग में गया, परन्तु वहाँ उसे किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, वह संसार में ही

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

भटका। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को करोड़ों जन्म तक तप करने से जो कर्म खिरते हैं वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में खिर जाते हैं इसलिये कहा है कि – ''ज्ञान समान न आन, जगत् में सुख को कारन...'' तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख की एक बून्द भी अनुभव नहीं आती अर्थात् धर्म नहीं होता।

ग्रंथकार कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं कि हे दौलतराम-आत्मा! यह हितोपदेश सुनकर, समझकर चेतो! शीघ्र सम्यग्दर्शन धारण कर अपना हित करो। 'दौलतराम' अर्थात् अन्तर में चैतन्य की दौलत वाला आतमराम, चैतन्य की सम्पदारूप अनन्त दौलतवाले हे दौलतराम! हे आतमराम! तुम तो सूज्ञ हो, विवेकी हो, और यह तुम्हारे हित का अवसर आया है। तुम कहीं मूर्ख नहीं हो, समझदार ज्ञान के भण्डार हो, अतः चेतो... समझो और सम्यक्त्व को अभी धारण करो। सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह अवसर है उसे वृथा मत खोओ।

जो समझदार है, जो आत्मा को भवदुःख से छुड़ाने तथा मोक्षसुख के अनुभव के लिये सम्यक्त्व का पिपासु है, ऐसे भव्य जीव को सम्बोधन करके सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देते हैं कि – अरे प्रभु! यह तेरे हित का अवसर आया है; तू कोई मूढ़ नहीं किन्तु समझदार है, सयाना है, हित-अहित का विवेक करनेवाला है, जड़-चेतन का विवेक करनेवाला है, इसलिये तू श्रीगुरु का यह उत्तम उपदेश सुनकर अब तुरन्त सम्यग्दर्शन धारण कर। यहाँ तक आकर अब विलम्ब न कर। शरीरादि से भिन्न आत्मा का अनुभव कर, उसका अंतरंग उद्यम कर।

''समझ, सुन, चेत, सयाने!'' हे सयाने जीव! तू सुन, समझ और सावधान हो। चेतकर अविलम्ब सम्यक्त्व को धारण कर। मोह का अभाव करके सावधान हो और अपनी ज्ञानचेतना द्वारा अपने शुद्ध आत्मा को चेत... उसका अनुभव कर। सर्वज्ञ परमात्मा में जो है वह सब तेरे आत्मा

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

में भी है – ऐसा जानकर प्रतीति करके स्वानुभव कर। मृग की भाँति बाह्य में मत ढूँढ़, अपने अन्दर है उसे अनुभव में ले।

देखो, गृहस्थ-पंडित ने भी शास्त्रधार से छहढाला की कितनी सुन्दर रचना की है।

संसार में भटकते-भटकते अनंतकाल में बड़ी कठिनाई से यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ; उसमें ऐसा जैनधर्म और सत्समागम मिला, सम्यक्त्व का ऐसा उपदेश मिला, तो अब कौन ऐसा मूर्ख होगा जो इस अवसर को व्यर्थ गँवा दे? भाई, काल गँवाये बिना अंतरंग उद्यम पूर्वक तू निर्मल सम्यग्दर्शन धारण कर। चार गतियों में बहुत दुःख तूने सहे, अब उन दुःखों से छूटने के लिये आत्मा की यह बात सुन। सम्यग्दर्शन की ऐसी उत्तम बात सुनकर अब तू जागृत हो और तुरन्त ही सम्यग्दर्शन कर ले। यह तेरा समझने का काल है, सम्यग्दर्शन प्रगट कर। देखो, कैसा अच्छा सम्बोधन किया है! भोगभूमि में भी भगवान ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन का उपदेश देकर मुनिराज ने ऐसा कहा था कि – हे आर्य! तू इसी समय इस सम्यक्त्व को ग्रहण कर... तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह काल है। 'तत् गृहाण अद्य सम्यक्त्वं ततूला में काल एष ते'.... और सचमुच उस जीव ने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया। उसीप्रकार यहाँ भी कहते हैं कि – हे भव्य! तू अविलम्ब – इसी समय सम्यक्त्व को धारण कर! और सुपात्र जीव अवश्य सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है।

हे जीव! जितना चैतन्यभाव है उतना ही तू है; अजीव से तेरा आत्मा भिन्न है, रागादि ममत्व से भी आत्मा का स्वभाव भिन्न है; ऐसे आत्मा की प्रतीति के बिना अनंतकाल व्यर्थ गँवा दिया, परन्तु अब यह उपदेश सुनने के बाद तू एक क्षण भी मत गँवाना तुरन्त ही अन्तर में सम्यक्त्व का उद्यम करना, प्रत्येक क्षण अति मूल्यवान है; बहुमूल्य मणि-रत्नों से भी मनुष्यभव मँहगा है और फिर उसमें भी इस सम्यग्दर्शन-रत्न की प्राप्ति महा दुर्लभ है। अनंतबार मनुष्य हुआ और स्वर्ग में भी गया, परन्तु

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया – ऐसा जानकर अब तू सम्यग्दर्शन प्रगट कर। जहाँ सच्चा पुरुषार्थ है वहाँ काललब्धि भी साथ में ही है। पुरुषार्थ से काललब्धि भिन्न नहीं है; इसलिये हे भाई! इस अवसर में आत्मा को समझकर उसकी श्रद्धा कर! अन्य निष्प्रयोजन कार्यों में काल न गवाँ।

पर के कार्य तेरे नहीं हैं और न परवस्तु तेरे काम की है; आनन्दकन्द आत्मा ही तेरा है, उसी को काम में ले, श्रद्धा-ज्ञान में ले। परवस्तु या पुण्य-पाप तेरे हित के लिये काम नहीं आयेंगे अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को श्रद्धा में ले वही तुझे मोक्ष के लिये कार्यकारी है। समयसार में आत्मा को भगवान कहकर बुलाया है। जिस प्रकार माता बच्चे का पालना झुलाते हुए गीत गाती है कि "मेरा मुन्ना बड़ा सयाना..." उसीप्रकार जिनवाणी माता कहती है कि हे जीव! तू भगवान है... तू सयाना-समझदार है, इसलिये मोह छोड़कर जाग, चेत और अपने आत्मस्वभाव को देख... आत्मस्वभाव का सम्यग्दर्शन वह मोक्ष का दाता है। सम्यग्दर्शन हुआ कि मोक्ष अवश्य होगा। तेरा गुणगान करके तुझे जगाते हैं... और सम्यग्दर्शन प्राप्त कराते हैं।

आत्मा अखण्ड ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, वह पवित्र है; पुण्य-पाप तो मलिन हैं, उसमें स्व-पर को जानने की शक्ति नहीं है, और भगवान आत्मा तो स्वयं अपने को तथा पर को भी जाने ऐसा चेतकस्वभावी है। – ऐसे आत्मा के सन्मुख होकर उसकी श्रद्धा और अनुभव करने से जो सम्यग्दर्शन हुआ उसका महान प्रताप है। सम्यग्दर्शन से रहित सब बिना इकाई के शून्य के समान है, धर्म में उसका कोई मूल्य नहीं है। सम्यग्दृष्टि को अन्तर में चैतन्य के शांत-रस का वेदन है। अहा, उस शांति के अनुभव की क्या बात! श्रेणिक राजा वर्तमान में नरकगति में होने पर भी सम्यग्दर्शन के प्रताप से वहाँ के दुःख से भिन्न ऐसे चैतन्यसुख का वेदन भी उनको वर्त रहा है। पहले मिथ्यात्वदशा में महापाप से उन्होंने सातवें नरक की असंख्य वर्ष की आयु का बंध कर लिया, परन्तु बाद में वे

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक्त्व को प्राप्त हुए और सातवें नरक की आयु तोड़कर पहले नरक की मात्र ८४००० चौरासी हजार वर्ष की आयु कर दी। वे राजगृही के राजा गृहस्थाश्रम में अव्रती थे, तथापि भगवान महावीर के समवसरण में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया; नरक आयु नहीं बदल सकी परन्तु उसकी स्थिति तोड़कर असंख्यातवें भाग की कर दी। नरक की घोर यातनाओं के बीच भी उससे अलिप्त ऐसी सम्यग्दर्शन परिणति के सुख का वह आत्मा वेदन कर रहा है। "बाहर नारकीकृत दुःख भोगै, अंतर सुखरस गटागटी।" – इसप्रकार सम्यग्दर्शन सहित जीव नरक में सुखी है, और सम्यक्दर्शन के बिना तो स्वर्ग में भी वह दुःखी है। श्री परमात्मप्रकाश में कहा है कि – सम्यग्दर्शन सहित तो नरकवास भी अच्छा है और सम्यग्दर्शन से रहित देवलोक में निवास भी अच्छा नहीं... अर्थात् जीव को सर्वत्र सम्यग्दर्शन ही इष्ट है, भला है, सुखकारी है, इसके बिना जीव को कहीं सुख नहीं है। सम्यग्दर्शन में अतीन्द्रिय आत्मरस का वेदन है; देवों के अमृत में भी उस आत्मरस का सुख नहीं है। मनुष्य-जीवन की सफलता सम्यग्दर्शन से ही है, स्वर्ग की अपेक्षा सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है, तीन लोक में सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ है। ज्ञान और चारित्र भी सम्यग्दर्शन सहित हों तभी श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं।

श्रेणिक को नरक में भी भिन्न आत्मा का भान है और सम्यक्त्व के प्रताप से कर्मों की निर्जरा हो रही है; वहाँ भी उन्हें निरन्तर तीर्थंकर प्रकृति बंधती है। नरक से निकलकर वह जीव इस भरतक्षेत्र की आगामी चौबीसी में प्रथम तीर्थंकर होगा। उनके गर्भागमन के छह मास पूर्व इन्द्र-इन्द्राणी यहाँ आकर उनके माता-पिता का सम्मान करेंगे, तथा उनके आंगन में रत्नवृष्टि होगी। वह जीव तो अभी नरक में होगा। बाद में जब माता के उदर में आयेगा तब भी वह जीव सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान एवं अवधिज्ञान सहित होगा। मैं देह नहीं, नारकी भी मैं नहीं, और दुःख भी मैं नहीं; इस देह के छेदन-भेदन होने से मेरे आत्मा का छेदन-भेदन नहीं होता; मैं तो चैतन्यसुख का अखण्ड पिण्ड शाश्वत हूँ – ऐसी आत्मश्रद्धा नरक में भी

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

उस जीव को सदा रहा करती है, और यह मोक्षमहल की सीढ़ी है। नरक में रहता हुआ भी वह जीव सम्यग्दर्शन के प्रताप से मोक्ष के मार्ग में ही गमन कर रहा है। अहो, सम्यग्दर्शन की कोई अद्भुत अचिन्त्य महिमा है। ऐसे सम्यग्दर्शन को पहचानकर हे जीवो! तुम अपने में उसकी आराधना करो।

हे जीव! दुनिया की सब चिन्ता छोड़कर तू आत्मज्ञान के द्वारा अपना हित कर ले। दुनिया नहीं जानती कि सम्यग्दर्शन क्या चीज है! सम्यग्दर्शन किसी को इन्द्रियज्ञान से देखने में नहीं आ सकता। अहा, सम्यग्दर्शन होते ही आत्मा में मोक्ष की मुहर लग गई, और परम सुख का निधान खुल गया। जो स्वयं अनुभव करे उसे ही उसके महिमा की सच्ची खबर पड़े। जिस प्रकार महा भाग्य से हाथ में आये हुए चिन्तामणि को कोई मूर्ख समुद्र में फेंक दे, तो फिर वह हाथ में आना मुश्किल है; इसप्रकार चिन्तामणि जैसा जो यह मनुष्य अवतार, उसे यदि सम्यग्दर्शन के बिना खो दिया तो भव के समुद्र में फिर उसकी प्राप्ति होना बहुत कठिन है; अतः इस दुर्लभ अवसर में अन्य सब प्रपंच छोड़कर सम्यग्दर्शन अवश्य कर लेना चाहिए। यह अवसर चूकना नहीं चाहिए।

सम्यग्दर्शन जिसका मूल है ऐसा वीतरागधर्म – ''दंसणमूलो धम्मो'' जिनवरदेव से उपदिष्ट है। २५०० वर्ष के पूर्व महावीर तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र में ऐसा ही उपदेश देते थे और उसे सुनकर अनेक भव्य जीव सम्यक्त्वादि की प्राप्ति कर लेते थे; अभी वर्तमान में सीमंधरादि तीर्थंकर भगवंत विदेह क्षेत्र में ऐसा ही उपदेश दे रहे हैं, और उसे झेलकर कितने ही जीव सम्यक्त्वादि को पा लेते हैं; अभी वर्तमान में यहाँ भरतक्षेत्र में भी हम ऐसे सम्यक्त्व को पा सकते हैं। प्रत्येक आत्मार्थी जीव को ऐसा उत्तम कल्याणकारी सम्यग्दर्शन अवश्य करना चाहिए। अतः हे विवेकी आत्मा! इस अवसर में सम्यग्दर्शन का ऐसा महात्म्य सुनकर तू सावधान हो और

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

सम्यक्त्व प्राप्त कर ले... किसी अनुभवी-ज्ञानी से आत्मस्वरूप समझकर सम्यग्दर्शन प्रगट कर। यही मनुष्यजीवन का अमूल्य कार्य है। इसके बिना जीवन को व्यर्थ न गँवा।

शरीर और आत्मा भिन्न है; राग और ज्ञान भिन्न है; शरीर एवं राग से रहित तेरा चैतन्यतत्त्व अखण्ड पूर्ण है; यह जानकर खुश होकर तू सम्यग्दर्शन का उद्यम कर। चैतन्यमय तेरे स्वतत्त्व को पर से भिन्न देखकर प्रसन्नता से अनुभव में ले और मोक्षमार्ग में आ जा। लक्षकोटि सुवर्णमुद्रा देकर भी जिसका एक क्षण मिलना मुश्किल है – ऐसे इस मनुष्य जीवन का एक पल भी वृथा न गँवा। आत्मा की शोभा सम्यग्दर्शन से है अतः इसी जीवन में सम्यक्त्व कर ले – जिससे आत्मा सुखी बन जाय। अमूल्य मनुष्य जीवन में उससे भी अमूल्य ऐसा सम्यग्दर्शन प्राप्त कर ले। बाह्य के लक्ष्मी परिवार ये कोई तेरे शरण नहीं हैं, पुण्य भी शरण नहीं है, सम्यग्दर्शनादि निजगुण ही शरण है। सम्यग्दर्शन से जीवन की सफलता है और उसी में जीव की शोभा है। ऐसा अच्छा सुयोग पुनः पुनः नहीं मिलता; अतः ऐसे सुयोग पाकर सम्यग्दर्शन अवश्य करो ही करो।

अन्त में फिर एकबार कहते हैं कि हे जीव! आत्मा को समझकर श्रद्धा करने का यह अवसर आया है उसको सफल कर लेना। हे भाई! आत्मा का स्वरूप समझकर हित करने के योग्य ज्ञानादि तेरे में हैं, तो तेरे ज्ञानादि को पर में (संसार के कार्यों में) मत लगा, किन्तु आत्महित के कार्य में जोड़ दे। उपयोग को अंतरमुख करके वीतरागविज्ञान प्रगट कर। तेरी बुद्धि को आत्मा में लगाकर सम्यग्दर्शन कर। तू स्वयं शुद्ध चैतन्यमूर्ति हो... अधिक क्या कहें? चेत...चेत...चेत!

• जय हो सम्यग्दर्शनधर्म की •

(छहढाला : तीसरी ढाल के प्रवचन पूर्ण हुए)

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

वीतराग-विज्ञान-प्रश्नोत्तर (३)

इसके पहले की दो पुस्तकों में छहढाला के प्रथम दो अध्यायों के प्रवचनों में से ४४० प्रश्न-उत्तर दिये गये हैं। यहाँ तीसरी ढाल के ३५४ प्रश्न-उत्तर दिये जा रहे हैं, जो छहढाला के अभ्यास में विशेष उपयोगी होंगे।

* प्रश्न :- दूसरी ढाल के अंत में क्या शिक्षा दी है?
* उत्तर :- हे जीव! 'अब आतम के हित पंथ लाग!'

४४१. जीव के हित का पंथ क्या है?
सम्यग्दर्शन-सम्यक्ज्ञान-सम्यक्चारित्र।

२. जीव के दुःख का कारण कौन है?
मिथ्याश्रद्धा-मिथ्याज्ञान-मिथ्याचारित्र।

३. सुख किसको कहते हैं?
जिसमें आकुलता न हो, उसे।

४. ऐसा सुख कहाँ है?
जीव की मोक्षदशा में पूर्ण सुख है।

५. सुखी होने के लिए जीव को क्या करना चाहिए?
जीव को मोक्ष के मार्ग में लगना चाहिए।

४४६. सत्यार्थरूप मोक्षमार्ग कौन-सा है?
जो निश्चय मोक्षमार्ग है, वही सत्यार्थरूप है।

७. व्यवहार मोक्षमार्ग कैसा है?
वह कारणरूप अर्थात् निमित्त है, सत्यार्थरूप नहीं।

८. मोक्ष के सत्य मार्ग कितने हैं?
सच्चा मोक्षमार्ग एक ही है, दो नहीं।

९. निश्चय और व्यवहार दोनों को सच्चा मोक्षमार्ग मानें तो?
– तो पण्डित टोडरमलजी उसे मिथ्याबुद्धि कहते हैं।

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

१०. जैन सिद्धांत का सच्चा रहस्य कैसे समझ में आवे?
निश्चयनय से जो निरूपण किया जाता है, उसे सत्यार्थ मानकर उसकी श्रद्धा करनी चाहिए और व्यवहारनय का जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर (वास्तव में ऐसा नहीं है – ऐसा समझकर) उसकी श्रद्धा छोड़ना – इस रीति से जैन सिद्धान्त का सच्चा रहस्य समझा जा सकता है।

१. किसके आश्रय से जीव सम्यग्दृष्टि होता है?
भूतार्थस्वभाव के आश्रय से जीव सम्यग्दृष्टि होता है।

२. मुनिराज किस रीति से मोक्ष को साधते हैं?
निश्चयनय के आश्रय से मुनिराज मोक्ष को साधते हैं।

३. हजारों शास्त्रों का भंडार किसमें भरा है?
समयसार में।

४. निश्चय बिना अकेले व्यवहार को कारण कहा जा सकता है?
नहीं, वह उपचार से भी कारण नहीं कहा जा सकता।

४५५. ऐसा मोक्षमार्ग जानकर क्या करना?
उसकी आराधना में आत्मा को जोड़ना।

६. मुनिराजों ने आत्महित का क्या उपाय कहा?
'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।'

७. पुण्य की तरफ जाने में सुख है कि दुःख?
उसमें भी आकुलता है, इसलिये दुःख है।

८. तो सुख किसमें है?
आत्मा के शांत-निराकुल चेतनरस के अनुभव में सुख है।

९. मोक्षमार्ग में से किसको निकाल दिया?
पाप और पुण्य दोनों को मोक्षमार्ग में से निकाल दिया।

४६०. पूर्ण सुखरूप मोक्ष का मार्ग कैसा है?
वह मार्ग भी राग रहित निराकुल ही होता है।

६१. राग सहित व्यवहार रत्नत्रय कैसा है?
वह सच्चा मोक्षमार्ग नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६२. सच्चा मोक्षमार्ग कैसा है?
राग रहित निश्चय रत्नत्रयरूप है।

६३. मोक्ष के लिए नियम से करने जैसा कार्य क्या है?
राग रहित शुद्ध रत्नत्रय ही नियम से कर्त्तव्य है।

६४. सुख के लिए जीव को किसमें लगना चाहिए?
निश्चय रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग में निरंतर लगना चाहिये।

४६५. सुख क्या है?
आत्मा का स्वभाव।

६. राग क्या है?
वह आत्मा का स्वभाव नहीं है।

७. किसको जानने से सुख होता है?
सुख स्वभावी आत्मा को जानने से सुख होता है।

८. सुख राग में होता है कि वीतरागता में?
वीतरागता में ही सुख है, राग में सुख नहीं।

९. राग में और पुण्य में सुख माने तो?
तो उसे राग और पुण्य रहित मोक्ष की श्रद्धा नहीं।

४७०. आत्मा के अतीन्द्रिय सुख को कौन जानता है?
धर्मी ही उस सुख को जानता है।

१. वह सुख कैसे अनुभव में आये?
वीतराग-विज्ञान से ही वह सुख अनुभव में आता है।

२. पुण्य बाँधने के भाव में क्या है?
आकुलता और दुःख।

३. पुण्यफल भोगने में क्या होता है?
आकुलता और दुःख।

४. सुख कहाँ है?
आत्मा स्वयं सुखस्वरूप है, उसकी सन्मुखता ही सुख है।

४७५. किसके बिना सुख नहीं होता?
वीतराग-विज्ञान के बिना किसी को भी सुख नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६. धर्मी जीव किसमें राजी है?
धर्मी जीव इन्द्रपद के वैभव में राजी नहीं होता, वह तो चैतन्य के आनन्द में ही राजी होता है।

७. जीव हैरान क्यों हो रहा है?
आत्मा में सुख है – इसको भूलने से।

८. बाह्य विषयों में से सुख क्यों नहीं मिलता?
वहाँ सुख है ही नहीं – फिर कहाँ से मिले।

९. धनवान सुखी, दरिद्री दुःखी – क्या यह सच्चा है?
नहीं; निर्मोही सुखी और मोही दुःखी।

४८०. क्या जड़ वैभव में सुख है?
नहीं; सुख तो आत्मा का वैभव है।

१. भगवान सिद्ध और अरिहंत क्या करते हैं?
बाह्यसाधन के बिना ही आत्मा के आनन्द का अनुभव करते हैं।

२. मोक्षार्थी को क्या करना चाहिए?
मोक्ष के मार्ग पर चलना चाहिए।

३. मोक्ष का मार्ग क्या है?
वीतराग रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

४. क्या उस मोक्षमार्ग में राग आता है?
नहीं, राग तो बन्ध मार्ग है, वह मोक्षमार्ग नहीं।

४८५. सच्चा-सत्यार्थ मोक्षमार्ग कौन-सा है?
जो निश्चय मोक्षमार्ग है, वही सत्यार्थ-सच्चा मोक्षमार्ग है।

६. व्यवहार मोक्षमार्ग कैसा है?
वह उपचार से निश्चय का कारण है।

७. उसको उपचार से कारण कैसे कहा?
वह मोक्षमार्ग का सहकारी है इसलिये, (वह स्वयं सच्चा मोक्षमार्ग नहीं, परन्तु मोक्षमार्ग में साथ रहता है)।

८. सच्चा कारण कैसा है?
सच्चा कारण-कार्य एक जाति का होता है, इसलिये शुद्धता का कारण शुद्धता ही होती है, शुद्धता का कारण राग नहीं होता।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

९. सच्चा मोक्षमार्ग कैसा है?
शुद्ध स्वद्रव्य के आश्रित है।

९०. उपचार मोक्षमार्ग कैसा है?
परद्रव्य के आश्रित है।

१. सच्चा मोक्षमार्ग जानकर क्या करना?
उसमें लगे रहना (शिवमग लाग्यो चहिए)।

२. निश्चय-व्यवहार दोनों को जाना हुआ कब कहा जाये?
निश्चय एक का आदर करे, तब।

३. निश्चय मार्ग कैसा है?
वह स्वयं के शुद्ध उपादान से प्रगट हुआ है।

४९४. व्यवहार मार्ग कैसा है?
वह पराश्रित है।

५. सच्चे मोक्षमार्ग कितने हैं।
एक ही है।

६. मोक्षमार्ग के दूसरे नाम क्या हैं?
आनंद मार्ग, मोक्ष की क्रिया, आराधना, धर्म, मोक्ष का पुरुषार्थ, शुद्ध परिणति, मोक्ष का साधन, अंतर्मुखभाव, वीतरागता, वीतराग-विज्ञान, तीर्थंकरों का मार्ग आदि।

७. नय क्या है?
नय सच्चे ज्ञान का प्रकार है।

८. क्या अज्ञानी को एक भी नय होता है?
नहीं।

९. सच्चा नय किसको होता है?
जो आत्मा के स्वानुभव से सम्यक्ज्ञान करे, उसे।

५००. निश्चय के बिना व्यवहार कैसा है?
मिथ्या है।

१. सम्यग्दर्शन के साथ में क्या होता है?
ज्ञान-चारित्र-आनंद वगैरह अनन्त गुणों का अंश प्रगट होता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. क्या समुद्र में डुबकी लगाने से आनन्द होता है?
नहीं, किन्तु चैतन्यसमुद्र में डुबकी लगाने से आनन्द होता है।

३. चैतन्य का पहाड़ खोदने पर उसमें से क्या निकलता है?
सम्यग्दर्शनादि अनंत आनन्दमय रत्न निकलते हैं।

५०४. तीन कीमती रत्न कौन-से हैं?
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र।

५. अनंत रत्नों की खान कौन है?
चैतन्यप्रभु आत्मा स्वयं।

६. मेरु से भी बड़ा चैतन्यरत्न का पहाड़ अज्ञानी को क्यों नहीं दिखता?
क्योंकि उसकी दृष्टि के समक्ष मिथ्यात्व का तिनका लगा है।

७. अरिहंत की आत्मा को वास्तव में पहिचाने तो क्या हो? अपने आत्मा का सच्चा स्वरूप पहिचानने में आये अर्थात् दर्शनमोह का नाश होकर सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. अरिहन्त प्रभु के द्रव्य-गुण-पर्याय कैसे हैं?
वह तीनों चैतन्यमय हैं।

९. क्या उसमें जरा भी राग है?
नहीं।

१०. ऐसा जानने से क्या होगा?
स्वयं में चेतन और राग की भिन्नता का अनुभव होता है।

१. अपने शुद्ध आत्मा की पहिचान और अरिहन्तदेव की पहिचान उसमें पहला कौन?
दोनों साथ में होते हैं।

२. उसकी पहिचान कब होती है?
ज्ञानपर्याय अंतर में ढले, तब।

३. क्या राग से मोक्षमार्ग शुरू होता है?
नहीं, आत्मा के अनुभव से ही मोक्षमार्ग की शुरुआत होती है।

५१४. चैतन्यप्रभु को लक्ष्य में लेने से क्या हुआ?
आत्मा में आनन्द सहित केवलज्ञान के अंकुर फूटते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

५. क्या शुभराग में से ज्ञान के अंकुर आते हैं?
नहीं।

६. आनन्द का मार्ग कौन-सा है?
आतमराम निजपद में रमे, वह आनन्द का मार्ग है।

७. रागादि भाव कैसे हैं?
वे पर-पद हैं, दुःख का मार्ग हैं।

८. मोक्ष का मार्ग किसमें समाता है?
स्व-पद में अर्थात् निजस्वरूप में समाता है।

९. साधक का स्वसंवेदनरूप भावश्रुतज्ञान कैसा है?
वह केवलज्ञान की ही जाति का है, अतीन्द्रिय है।

५२०. सम्यक्चारित्र कैसा है?
शुभाशुभराग से निवृत्तिरूप और शुद्ध चैतन्य में प्रवृत्तिरूप सम्यक्चारित्र है।

१. शुभाशुभभाव कैसा है?
संसार का कारण है।

२. सम्यक्चारित्र कैसा है?
मोक्ष का कारण है, राग से रहित है।

३. क्या विकल्प में चेतना है?
नहीं।

५२४. क्या चेतना में विकल्प है?
नहीं; दोनों का स्वरूप भिन्न है।

५. आत्मा में लीनतारूप सम्यक्चारित्र कब होता है?
आत्मा को पहिचानकर अनुभव करे, उसके बाद ही।

६. चौथे गुणस्थान में श्रद्धा-ज्ञान के साथ में चारित्र होता है?
हाँ, स्वरूपाचरण चारित्र होता है।

७. मुनिदशा का चारित्र कब होता है?
छठवें-सातवें गुणस्थान में।

८. मोक्षमार्ग की शुरुआत कब होती है?
चौथे गुणस्थान से।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

९. आत्मा को जाने बिना उसकी श्रद्धा हो सकती है क्या?
नहीं, दोनों साथ में होते हैं।

१०. ज्ञानी के ज्ञान में नय कितने हैं?
अनंत।

१. ज्ञान मोक्ष का साधक कब होता है?
अंतर में लक्षण करके आत्मा का अनुभव करे, तब।

२. मोक्षमार्ग में निश्चय और व्यवहार कब लागू पड़ते हैं?
जहाँ सच्चा मार्ग प्रगट हो, वहाँ।

३. अनंतकाल से राग करते हुए भी सुख क्यों नहीं मिला?
क्योंकि सुख का साधन राग नहीं है।

५३४. तो सुख का साधन क्या है?
वीतराग-विज्ञान ही सुख का साधन है।

५. राग से लाभ नहीं मानता – ऐसा कब कहाँ जाये?
राग से भिन्न चेतनवस्तु का लक्ष्य करे, तब।

६. केवलज्ञान और श्रुतज्ञान; दोनों की जाति में क्या फर्क है?
दोनों एक ही जाति के हैं।

७. किसमें उपयोग जोड़ने से सुख होता है?
सुखस्वरूपी आत्मा में उपयोग जोड़ने से सुख होता है।

८. शीघ्र करने योग्य क्या है?
'स्वद्रव्य का ग्रहण शीघ्र करो।'

९. राग में थोड़ा भी आनन्द है?
नहीं, उसमें तो दुःख ही है।

५४०. राग दुःख है, क्या दुःख से सुख साधा जा सकता है?
नहीं; सुख का साधन भी सुखरूप ही होता है।

१. अरिहंत को पहिचान कर जीव क्या करना चाहता है?
अरिहंत जैसे अपने ज्ञानस्वभाव तरफ ढलना चाहता है।

२. सम्यग्दर्शन का निमित्त कौन हो सकता है?
सच्चे देव-गुरु-शास्त्र ही निमित्त होते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

३. वीतराग देव-गुरु-शास्त्र क्या सिद्ध करते हैं?
वे आत्मा के सर्वज्ञस्वभाव को सिद्ध करते हैं।

५४४. यह छहढाला कैसी है?
घर-घर में बालकों को पढ़ाने जैसी है। अहा! ऐसे वीतराग-विज्ञान का घर-घर प्रचार करने जैसा है।

५. जैन सिद्धांत का सार क्या है?
ज्ञान-आनन्दस्वरूप आत्मा अनुभव में लेना, वह।

६. क्या ज्ञान-श्रद्धा वगैरह राग के आश्रित हैं?
नहीं, क्योंकि वे राग के अंश नहीं हैं।

७. आत्मा के आश्रय से क्या प्रगट होता है?
राग उत्पन्न नहीं होता, परन्तु रागरहित गुण उत्पन्न होता है।

८. दुःख के समय आत्मा में दूसरा कुछ है?
हाँ; आनन्द का पूरा समुद्र भरा है।

९. अनन्त तीर्थंकरों ने किस रीति से मोक्षमार्ग को साधा है?
स्वसन्मुख होकर शुद्धात्मा के आश्रय से।

५०. तीनों काल के मुमुक्षुओं को तीर्थंकरों ने क्या उपदेश दिया है?
अंतर्मुख होकर शुद्धात्मा की अनुभूति करो।

१. मोक्षमार्ग कितना है?
रत्नत्रय की जितनी शुद्धता हो, उतना।

२. क्या मोक्षमार्ग का कोई अंश शुभराग के – शरीर के आश्रय से है?
नहीं; पूरा मोक्षमार्ग आत्मा के आश्रय से ही है।

३. वह मोक्षमार्ग कैसा है?
सरस, सुन्दर और स्वाधीन है।

५५४. सरस और सुन्दर क्यों है?
क्योंकि राग रहित है, राग में सुन्दरता नहीं है।

५. निश्चय सम्यग्दर्शन क्या है?
पर से भिन्नता आत्मा की रुचि, वह सम्यक्त्व है।

६. वह सम्यक्त्व कैसा है?
भला है, उत्तम है, अच्छा है, हितकर है, सत्य है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७. सम्यक्ज्ञान क्या है?
आत्मस्वरूप का जानना ही सच्ची ज्ञानकला है।

८. सम्यक्चारित्र क्या है?
आत्मस्वरूप में लीनता, वह सम्यक्चारित्र है।

९. सुखी होने के लिये जीव को क्या करना चाहिए?
ऐसे मोक्षमार्ग के उद्यम में लगे रहना चाहिए।

६०. सबसे श्रेष्ठ कला क्या है?
आत्मस्वरूप के जाननेरूप ज्ञानकला ही सबसे श्रेष्ठ है।

१. वह ज्ञानकला कैसी है?
वह आनन्द की क्रीड़ा करती-करती केवलज्ञान को साधती है।

२. चौथे गुणस्थान में अव्रती गृहस्थ का सम्यग्ज्ञान कैसा है?
अहो! वह ज्ञान भी केवलज्ञान की जाति का ही है; वह ज्ञान राग की जाति का नहीं, राग से भिन्न है।

३. क्या भगवान शुभराग को मोक्षमार्ग कहते हैं?
नहीं, उसे तो भगवान ने बंधमार्ग कहा है।

५६४. मोक्ष का कारणरूप चारित्र कैसा है?
वह शुभाशुभ क्रिया से निवृत्तिरूप है और शुद्ध चैतन्यस्वरूप में प्रवृत्तिरूप है।

५. क्या शरीर की क्रिया में और राग में चारित्र है?
नहीं।

६. सच्चा श्रद्धान कब होता है?
जब आत्मस्वरूप को बराबर जाने, तब।

७. सच्चा ज्ञान क्या है?
जो मोक्ष को साधे... और आनन्द देवे।

८. राग को मोक्षमार्ग मानना – यह बात कैसी है?
वह काँच के टुकड़े को कीमती हीरा मानने जैसी है।

९. मोक्षपद कैसा है?
महा कीमती है, वह राग से मिल जाये – ऐसा नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७०. पहले चारित्र ले लो, बाद में सम्यक्त्व होगा – ऐसा मानने वाले जीव कैसे हैं?
उन्हें मोक्षमार्ग की खबर नहीं, वे तो सम्यक्त्व और चारित्र को जानते ही नहीं।

१. जो अज्ञानी राग को मोक्षमार्ग माने, वह कैसा है?
वह वास्तव में मोक्षमार्ग नहीं, वह तो संसारमार्ग ही है।

२. सच्चा मोक्षमार्ग कैसा है?
वह शुद्धात्मा के आश्रय से है, राग रहित है।

५७३. व्यवहार कारण कैसा है?
धर्मास्तिकायवत् है।

४. अनंत बार स्वर्ग में जाने के बाद भी जीव को सुख क्यों नहीं मिला?
क्योंकि उसने आत्मज्ञान नहीं किया।

५. निश्चय सम्यक्त्व कैसा है?
वह सिद्धदशा में भी (सदैव) रहता है।

६. व्यवहार सम्यक्त्व कैसा है?
राग छूटते ही वह छूट जाता है।

७. आत्मा का स्वभाव रागादि से संयुक्त है क्या?
नहीं, रागादि से रहित होते हुए भी उसे रागादि संयुक्त मानना, वह अज्ञानियों का मिथ्या प्रतिभास है।

८. धर्मी को राग के समय मोक्षमार्ग है?
हाँ; परन्तु राग को वह मोक्षमार्ग नहीं मानता।

९. सात तत्त्व क्या हैं?
जीव-अजीव-आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा और मोक्ष।

५८०. इन सात तत्त्वों का सच्चा स्वरूप कहाँ है?
जैनमार्ग में है, दूसरे मार्ग में उपलब्ध नहीं होता है।

१. सम्यग्दृष्टि जीव जैनमार्ग सिवाय दूसरे को मानता है क्या?
नहीं, स्वप्न में भी नहीं मानता।

२. सात तत्त्व की श्रद्धा कब सच्ची होती है?
शुद्धनय से, उसमें से शुद्धात्मा को निकाल ले, तब।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

५८३. जीव तत्त्व किसे कहते हैं?
जो सदा उपयोगस्वरूप है, वह जीव है।

४. जीव तत्त्व जगत में कितने हैं?
अनन्त।

५. उन जीवों के कितने भेद हैं?
तीन भेद हैं – बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा।

६. बहिरात्मा कितने हैं?
अनन्त।

७. अंतरात्मा कितने हैं?
असंख्यात।

८. परमात्मा कितने हैं?
अनंत।

९. बहिरात्मा किसे कहते हैं?
बाहर में शरीर को आत्मा मानने वाले को बहिरात्मा कहते हैं।

५९०. अंतरात्मा किसे कहते हैं?
अंतर में देह से भिन्न आत्मा को जानने वाले को अंतरात्मा कहते हैं।

१. परमात्मा कौन हैं?
परम ऐसे सर्वज्ञपद को प्राप्त हुए आत्मा परमात्मा है।

२. परमात्मा के कितने प्रकार हैं?
(१) शरीर सहित अरिहंत; (२) शरीर रहित सिद्ध।

३. अरिहंत परमात्मा कितने हैं?
लाखों।

५९४. सिद्ध परमात्मा कितने हैं?
अनंत।

५. अजीव तत्त्व के कितने भेद हैं?
पाँच – पुद्गल, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल।

६. उनमें रूपी कितने हैं?
एक मात्र पुद्गल।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७. शरीर, इन्द्रिय वगैरह क्या हैं?
ये सब पुद्गल की रचना हैं, जीव की नहीं।

८. जीव-अजीव वगैरह तत्त्वों को कब जाना कहलाता है?
उसको एक-दूसरे में मिलान न करे, तब।

९. आत्मा को जाने बिना पर को जान सकता है क्या?
ना; उससे तो पर में आत्मबुद्धि है।

६००. पुण्य तत्त्व का समावेश किसमें होता है?
आस्रव और बंध में; धर्म में नहीं।

१. शुभ आस्रव कैसे हैं?
वे भी संसार के ही कारण हैं, इसलिये छोड़ने जैसे हैं।

२. संवरतत्त्व कैसा है?
वह सम्यग्दर्शनादि वीतरागभावरूप है।

३. सच्ची निर्जरा किस रीति से होती है?
उपयोग की शुद्धता बढ़ने से।

४. मोक्ष अर्थात् क्या?
जीव की संपूर्ण ज्ञान और सुखदशा, वह मोक्ष है।

६०५. वह मोक्षदशा कैसी है?
राग रहित है।

६. वह मोक्ष का उपाय कैसा है?
वह भी राग रहित है।

७. शुभराग को मोक्ष का कारण माने तो?
उसको मोक्ष की तथा मोक्ष के उपाय की खबर नहीं है।

८. मोक्ष का और बंध का कारण कैसा है?
भिन्न-भिन्न है; मोक्ष का कारण वीतराग है, बंध का कारण राग है।

९. जो मोक्ष का कारण होता है, वह बंध का कारण हो सकता है क्या?
नहीं।

६१०. जो बंध का कारण होता है, वह मोक्ष का कारण हो सकता है क्या?
नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

१. सात तत्त्व की पहिचान, वह क्या है?
वह वीतराग जैनधर्म का एकड़ा (शुरुआत/मूलभूत बात) है।

२. सात तत्त्वों को जानकर क्या करना?
आत्मा के शुद्धस्वभाव की अनुभूति, प्रतीति करना।

३. सामायिक कब होता है?
समभावी-ज्ञानस्वभावी आत्मा को जाने, तब।

४. उस सामायिक का फल क्या?
मोक्ष।

५. क्या बहिरात्मा जीव परमात्मा हो सकता है?
हाँ, वह आत्मा को पहिचान कर परमात्मा हो सकता है।

६. सब जीवों में परमात्मा होने की ताकत कौन बताता है?
यह बात जैनशासन ही बतलाता है।

६१७. क्या नरक में भी अंतरात्मा है?
हाँ; वहाँ भी जो असंख्य सम्यग्दृष्टि हैं, वे अंतरात्मा हैं।

८. अंतरात्मा के गुणस्थान कौन-कौन?
चार से बारह।

९. उत्तम अंतरात्मा कौन हैं?
सातवें से बारहवें गुणस्थानवर्ती शुद्धोपयोगी मुनि।

२०. मध्यम अंतरात्मा कौन हैं?
देशव्रती-श्रावक और महाव्रती-मुनि।

१. सबसे छोटा अंतरात्मा कौन?
सम्यग्दृष्टि-अव्रती गृहस्थ।

२. ये तीनों प्रकार के अंतरात्मा कैसे हैं?
'ये तीनों शिवमगचारी' – ये तीनों मोक्षमार्गी हैं।

३. क्या गृहस्थ भी मोक्षमार्ग में स्थित है?
हाँ; 'गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो.... (रत्नकरंड श्रावकाचार)

४. मनुष्य लोक में कितने अरिहन्त भगवान विचरते हैं?
लाखों अरिहन्त परमात्मा मनुष्य लोक में विचरते हैं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

५. अरिहन्त को कौन-सा गुणस्थान है?
तेरहवाँ और चौदहवाँ।

६. देहाती को (ग्रामजनों) को इतनी बड़ी आत्मा की बात कैसे समझ में आये?
भैया तू देहाती नहीं है, तू तो अनंत गुण सहित भगवान है।

६२७. ज्ञानी क्या दिखाते हैं?
जो स्वरूप है, वही दिखाते हैं; जो है, उससे अधिक नहीं कहते।

८. यह बात कैसी है?
अपने हित के लिए जरूर समझने जैसी है।

९. करोड़ों रुपयों में तथा बँगला-मोटर में कितना सुख है?
उनमें कहीं भी सुख की गंध भी नहीं है।

३०. तो सुख कहाँ है?
सुख तो आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ही है।

१. शरीर-रुपया मकान वगैरह जीव हैं कि अजीव?
ये सब अजीव हैं।

२. क्या अजीव में सुख है?
कभी भी नहीं।

३. क्या परलक्ष्यी शुभाशुभ भावों में सुख है?
नहीं।

४. संवर-निर्जरारूप सुख में किसकी सन्मुखता है?
उसमें आत्मा की सन्मुखता है।

५. आस्रव-बंधरूप दुःख में किसकी सन्मुखता है?
उसमें पर सन्मुखता है।

६. क्या मनुष्य क्षेत्र में अभी अरिहंत हैं?
हाँ, विदेह में सीमंधरस्वामी वगैरह लाखों अरिहंत हैं।

७. इस भरतक्षेत्र में कोई अरिहंत थे?
हाँ; अढ़ाई हजार वर्ष पहले महावीर प्रभु विचरते थे।

६३८. संस्कृत भाषा में सबसे पहले सिद्धान्त सूत्र किसने रचा?

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

आचार्य श्री उमास्वामी ने मोक्षशास्त्र संस्कृत में रचा। वे कुन्दकुन्दाचार्य देव के शिष्य थे।

९. मोक्षशास्त्र पर किसने-किसने टीकायें रची हैं?
- पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि, अकलंक देव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक और विद्यानंदी स्वामी ने तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक – ये तीन महान टीकायें रची हैं।

६४०. मोक्षशास्त्र का पहला सूत्र क्या है?
"सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः।"

१. समयसार की ११वीं गाथा में सम्यग्दर्शन किसको कहा है?
भूतार्थस्वभाव के आश्रय को सम्यग्दर्शन कहा है।

२. नवतत्त्व को जाने, परन्तु शुद्धात्मा को न पहिचाने तो?
– तो उसको सम्यग्दर्शन नहीं होता और उसका नवतत्त्व का ज्ञान भी सच्चा नहीं कहलाता।

३. वीतराग भगवान किस मार्ग से मोक्ष में गये?
अंतर्मुखी शुद्धरत्नत्रय के मार्ग से मोक्ष में गये।

४. जीव को बहिरात्म-अवस्था में क्या था?
बहिरात्म-अवस्था में वे एकांत दुःखी थे।

५. अब अंतरात्मा होने से क्या हुआ?
आत्मा का सच्चा सुख अनुभव में आया।

६४६. रागादि भाव कैसे हैं?
वे अंतरस्वभाव के आश्रय से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

७. अंतरस्वभाव के आश्रय से क्या उत्पन्न होता है?
वीतरागी ज्ञान-आनन्दरूप शुद्धभाव उत्पन्न होता है।

८. क्या हम भी परमात्मा को पहिचान सकते हैं?
हाँ; अंतरात्मा होकर परमात्मा को पहिचान सकते हैं।

९. क्या जड़ शरीर में जीव का धर्म होता है?
ना।

६५०. बी.ए. एम.ए. पढ़े, परन्तु आत्मा को न पहिचाने तो?
– तो वीतरागी आत्मविद्या में वह मूर्ख है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

१. आत्मा के हित के लिए कैसी विद्या सीखनी?
जीव-अजीव के भेदज्ञानरूप वीतराग-विद्या सीखनी।

२. अंतरात्मा का लक्षण क्या है?
– ज्ञान चेतना की अनुभूति।

३. ज्ञानचेतना सहित अंतरात्मा को वास्तव में कौन पहिचान सकता है?
जो स्वयं अंतरात्मा हो, वह।

४. क्या अकेले अनुमान से ज्ञानी को पहचान सकते हैं? ...नहीं।

५. क्या राग और शरीर का नाश होने से आत्मा जी सकता है?
हाँ; आत्मा अपने चेतनस्वभाव से सदा जीता है।

६. आत्मा को प्राप्त करने वाले अंतरात्मा कैसे हैं?
वे तो परमात्मा के पड़ौसी हैं।

६५७. क्या अंतरात्मा को राग होता है?
किसी को होता है; सबको नहीं।

८. राग होने पर भी अंतरात्मा क्या करते हैं?
अपनी चेतना को राग से भिन्न अनुभव करते हैं।

९. अंतरात्मा की पहिचान करने से क्या होता है?
जीव-अजीव का सच्चा भेदज्ञान हो जाता है।

६०. शरीर और राग से लाभ माने तो क्या होता है?
तो वह राग से और शरीर से छूट नहीं सकता तथा वीतरागी मोक्षमार्ग में नहीं आ सकता अर्थात् संसार में ही रहता है।

१. सम्यग्दृष्टि को अशुभभाव हो, तब?
वह भी अंतरात्मा है।

२. मिथ्यादृष्टि शुभ भाव करे, तब?
तब भी वह बहिरात्मा है।

३. राग के समय अंतरात्मा की चेतना कैसी है?
उस समय भी उसकी चेतना राग से अलिप्त ही है।

४. व्यवहार रत्नत्रय वाला अज्ञानी कैसा है?
अव्रती-जघन्य-अन्तरात्मा से भी हलका है; उसका स्थान मोक्षमार्ग में नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

५. सम्यग्दृष्टि की परिणति कैसी है?
कोई अद्‌भुत-आश्चर्यकारी है; ज्ञान-वैराग्य सहित है।

६. अविरत सम्यग्दृष्टि को कितनी कर्मप्रकृतियाँ नहीं बँधतीं?
उसको कुल ४१ कर्मप्रकृति बँधती नहीं।

६६७. अविरत सम्यग्दृष्टि को संयम है?
नहीं; संयम नहीं है, परन्तु संयम की भावना निरंतर रहती है।

८ छोटे से छोटे सम्यग्दृष्टि की आत्मश्रद्धा कैसी है?
सिद्ध भगवान जैसी।

९. कुन्दकुन्द देव ने मोक्षप्राभृत में सम्यग्दृष्टि को कैसा कहा है?
"ते धन्य हैं, कृत्यकृत्य हैं, शूरवीर हैं पंडित हैं।"

७०. सर्वज्ञ परमात्मा की जिसको श्रद्धा नहीं, वह जीव कैसा है?
वह जीव बहिरात्मा है, गृहीत मिथ्यादृष्टि है।

१. सर्वज्ञ का सच्चा स्वीकार कौन करता है?
ज्ञानदृष्टि सहित सम्यग्दृष्टि ही सर्वज्ञ का सच्चा स्वीकार करता है।

२. सर्वज्ञ के स्वीकार में क्या-क्या आता है?
अहो! सर्वज्ञ के स्वीकार में तो ज्ञानस्वभाव है, वह धर्म का मूल पाया है। उसमें तो अपूर्व तत्त्वज्ञान है, राग और ज्ञान की जुदाई का अनुभव है।

३. सर्वज्ञता कैसी है?
अहो, उसकी क्या बात! वह तो अतीन्द्रिय ज्ञानरूप है, परम आनन्दरूप है, राग-द्वेष रहित है, विकल्प से पार उसकी महिमा है।

४. क्या शरीर होने पर भी सर्वज्ञपद हो सकता है?
... हाँ, अरहंत दशा में होता है।

५. सिद्ध भगवान कैसे हैं?
जगत् में सबसे उत्तम (श्रेष्ठ) हैं, अनन्त हैं, भव का अंत करने से महंत हैं, अनन्त सुख सहित हैं, देह रहित हैं, ज्ञानशरीरी हैं।

६७६. अनन्तानन्त जीव-पुद्‌गल कहाँ रहते हैं?
आकाश के अनन्तवें भाग रूप लोक में।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७. क्या अनन्त आकाश को ज्ञान पूरा जान सकता है?
हाँ; ज्ञान का सामर्थ्य उससे भी अनन्त है।

८. आत्मा के ज्ञान में इन्द्रिय तो निमित्त है न?
नहीं; स्वाधीन ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान में इन्द्रिय का निमित्त भी नहीं, इन्द्रिय का निमित्त तो पराधीन ऐसे इन्द्रिय ज्ञान में है; परन्तु उस ज्ञान को तो हेय कहा है। अतीन्द्रिय ज्ञान ही आनन्द का कारण होने से उपादेय है।

९. केवलज्ञान का कोई निमित्त है?
हाँ; ज्ञेयरूप पूरा जगत् उसको निमित्त है।

८०. सत्य समझने की शुरुआत किस रीति से करना ?
स्ववस्तु का स्वरूप लक्ष्य में लेकर।

१. हलन-चलन करे तथा बोले, वह जीव – क्या यह सच है?
नहीं; जो जाने वह जीव, जिसमें ज्ञान न हो, वह अजीव।

२. आस्रव-बंध का कारण क्या है?
जीव का अशुद्ध उपयोग।

३. पुण्य-पाप के आस्रव तथा बन्ध कैसे हैं?
जीव को दुःख का कारण हैं, अतः छोड़ने जैसे हैं।

६८४. मेंढक सम्यग्दृष्टि होता है तो क्या उसको तत्त्वश्रद्धा होती है?
हाँ; जिनमार्ग अनुसार उसको बराबर तत्त्वश्रद्धा होती है।

५. तत्त्व को जानकर क्या करना?
हितकर तत्त्व को ग्रहण करना और दुःखरूप तत्त्व को छोड़ देना।

६. दुर्भागी कौन है?
अवसर प्राप्त होने पर भी जो आत्मा को न पहिचाने, वह।

७. विद्यार्थियों को क्या करना चाहिए?
उनको भी ऐसी वीतरागी पढ़ाई पढ़नी चाहिए।

८. परमेश्वर कैसे हैं?
वे जगत् के जानने वाले हैं, परन्तु जगत के कर्त्ता नहीं।

९. जगत् के पदार्थ कैसे हैं?
स्वयं सत् हैं, दूसरा कोई उनका कर्त्ता नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६९०. क्या आत्मा के अनुभव बिना सर्वज्ञ को पहिचान सकते हैं?
नहीं।

१. शरीर छिन्न-भिन्न हो, तब भी जीव शांति रख सकता है क्या?
हाँ; क्योंकि जीव शरीर से अलग है।

२. जीव की भूल कब मिटे?
अपनी भूल को एवं अपने गुण को जाने, तब।

३. जीव को सुख-दुःख का निमित्त कौन है?
अपने गुण-दोष, दूसरा कोई नहीं, कर्म भी नहीं।

६९४. क्या आत्मा का स्वभाव दुःख का कारण होता है?
नहीं; आत्मा का स्वभाव सुख का ही कारण है।

५. राग और पुण्य कभी भी सुख का कारण हो सकता है?
नहीं; राग और पुण्य तो हमेशा दुःख का ही कारण है।

६. ऐसा जानने वाला जीव क्या करता है?
पुण्य-पाप से भिन्न होकर आत्मा की तरफ परिणमता है।

७. पुण्य से भविष्य में सुख मिलेगा – ये सच्चा है?
नहीं।

८. अज्ञानी किसका आदर करते हैं?
पुण्य का।

९. ज्ञानी किसका आदर करते हैं?
पुण्य-पाप रहित ज्ञानचेतना का।

७००. क्या आत्मा को अलग रखकर धर्म हो सकता है?
कभी भी नहीं; आत्मा को पहिचाने, तब ही धर्म होता है।

१. सम्यग्दर्शन के निमित्त कौन हैं?
सच्चे देव-गुरु-धर्म ही सम्यक्त्व के निमित्त हैं।

२. गुण क्या? पर्याय क्या? द्रव्य क्या?
जो टिके (कायम रहे) वह गुण; परिणमन हो वह पर्याय और जो गुणपर्याय सहित हो, वह द्रव्य।

३. वीतरागी देव कौन हैं?
अरिहंत और सिद्ध।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४. निर्ग्रंथ गुरु कौन हैं?
आचार्य-उपाध्याय-साधु।

५. सच्चा धर्म कौन-सा है?
सम्यक्त्वादि वीतरागभाव।

६. अण्डा में जीव है?
पंचेन्द्रिय जीव है; उसका आहार मांसाहार ही है।

७०७. वीतरागी मार्ग में अहिंसा किसको कहते हैं?
रागादि भावों से रहित शुद्धभाव, वह अहिंसा है।

८. हिंसा किसको कहते हैं?
जितने रागादि भाव हैं, उतनी चैतन्य की हिंसा है।

९. हिंसा-अहिंसा का ऐसा स्वरूप कहाँ है?
सर्वज्ञ देव के मत में ही है; दूसरे में कही नहीं है।

७१०. ऐसे अहिंसा धर्म को कौन पहिचानता है?
सम्यग्दृष्टि ही पहिचानता है।

१. जैन साधु कैसे होते हैं?
हमेशा निर्ग्रंथ होते हैं; उनको वस्त्र होते नहीं।

२. इससे भिन्न साधुपद माने तो?
तो उसे सम्यक्त्व के सच्चे निमित्त की पहिचान नहीं है।

३. जीव कौन-सी विद्या भूतकाल में नहीं पढ़ा?
वीतरागी-विज्ञानरूप सच्ची चैतन्यविद्या कभी नहीं पढ़ा।

४. ज्ञान आत्मा से कभी भिन्न क्यों नहीं होता?
क्योंकि ज्ञान, वह आत्मा का स्वरूप ही है।

५. कर्म और शरीर कैसे हैं?
आत्मा से भिन्न जाति के हैं, वे आत्मा के स्वरूप नहीं हैं।

६. क्या पुण्य-पाप वाला आत्मा सच्चा आत्मा है?
नहीं, सच्चा आत्मा चेतनारूप और आनन्दरूप है।

७. मुमुक्षु जीव को क्या साध्य है?
मुमुक्षु जीव को मोक्षपद सिवाय दूसरा कुछ साध्य नहीं है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७१८. सच्चा आनन्द (मोक्ष का आनन्द) कैसा है?
'स्वयंभू' है, आत्मा ही उस रूप हुआ है।

९. साधक दशा का समय कितना?
असंख्य समय।

७२०. साध्यरूप मोक्षदशा का समय कितना?
अनंत।

१. सिद्धदशा/मोक्षदशा कैसी है?
परम आनंदरूप, सम्यक्त्वादि सब गुण सहित, आठ कर्म रहित।

२. क्या चौथा गुणस्थान का सम्यग्दर्शन राग वाला है?
नहीं; वहाँ राग होने पर भी सम्यग्दर्शन तो राग रहित ही है।

३. सम्यक्त्व के साथ का राग कैसा है?
वह बंध का ही कारण है; सम्यक्त्व मोक्ष का कारण है।

४. क्या कोई को अकेला व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है?
नहीं; निश्चयपूर्वक ही सच्चा व्यवहार होता है।

५. क्या कोई को अकेला निश्चय सम्यक्त्व होता है?
हाँ; सिद्ध भगवान वगैरह को अकेला निश्चय सम्यग्दर्शन है।

६. चैतन्य देव कैसा है?
अहो! उसकी महिमा अद्भुत है, उसमें अनंत स्वभाव है।

७. सम्यग्दर्शन कैसे प्रगट होता है?
आनन्द के अपूर्व वेदन सहित सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।

८. सम्यग्दर्शन के साथ में धर्मी को क्या होता है?
निशंकितादि आठ गुण होते हैं।

७२९. चैतन्यसुख का जिसने अनुभव नहीं किया, उसको क्या होता है?
उसको (गहरे-गहरे) राग की – पुण्य की – भोग की चाहना होती है।

३०. सम्यग्दृष्टि जीव कहाँ रहते हैं?
चेतना में ही तन्मय रहते हैं, राग में नहीं रहते।

१. धर्म करेंगे, तब पैसा मिलेगा, क्या यह सच है?
नहीं; उसको धर्म मालूम ही नहीं, यह तो राग को ही धर्म समझता है।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

२. धर्म से क्या मिलता है?
धर्म से आत्मा का वीतरागी सुख मिलता है।

३. पुण्यरूप धर्म कैसा है?
वह संसार योग का कारण है, वह मोक्ष का कारण नहीं है।

४. उस पुण्य को कौन अनुभवता है?
अज्ञानी।

५. धर्मी जीव किसकी इच्छा करता है?
वह अपने चैतन्य चिंतामणि के सिवाय किसी की इच्छा नहीं करता।

६. स्वर्ग का देव आये तो?
वह कुछ चमत्कार नहीं; सच्चा चमत्कार तो चैतन्यदेव का है।

७. वीतरागता को साधने वाला धर्मी किसको नमस्कार करता है?
वीतरागी देव के अलावा दूसरे किसी देव को वह नमस्कार नहीं करता?

७३८. अरिहन्त के शरीर में रोग और अशुचि होता है?
नहीं।

९. साधक के शरीर में रोगादि होता है?
हाँ; परन्तु अन्दर आत्मा सम्यक्त्वादि से सुशोभित है।

४०. मुनियों का आभूषण क्या है?
रत्नत्रय उनका आभूषण है।

१. ऐसे मुनिराज को देखने से अपने को क्या होता है?
अहो! बहुमान से उनके चरणों में मस्तक झुक जाता है।

२. धर्म में बड़ा कौन है?
जिसमें गुण ज्यादा, वह बड़ा; धर्म में पुण्य से बढ़ा नहीं कहा जाता।

३. धर्मी अकेला हो तो?
तो भी घबराता नहीं; सत्यमार्ग में वह निःशंक है।

४. जैसे माता को पुत्र प्यारा है, वैसे धर्मी को क्या प्यारा है?
धर्मी को प्यारा है साधर्मी; धर्मी को प्यारा है रत्नत्रय।

५. धर्मी की सच्ची प्रभावना कौन कर सकता है?
जो स्वयं धर्म की आराधना करे, वह।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६. धर्मी को चक्रवर्ती पद का भी अभिमान क्यों नहीं होता?
क्योंकि चैतन्य-तेज के पास चक्रवर्ती पद तुच्छ लगता है?

७. मनुष्य को उत्तम अवतार प्राप्त कर क्या करना?
चैतन्य की आराधना द्वारा भव के अंत का उपाय करना।

८. पुत्र को दीक्षा के लिए माता ने कौन-सी शर्त से अनुमति दी?
अब दूसरी माता न करना पड़े – इस शर्त से।

७४९. शरीर के सुन्दर रूप का अभिमान धर्मी को क्यों नहीं?
क्योंकि सबसे सुन्दर ऐसा चैतन्य रूप उसने देखा है।

५०. क्या कुरूप, काला एवं कुबड़ा मनुष्य धर्म कर सकता है?
हाँ।

१. शरीर के सुन्दररूप से आत्मा की शोभा है?
नहीं।

२. आत्मा की शोभा किससे है?
सम्यग्दर्शनरूप आभूषण से।

३. सबसे ऊँचे से ऊँची पढ़ाई क्या है?
ज्ञान द्वारा आत्मा की अनुभूति प्राप्त हो, वह।

४. सच्चा श्रुतज्ञान का फल क्या है?
आनन्द और वीतरागता।

५. बाह्य विद्या तथा इन्द्रियज्ञान का महत्त्व किसको लगता है?
आत्मा के केवलज्ञान स्वभाव को जो नहीं जानते, उनको।

६. धर्मी को बाह्य पुण्य वैभव का अभिमान क्यों नहीं?
क्योंकि सबसे श्रेष्ठ; ऐसा चैतन्य वैभव उसने देखा है।

७. धर्मी की जाति और कुल कौन-से हैं?
हम सिद्ध भगवन्तों की जाति के तथा तीर्थंकरों के कुल के हैं।

८. भरत और बाहुबली लड़े, तब क्या हुआ?
उस समय भी दोनों की ज्ञानचेतना राग से भिन्न ही थी।

९. शुभराग से धर्म माने, उसको त्याग-वैराग्य होता है?
नहीं।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

६०. क्या सम्यग्दृष्टि अव्रती होने पर भी प्रशंसनीय है?
हाँ; अव्रती होने पर भी उसका सम्यक्त्व प्रशंसनीय है।

१. संत-ज्ञानी बारंबार क्या कहते हैं?
थोड़ा भी काल गँवाये बिना सम्यक्त्व को धारण करो।

७६२. सम्यग्दर्शन किसी भी धर्म में हो सकता है क्या?
नहीं; जैनमार्ग सिवाय दूसरे धर्म में सम्यग्दर्शन नहीं होता।

३. सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से जीव को क्या हुआ?
वह पंचपरमेष्ठी की नात में मिल गया।

४. सम्यग्दर्शन रहित शुभ भाव की करनी कैसी है?
वह भी जीव को दुःखकारी है।

५. क्या नरक में सम्यग्दृष्टि होते हैं?
हाँ, असंख्यात हैं।

६. कोई सम्यग्दृष्टि-मनुष्य मरकर विदेह क्षेत्र में उत्पन्न होता है?
नहीं।

७. जैनमार्ग कैसा है?
वह भगवान होने का मार्ग है।

८. तीन लोक और तीन काल में जीव को हितकर क्या है?
सम्यक्त्व समान दूसरा कोई हितकर नहीं है।

९. जीव को जगत् में अहितकारी क्या है?
मिथ्यात्व समान अहितकारी दूसरा कोई नहीं है।

७०. मिथ्यादृष्टि जीव स्वर्ग में उत्पन्न हो तो?
वह भी संसार ही है; उसे वहाँ भी सुख नहीं है।

१. सुखी कौन हैं?
सुखी तो समकिती हैं, जिन्होंने चैतन्य तत्त्व को देखा है।

२. सम्यक्त्व बिना सब क्रियायें कैसी हैं?
दुःख की ही देने वाली हैं।

७७३. दुनिया क्या देखती है?
दुनिया तो बाह्य वैभव को देखती है, चैतन्य को नहीं देखती।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

४. चैतन्य के जितने धर्म हैं, उन सबका मूल क्या है?
सब धर्मों का मूल सम्यग्दर्शन है – **'दंसणमूलो धम्मो'**।

५. जल्दी से जीव को करने लायक क्या है?
हे जीव! तुम सम्यक्त्व को जल्दी धारण करो...बिना प्रयोजन काल मत गँवाओ।

६. ज्ञान और चारित्र दोनों सम्यक्त्व के बिना कैसे हैं?
वे सम्यक् नहीं, अर्थात् मिथ्या हैं।

७. राग के रास्ते से मोक्ष में जा सकते हैं?
नहीं।

८. मोक्ष का रास्ता क्या है?
सम्यक्त्वसहित स्वानुभूति।

९. क्या सम्यक्त्व और शुभराग में कुछ संबंध है?
नहीं; दोनों भाव अत्यन्त भिन्न हैं।

७८०. सम्यक्त्व होने से क्या हुआ?
जो ज्ञान पहले भवहेतु था, वह अब मोक्षहेतु हुआ है।

१. संसार में भ्रमण करता हुआ जीव कौन-सी दो वस्तुएँ भूतकाल में नहीं पाया?
एक तो जिनवर स्वामी और दूसरा सम्यक्त्व।

२. भगवान के पास में जीव तो अनंत बार गया है न?
हाँ; परन्तु उसने भगवान को पहिचाना नहीं।

७८३. भगवान को पहिचाने तो क्या होता है?
आत्मा पहिचानने में आता है और सम्यग्दर्शन होता है।

४. अनंत जीव मोक्ष गये – वे सब क्या करके मोक्ष गये?
सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अनंत जीव मोक्ष गये हैं।

५. सम्यग्दर्शन बिना किसी ने मोक्ष पाया है?
किसी ने नहीं।

६. सम्यक्त्व की अच्छी (सरस) महिमा सुनकर क्या करना?
हे जीवो! तुम जागो...सावधान हो...और स्वानुभव करो।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

Version 001: remember to check http://www.AtmaDharma.com for updates

७. ऋषभदेव के जीव को सम्यग्दर्शन प्राप्त कराने हेतु मुनि ने क्या कहा?
'हे आर्य! तुम इस समय इस सम्यक्त्व को ग्रहण करो...! क्योंकि तुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति का काल पका है।

८. ऋषभदेव के जीव ने ऐसा सुनकर क्या किया?
मुनिराज की उपस्थिति में ही जीव ने तत्क्षण ही सम्यग्दर्शन प्रगट किया।

९. इस उदाहरण से हमको क्या करना चाहिए?
सम्यक्त्व को धारण करो... 'काल वृथा मत खोवो।'

९०. देवों के अमृत से भी ऊँचा रस कौन-सा है?
सम्यग्दृष्टि का अतीन्द्रिय आत्मरस अमृत से भी ऊँचा है।

१. सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से क्या हुआ?
अहो, सम्यग्दर्शन प्राप्त होने से आत्मा में मोक्ष का सिक्का लग गया।

७९२. क्या इस काल में सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सकता है?
हाँ; बहुतों ने प्राप्त किया है।

३. इस तीसरी ढाल में किसका उपदेश है?
मोक्ष के मूलरूप सम्यग्दर्शन की आराधना का उपदेश है।

४. यह उपदेश सुनकर क्या करना?
हे जीव! तुम आज ही सम्यक्त्व को धारण करो।

— ● —

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com

आतम को हित है सुख सो सुख, आकुलता बिन कहिये
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव –मग लाग्यौ चहिये
सम्यग्दर्शन– ज्ञान–चरन शिव– मग, सो दुविध विचारो
जो सत्यारथ–रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो

•

परद्रव्यन तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है
आपरूप को जानपनो सो, सम्यक् ज्ञान कला है
आपरूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई
अब व्यवहार मोक्ष–मग सुनिये, हेतु नियत को होई

•

मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा;
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।
''दौल'' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै;
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।

– पण्डित दौलतराम